हिंदी के कवि और काव्य

(भाग २)

श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी

१९३९

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

प्रकाशक—
हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत,
इलाहाबाद

मूल्य { कपड़े की जिल्द ४)
सादी जिल्द ३॥)

मुद्रक—
गुरुप्रसाद, मैनेजर
कायस्थ पाठशाला प्रेस व प्रिंटिंग स्कूल, प्रयाग

विषय-सूची

संत-साहित्य

भूमिका

उत्तरकालीन हिंदी-साहित्य या दूसरे शब्दों में रीति-काल की कविता को ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अलंकारों के बोझ से असल चीज दब गई, शब्दाडंबर ही सब कुछ हो गया। चमत्कार और अर्थगौरव की भी कमी नहीं है, बिहारी आदि कुछ रीतिकालीन कवियो मे। साहित्य मात्र का एक उद्देश्य होता है 'सत्य' की खोज और पाठको के सामने शब्दों द्वारा उस का व्यक्तीकरण। पर यह तो कबीर आदि संतों की वाणी मे ही मिलता है। इन की बानियो मे असल चीज बिना किसी मुलम्मे के, बिना किसी आडबर के रक्खी हुई है। और फिर जो 'सत्य' है वही 'शिव' हो सकता है, और वही वास्तव मे 'सुंदर' है। हम देखते हैं कि उत्तर-कालीन कवियों के काव्य मे 'सौंदर्य क्या है', इस के बारे में बड़ी भ्रांत धारणायें हो गई थीं। 'रस-थ्योरी' के पीछे पड़ कर कविता-कामिनी को कुछ बाद के कवियों ने इतनी भद्दी बना डाला जिस का कुछ ठिकाना नहीं।

पर यहां इन सब बातों पर विचार करने का अवसर नहीं है। हमें संक्षेप से यह देखना है कि संतों की बानियों मे कौन से संदेश भरे पड़े हैं, जीवन की व्याख्या क्या है, इन के अनुसार इन की कविता का मुख्य विषय क्या था, तथा इस की विशेषताये क्या थीं, जो इस को अन्य काल की कविताओ से बिलकुल अलग कर देती हैं।

संतसाहित्य का मुख्य विषय परमार्थसाधन तो है ही, पर इन का मार्ग, इन के उपदेश, इन के समकालीन अथवा आस-पास के सूर, तुलसी आदि महात्माओं से कुछ भिन्न थे। साकार उपासना इन के मत से ठीक नहीं थी। परमार्थसाधन संबंधी इन के मार्ग और उपदेश अधिक विकसित और व्यापक थे।

हिंदी-साहित्य के मध्य-काल को साहित्य के इतिहास के अनुसार 'भक्ति'-काल या 'धार्मिक'-काल कहते हैं। इस का आरंभ वीरगाथा काल के प्रथम उत्थान के समाप्त होने पर अर्थात् चौदहवीं शताब्दी से आरंभ होता है। हिंदी का भक्ति-काव्य किस प्रकार की परिस्थितियो मे उद्भूत हुआ यह भी सक्षिप्त रीति से जान लेना आवश्यक है, हम देखते है कि हमारे भक्ति-काव्य की उत्पत्ति मोटी तौर से देश मे मुसलमानों के राज्य स्थापित हो जाने के बाद से ही आरंभ होती है, और ज्यों ज्यो यहाँ मुसलिम राज्य की नींव दृढ़ होती गई त्यो त्यों भक्ति-काव्य की विविध शाखायें भी प्रस्फुटित होती गईं। अकबर जहाँगीर काल मे

जब भारत मे मुसलिम राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था वही समय हमारे वैष्णव-काव्य और संत-साहित्य की परम उन्नति का भी था। मुसलिम राज्य की अवनति के साथ ही श्रेष्ठ भक्ति-काव्य का प्रायः लोप, वीरगाथा का द्वितीय उत्थान तथा रीतिकाव्य की उन्नति आरंभ होती है।

यह मानी हुई बात है कि देश के साहित्य की उत्पत्ति, विकास तथा अवनति आदि पर तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियो का प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सकता; अब हमे यह देखना है कि वीरगाथा के प्रथम उत्थान के अत और साथ ही भक्ति-काव्य की उत्पत्ति से तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का क्या सबंध है।

अंतिम हिंदू सम्राट पृथ्वीराज के निधन के बाद और साथ ही जयचंद को अपनी करतूत का जो फल मिला उस से हिंदुओं का लड़ाई का जोश तो ठंडा हो ही गया, साथ ही देश मे एकछत्र राष्ट्रीय भावना का भी लोप हो गया। हिंदू राष्ट्र छोटे छोटे इतने फिरको में बँट गया था, आपस की फूट और गृहयुद्ध का इतना बोलबाला हो रहा था कि सारी हिंदू जाति ही निस्तेज और निष्प्राण हो रही थी; और किसी भी विदेशी विजेता के लिए यहां पर प्रभुत्व जमा लेना कोई कठिन बात न थी, और हुआ भी ऐसा ही।

पर साहित्य पर इस का क्या क्या प्रभाव पड़ा? कड़खो और कड़खैतों की जरूरत नहीं थी। हिंदुओ का युद्धप्रेम, अपने देश और अपने राजा के लिए लड़ मरने का हौसला खतम हो चुका था। सब को अपनी व्यक्तिगत चिंता ही अधिक थी, ऐसी स्थिति मे वीरकाव्य या 'जय'-काव्य की कहां गुंजाइश थी। स्पष्ट है कि अब रासो तथा उस ढग के चारण-काव्य की आवश्यकता ही हिंदुओ को नहीं रह गई।

पर इस के बाद हो जब देश में विदेशी शासन भी जम कर बैठता दिखाई दिया तब हिंदुओ की आँख खुली। पर अब क्या हो सकता था? चिड़ियां खेत चुन चुकी थीं अब सिवा ख़ुदा की याद के दूसरा काम ही क्या रह गया? फलतः हिंदुओं का ध्यान ईश्वराराधन की ओर गया। तत्कालीन इतिहास हमे बताता है कि हिंदू जनता पर नवागत मुसलिम शासकों ने अनेक अमानुषिक अत्याचार किये। हिंदू प्रजा को रोटियो के लाले तो पड़ ही रहे थे साथ ही किसी प्रकार का नागरिक स्वत्व भी उन के पास न रह गया। बात बात पर अपमान, शारीरिक यन्त्रणा की तो कोई बात ही नही, यहां तक कि हिंदुओं का साफ कपड़े पहनना, या घोड़े आदि की सवारी करना भी अपराध समझा जाने लगा और इस के दड स्वरूप सपत्ति अपहरण, खाल खिंचवा कर भूसा भर देना, या कम से कम सर मुड़वा कर गधे पर सवार करा शहर मे घुमाया जाना आदि बहुत साधारण बातें थीं।

जो हो, इतिहासो मे कहे हुए इन अत्याचारो की तालिका देने का यह अवसर नहीं है। हमारे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि इस प्रकार की घोर राजनैतिक

अशांति और देशव्यापी जातीय विपत्तिकाल में ही हिंदी के भक्ति-काल की नीव पड़ी। प्रारंभिक मुसलिम राजत्वकाल में हिंदू प्रजा को अपना जीवन भारभूत हो गया था और सब ओर उसे नैराश्य का घोर अंधकार ही दिखाई पड़ता था। शाहाबुद्दीन ग़ोरी के आक्रमण से लेकर तुग़लक़ों के समय तक का तो यह हाल रहा; फिर तैमूर के प्रलयकारी आक्रमण ने हिंदुओ की बँची खुची आशाओं पर भी पानी फेर दिया।

घोर विपत्ति और निराशा मे मनुष्य का विश्वास ईश्वर से भी उठ जाता है। सोवियट रूस का ताज़ा उदाहरण हमारे सामने है। सब से अधिक धर्मप्राण या धर्मभीरु जाति विपत्ति के आघातो से ऊब कर किस प्रकार अनीश्वरता को अपना सकती है यह हम आधुनिक रूस से भली भाँति सीख सकते हैं। ठीक यही अवस्था उस समय भारत की हो रही थी, पर विधि का विधान कुछ और ही था इस देश के लिये।

उत्तरभारत के इस अवस्था मे परिणत होने के कुछ पहले ही दक्षिण में कुछ ऐसे महात्माओं का आविर्भाव हो चुका था जिन्होने एक अभूतपूर्व भक्ति का स्रोत सारे देश मे प्रवाहित कर दिया। सब से पहले (१०७३) स्वामी रामानुजाचार्य ने शास्त्रीय पद्धति से भक्ति का उपदेश दिया और शिक्षित तथा सुसंस्कृत हिंदू जनता क्रमशः इन की ओर आकृष्ट होती आ रही थी। फिर गुजरात मे (सं० १२५४-१३३३) स्वामी मध्वाचार्य का आविर्भाव हुआ। इन्होंने द्वैतवादी वैष्णव संप्रदाय की नींव डाली। इधर देश के उत्तरपूर्व भाग में जयदेव की कृष्ण-भक्ति का युग आया और इस के प्रधान अनुयायी हुए मैथिलकोकिल विद्यापति। 'अभिनव जयदेव' इन का नाम ही पड़ गया। परंतु इस भक्तिस्रोत के उत्तरभारत मे प्रवाहित करने का श्रेय स्वामी रामानंद (१५ वी शताब्दी) को मिला। यह स्वामी रामानुज की शिष्यपरंपरा मे थे। इन्होने विष्णु के अवतार राम की उपासना को प्रधानता दी। इन्ही के शिष्य कबीर हुए जिन्होंने भक्ति को एक नया ही रूप दे दिया जिस पर आगे विचार करेंगे। इसी समय के आस पास स्वामी वल्लभाचार्य का आविर्भाव हुआ जिन्होने साकार कृष्णभक्ति को विशेष रूप दिया। इन्ही की शिष्यपरपरा मे सूरदास, नंददास जैसे रत्नो का आविर्भाव हुआ जिन की विभूतियों से हिंदी साहित्य को उचित गर्व है।

पर जैसे एक ओर प्राचीन सगुण उपासना का प्रचार हुआ और उस के अनुरूप तुलसी, सूर आदि कवियों की रचनाओ से हिंदीकाव्य फला फूला उसी प्रकार देश मे मुसलमानो के जम कर बस जाने और उन के अत्याचारों के दिनों दिन बढ़ते जाने से एक ऐसे सामान्य-भक्तिमार्ग की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसे हिंदू, मुसलमान, छूत, अछूत, ऊंच, नीच सभी अपना सकें। यही आगे चल कर 'निर्गुणपंथ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस मार्ग का मुख्य उद्देश्य था जाति, पाँति, ऊँच-नीच आदि के मिथ्या भेद भाव को हटा कर मनुष्य मात्र को एक प्रेमसूत्र

में बाँधना। बंगाल में सब से पहले चैतन्य महाप्रभु ने इस भाव की नींव डाली। इधर महाराष्ट्र और मध्य देश में नामदेव और रामानद जी ने इसी भाव का सूत्रपात किया।

नामदेव जी यद्यपि स्वय सगुणोपासक थे पर मुसलमानों के अत्याचारो से मर्माहित होकर हिंदू और मुसलमान को एक सूत्र में लाने का प्रथम प्रयास भी हम इन्हीं की वाणी में देखते हैं। एक स्थान पर ये कहते हैं—

पाडे तुम्हारी गायत्री लोधे का खेत खाती थी।
लै कर ठेंगा टेगरी तोरी लगत लगत आती थी॥
पाडे तुम्हरा महादेव धौला बलद चढ़ा आवत देखा था।
पाडे तुम्हरा रामचद सो भी आवत देखा था॥
रावन सेती सरबर होई, घर की जोय गँवाई थी।
हिंदू अधा तुरकौ काना, दुहौ ते ज्ञानी सयाना॥
हिंदू पूजै देहरा, मुसलमान मसीद।
नामा सोई सेविया, जहँ देहरा न मसीद॥

गुरु नानक ने ग्रथसाहब मे इन के इस आशय के कई पद उद्धृत किये हैं। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि नामदेव जी वास्तव में मूर्तिपूजक थे और शिव आदि रूपों मे इन की उपासना के अनेक प्रमाण मिलते हैं। पर ये विलक्षण प्रतिभासंपन्न और बड़े दूरदर्शी रहे होंगे इस में कोई संदेह नहीं। इन्होंने बहुत पहले जान लिया था कि भारत में हिंदू-मुसलमान तथा छूत-अछूत सब को एकता के सूत्र मे बाँधने वाला यदि कोई सामान्य भक्तिमार्ग का प्रचार न किया जायगा तो या तो सारा देश नास्तिक हो जायगा या भयानक वर्ग-युद्ध मे फँस कर सब एक दूसरे से लड़ मरेंगे। यही सोच कर इन्होंने एक ओर तो मदिर मस्जिद की निःसारता घोषित करते हुए सर्वत्र ईश्वर की विद्यमानता का प्रचार किया तथा दूसरी ओर मूर्तिपूजा आदि को अनावश्यक बताते हुए 'राम-रहीम' की एकता का राग भी शुरू किया जैसे—

आपुन देव देहरा आपुहि आपु लगावै पूजा।
जलतें तरँग तरँग ते है, जल कहन सुनन को दूजा॥
आपुहि गावै, आपुहि नाचै, आपु बजावै तूरा।
कहत नामदेव तू मेरो ठाकुर, जन ऊरा तू पूरा॥

इस प्रकार कबीर के प्रसिद्ध निर्गुण-पंथ का बीजारोपण करते हुए हम नामदेव जी को देखते हैं। पर इस के साथ ही इन का सगुणवाद किसी भी अवस्था में लोप नहीं हो पाया था। इस के प्रमाण भी इन के पदो मे बराबर मिलते हैं जैसे—

दशरथ राय-नद राजा मेरा रामचद।
प्रणवै नामा तत्व रस अमृत पीजै॥

साथ ही आगे चल कर कबीर, दादू आदि ने जिस ज्ञान-तत्व का उपदेश ५ उस का बीजारोपण भी हम इन्हीं की रचना मे पहले पहल पाते हैं जैसे—

माइ न होती बाप न होता, कर्म न होती काया।
हम नहिं होते तुम नहिं होते, कौन कहाँ ते आया॥
चंद न होता, सूर न होता, पानी पवन मिलाया।
शास्त्र न होता, वेद न होता, करम कहाँ ते आया॥

इत्यादि

इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्गुण-पंथ की उत्पत्ति पहले ऐसे भक्तों की वाणियो से ही प्रगट हुई जो आरंभ मे या वास्तव मे, सूर, तुलसी आदि की भाँति सगुणोपासक भक्त ही थे! हम 'वास्तव' में इस लिये कहते हैं कि यद्यपि इन्हो ने समय समय पर मूर्तिपूजा आदि की निःसारता बताई पर इस देश की हिंदू जनता में सगुण उपासना का भाव इतना बद्धमूल हो गया था कि खुले आम इस का विरोध करने का साहस कबीर के पहले शायद किसी को नहीं हुआ। शकर की अद्वैत फिलासफी हिंदू जाति के जिस मज्जागत संस्कार को मेटने में सफल न हो सकी उस के खिलाफ आवाज उठाना हँसी खेल न था। नामदेव ने वह आवाज उठाई पर दबी ज़बान से। उन की रचनाओ में यह दोरंगी बातें साथ साथ देखने से उन की अनिश्चितता स्पष्ट हो जाती है।

पर इतिहास हमें बताता है कि कोई बड़ा आदमी जब एक बार किसी नये विचार को जन्म दे देता है तो वह दबता कभी नहीं। दूसरे प्रचारक शीघ्र ही प्रकाश मे आकर उस को ले बढ़ते है। यहां भी ऐसा ही हुआ। 'निर्गुण-पथ' या प्रथम 'ज्ञानाश्रयी शाखा' के प्रचारक अपनी दोरंगी रचनाओ से कुछ दुविधा मे पड़े दिखाई देते हैं। कहीं तो इन की वाणियो में भारतीय अद्वैतवाद और मायावाद का परिचय मिलता है, कहीं सूफियो के प्रेमतत्व की झलक दिखाई देती है और कहीं पैगंबरी खुदावाद की। फिर कहीं सूर, तुलसो आदि की भाँति राम-कृष्ण की बहुदेवोपासना का भी परिचय मिलता है तो साथ ही मुसलमानी जोश के साथ मूर्तिपूजा अवतार पूजा या बहुदेवोपसना का खंडन भी मिलता है। फिर इसी के साथ साथ कुरबानी, रोजा, नमाज आदि की निःसारता प्रगट करते हुए तत्वज्ञानियो की भाँति माया, जीव, अनहद नाद, सृष्टि, प्रलय आदि की भी चर्चा की गई है।

इन सब बातो पर ध्यान देने से यही स्पष्ट होता है कि इन संतों की धारणा यही थी कि ईश्वरोपासना की इतनी बहुसंख्यक विधिओं, आडंबरों, और उन के अलग अलग मत-मतांतरों तथा पृथक् विधि-विधानों के कारण ही देश में इतना पारस्परिक द्वेष, भेदभाव और फूट बढ़ रही थी। जाति को एक प्रेमसूत्र मे बाँधने के लिये इन्होंने धार्मिक भेदभाव को दूर करना अनिवार्य समझा और इस उद्देश्य

को सिद्ध करने के लिये इन्होंने धर्म और उपासना के सारे वाह्य आडंबर को हटाकर विशुद्ध ईश्वर प्रेम और सात्विक जीवन की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया।

पर इन सत-कवियो को जितने प्रोत्साहन की आशा थी उतना न प्राप्त हो सका। भारत की संस्कृत और सुशिक्षित जनता अधिकतर इन की मतानुयायी न हो सकी। उच्चवर्ग के ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि यथासंभव अत तक इन के प्रभाव से दूर ही रहे। संस्कृत के विद्वान पण्डित लोग हृदय मे कबीर आदि महात्माओं की महत्ता को मानते हुए भी प्रगट रूप से बराबर इन का विरोध करना ही अपना धर्म समझते रहे। यहाँ तक कि हिंदी-कविता के सूर्य महात्मा तुलसी दास भी इन 'वेद-पुरान' के निदकों तथा 'अलख' जगाने वाले 'नीचो' की निदा किये बिना न रह सके। सारांश यह कि इन क अनुयायी अधिकतर दलित जातियों और शूद्रों में से ही हुए। और साथ साथ सूर, तुलसी आदि द्वारा सगुण-भक्ति का विकास भी कभी बद न होकर समानांतर रूप से विकसित ही होता गया।

अब इस निर्गुण-पंथ मे भी आरंभकाल से ही हम दो शाखाए देखते हैं। एक तो ज्ञानाश्रयी शाखा जिस का प्रथम और प्रधान प्रवर्तक कबीर को ही मानना चाहिये, क्योंकि इस विषय पर विस्तृत और स्पष्ट रचना सब से पहले कबीर ही की मिलती है। दूसरी शाखा हुई सूफियों की विशुद्ध प्रेममर्गी-शाखा जिस के प्रधान कवि मलिक मुहम्मद जायसी हुए। इस शाखा के कवियों की शैली और विचार सब से निराले थे। इन्होने कल्पित कहानियो (प्रेमगाथाओं) के माध्यम द्वारा प्रेमतत्व का निरूपण किया। इन की शैली थी लौकिक प्रेम के छल या बहाने से भगवत्प्रेम का वर्णन करना। समूची गाथा एक विशाल रूपक के रूप में होती थी। इन की कथाए आमतौर से सभी प्रायः एक सी होती थीं जिस का नायक कोई राजकुमार होता था जो किसी 'सुवा' या अन्य पक्षी से किसी राजकुमारी के अनुपम रूप, गुण की प्रशंसा सुन उस के 'प्रेम की पीर' से व्याकुल हो, त्यागी का भेस धर निकल पड़ता था और वही पक्षी उस का मार्ग प्रदर्शक हुआ करता था। वास्तव मे राजकुमार को साधक, राजकुमारी को ईश्वर, और तोते को गुरु समझना चाहिये। यही इन प्रेमगाथा लेखकों की रीति थी। ये अधिकांश मे पहुँचे हुए फक़ीर हुआ करते थे, पर इन का मार्ग ईरान के जलालुद्दीन रूमी आदि सूफी फकीरो के दार्शनिक विचारो से पूर्णतः प्रभावित था। ईश्वर, मोक्ष-प्राप्ति या पारलौकिक उत्कर्ष के जितने उपाय उस समय देश मे प्रचलित हो रहे थे उन सब मे यह निराला था। इन्होंने प्रियतमा 'माशूक' के रूप में ही ईश्वर से मिलने की राह को सब से सुगम समझा। राजयोग, हठयोग, साकार और निराकार भक्ति, पूजा-रोजा, नमाज़ आदि अनेकानेक उपायो और साधनों को छोड़ इन की राय मे ईश्वर केवल प्रेम से मिलता है।

इन फ़कीरों ने अपना मत चलाने या अपने अनुयायियो की सख्या बढ़ाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। पर इन की रचनाएं हिंदी साहित्य मे एक विशेष स्थान रखती हैं। अवधी भाषा मे दोहा चौपाई छदो मे महाकाव्यों के ढग की

रचनाओं के चलन का श्रेय इन्हीं को है। महाकवि तुलसीदास को भी अपने राम-चरित मानस की रचना के लिये किसी हद तक जायसी का ऋणी मानना पड़ेगा। और फिर इन का विरह वर्णन तो हिंदी-साहित्य क्या संसार के किसी भी साहित्य मे शायद ही अपना सानी रखता हो। इन्होने समूचा हृदय निकाल कर रख दिया है, यद्यपि भाषा ठेठ अवधी और कही कहीं कुछ गंवारूपन भी लिये हुये है।

परंतु इस जिल्द में कबीर आदि ज्ञानाश्रयी' शाखा के संतो की रचना और विचारधारा का ही विशेष वर्णन करना' है। इन की रचनाये यद्यपि विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से उतने मार्के की नहीं बन पड़ी पर सत्य निरूपण और तत्वकथन की दृष्टि से इन का स्थान' कदाचित् सर्वोपरि मानना पड़ेगा। यो तो इन के पहले नाथ-सम्प्रदाय के योगियो की परंपरा मिलती है। पर कुछ तो इन की रचनाओ के अप्राप्य होने के कारण और कुछ जो मिलती भी है साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण न होने के कारण काव्यजगत् मे इन को चर्चा नही के ही बराबर है। पर कबीर आदि की ज्ञानश्रयी शाखा इन की विचार-पद्धति से किसी हद तक प्रभावित अवश्य है और इस कारण इन का कुछ दिग्दर्शन कर लेना आवश्यक है।

बाबा गोरखनाथ एक ख्यातनामा योगी हो गए हैं। इन का समय विक्रम की ११ वीं शताब्दी माना जाता है। इन के गुरु प्रसिद्ध मछंदर नाथ (मत्स्येंद्र) थे। इन का मार्ग था हठ योग। योग के चौरासी आसनो तथा यम नियम प्राणायाम आदि द्वारा शरीर और मन को वश मे कर लेना ही इन का मार्ग था। प्रसिद्ध 'मत्स्येंद्र' और 'अर्ध मत्स्येंद्र' आसन शायद गुरु मत्स्येंद्रनाथ (मछंदर नाथ) द्वारा ही आविष्कृत हुए थे। जो कुछ इन की वाणियां मिलती हैं उन में योगाभ्यास की श्रेष्ठता, आत्मज्ञान, सृष्टि, प्रलय, शरीर और जगत की क्षणभंगुरता आदि के सबंध मे लगभग वैसे ही प्रवचन मिलते हैं जैसा आगे चलकर कबीर, दादू आदि की वाणियों में। यह सत्य है कि इन के बाद के संतों ने हठयोग तथा भाँति भाँति की यातनाओ से शरीर को कष्ट देकर उसे वश मे करने की विधि को प्रोत्साहन नही दिया पर तत्वज्ञान संबंधी अन्य विचार दोनों शाखाओ के बहुत कुछ मिलते जुलते हैं जैसा कि नीचे दिये हुए कुछ उद्धरणो से स्पष्ट हो जायगा। अभी हाल मे लगभग चौबीस ऐसे ग्रंथो का पता चला है जिन के रचयिता गुरु गोरखनाथ कहे जाते हैं। इन के सिवाय एक और प्राचीन संग्रहग्रथ मिला है जिस मे इसी ढग के बोस योगियो की रचनाएं एकत्रित हैं। इन मे से कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं[१]

गोरखनाथ—पवन गोटिका रहणि अकास।
महियल अंतरि गगनक विलास॥

---

[१] हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (पहला भाग) पृष्ठ ३६

पयाल नी डीवी सुन्नि चढ़ाई।
कथत गोरखनाथ मछींद्र बताई॥
सुन्नि मडल तहँ नीझर झरिया।
चद सुरज ले उनमनि धरिया॥
वस्तीन सुन्य सुन्य वस्ती, अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिखर में बालका बोलै, ताका नॉव धरहुगे कैसा॥
छाटै तजौ गुरु छाटै तजौ, तजौ लोभ माया।
आत्मा परचै राखौ गुरुदेव, सुदर काया॥

जलंधरनाथ—यह संसार कुबुधि का खेत।
जब लगि जीवै तब लगि चेत॥
आँख्यॉ देखै, कान सुनै।
जैसा वाहै वैसा लुणै॥

घोड़ाचोली—रावल ते जे चालै राह।
उलटि लहरि समावै मॉह॥
पच तत्त का जाणै भेव।
ते तो रावल परिचय देव॥

चौरगीनाथ—जे जे आइला ते ते गेला।
अवना गमने काल विमन भइला॥
हरि से कान्ह जिन उर बटई।
भणइ कान्ह मो हियहि न पइसइ॥
सगौ नहीं संसार, चितनहि आवै बैरी।
नृभय होइ निसक, हरिष में हास्यौ कणेरी॥

चटपटनाथ—चरपट चीर चक्रमन कथा।
चित्त चमाऊँ करना॥
ऐसी करनी करो रे अवधू।
ज्यों बहुरि न होई मरना॥[1]

देवलनाथ—देवल भये दिसतरी, सब जग देख्या जोइ।
नादी बेदी बहु मिलैं, भेदी मिलै न कोइ॥

धूंधलीमल—

आईसजी आवो, बाबा आवत जात बहुत जग दीठा कछू न चढ़िया हाथ।
अब का आवण सूफल फलिया, पाया निरजन सिध का साथ॥

---

[1] 'हिंदुस्तानी' भाग १, अक ४ पृ० ४३५

गरीबनाथ—पाताल की मीडकी आकास यंत्र बावै।
चाद सूरज मिलै तहाँ, तहाँ गंग जमुन गीत गावै ॥

इन उद्धरणो मे आये हुए विचारों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन के बहुत से आदर्शों को आगे चल कर संतकवियो ने अपनाया। ऊपर कहे हुए सब कवि कबीर से पहले के थे इस मे सदेह करने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि गुरु गोरखनाथ के समय मे बहुत मतभेद है पर विद्वानो को जो कुछ सामग्रियां मिल सकी है उन से यह स्पष्ट है कि ईसा की बारहवीं शताब्दी के आगे किसी तरह भी इन का रचना-काल बढ़ाया नही जा सकता। फिर इन की परपरा हम को बतलाती है कि चौरंगीनाथ और घोड़ाचोली गोरखनाथ के गुरु भाई थे। गुरु जलंधर नाथ मछींद्रनाथ के गुरुभाई थे और कणेरीपाव जलंधर नाथ के शिष्य थे। फिर चरपटनाथ गहनीनाथ के गुरु भाई थे और देवलनाथ का समय भी प्रायः वही था। इसी प्रकार धूँधलीमल और गरीबनाथ का समय क्रमशः ई० १३८५ और १३४२ कहा गया है।[१] इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन सभी महात्माओ का आविर्भाव कबीर के पहले हो चुका था और इन के उपदेशों की छाप परवर्ती संतसाहित्य पर निश्चय रूप से पड़ी।

पर हम संतसाहित्य मे दो बाते स्पष्ट देखते हैं। एक तो ज्ञान संबंधी आध्यात्मिक उपदेश और दूसरी भक्ति। अपने आप को जानना, संसार मिथ्या है तथा इसी प्रकार के अन्य सिद्धांत तो इन्होने एक विशेष सीमा तक नाथपंथी साधुओं से लिये। पर संतवाणी मे भक्ति का जो हम एक प्रबल स्रोत देखते हैं वह कहाँ से आया? नाथपंथियो में तो इस का अभाव था। इस के लिये हमें रामानुजाचार्य के तथा रामानंद तक उन की शिष्य परंपरा के उपदेशो का सारांश संक्षेपतः जान लेना होगा। यह शिष्यपरंपरा इस प्रकार है—

रामानुज
|
देवाचार्य
|
हरिआनद
|
राघवानंद
|
रामानद

स्वामी रामानंद का जन्म सन् १२९९ में प्रयाग मे एक ब्राह्मण कुल मे हुआ

---

[१] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ११, अंक ४

कहा जाता है। इन्होंने सस्कृत का अच्छा अध्ययन किया और विद्यार्थी अवस्था मे ही काशी मे सयोगवश इन का साक्षात्कार राघवानद जी से हुआ और उन के व्यक्तित्व तथा भक्तिवाद से प्रभावित होकर इन्होने इन का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। पर आगे चल कर किसी बात से गुरु से इन का मतभेद हो गया और इन्होंने अपना अलग सम्प्रदाय चलाया। जैसा पहले कह चुके हैं, इन्होंने रामानुज की नारायणी उपासना के स्थान पर विष्णु के अवतार राम की उपासना प्रचलित की, तथा शिष्यत्व संबंधी नियमो को बहुत व्यापक कर दिया। जाति, वर्ण तथा ऊँचनीच का भेदभाव बहुत कुछ दूर कर दिया गया तथा सांप्रदायिक कट्टरपन को भी स्वामी रामानंद ने यथासंभव शिथिल कर दिया। स्वामी रामानद के दरबार में ही सब से पहले यह नियम चला कि ब्राह्मणेतर तथा शूद्रो को भी एक इन का शिष्यत्व ग्रहण कर सकने तथा अपना आध्यात्मिक सुधार करने का समान अधिकार है। उपासना-विधि के सबध में यद्यपि यह रामानुज की वैष्णवी, साकार-उपासना के अनुयायी थे पर इन्होंने प्रधानता निराकार उपासना को ही दी जैसा कि निम्नलिखित पद से स्पष्ट हो जायगा—

कस जाइये रे घर लायो रंग।
मेरा चित न चलै मन भयो पग॥
एक दिवस मन भई उमग।
घसि चोआ चदन बहु सुगध॥
पूजन चली ब्रह्म ठाँय।
सो ब्रह्म बतायो गुरु मत्रहि माँहि॥
जहँ जाइये तहँ जल परवान।
तू पूर रह्यो है सब समान॥
वेद पुरान सब देखे जोय।
उहाँ तो जाइये जो इहाँ न होय॥
सतगुरु मैं बलिहारी तोर।
जिन सफल निकल भ्रम काटे मोर॥
रामानद स्वामी रमत ब्रह्म।
गुरु का सबद काटे कोटि करम॥

यह पद सिखों के ग्रथसाहब मे दिया हुआ है। इस में स्पष्ट रूप से साकार उपासना की व्यर्थता का सकेत है और साथ ही ईश्वर की सर्वव्यापकता पर जोर देते हुये गुरु के मंत्र को प्रधानता दी गई है। जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, कुछ संतकवियो ने गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊपर रक्खा है, सो इस असामान्य गुरुभक्ति का सूत्रपात हम रामानद के समय से ही देखते हैं।

स्वामी रामानद के पद कुछ दो ही एक देखने को मिलते हैं, पर इन्हीं से

इतना पता अवश्य चल जाता है कि संतसाहित्य और संतों के आध्यात्मिक विचार इन से प्रभावित अवश्य हुए। संतसाहित्य मे नाथ सम्प्रदायवाले महाकाव्यों द्वारा प्रचारित ज्ञानमार्ग के साथ साथ जो भक्ति का अपूर्व स्रोत मिला हुआ दिखता है उस का श्रेय स्वामी रामानंद तथा उन के कुछ संत शिष्यो को ही देना पड़ेगा। फिर इस के सिवा छोटे वड़े, ऊँच-नीच सब को समान रूप से अपनाना भी स्वामी रामानंद के समय से ही शुरू हुआ जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। इस सिलसिले में स्वामी जी के शिष्यो मे सदना और रैदास के नाम विशेष रूप से उल्लेखयोग्य हैं। सदना जाति के कसाई थे, और रैदास चमार थे। कसाई होते हुए भी ये जीवहत्या नहीं करते थे। केवल कटा हुआ मांस वेंचा करते थे। इन की भक्ति अपूर्व थी। इतना विनय भाव कम ही देखने को मिलता है, जैसे—

एक बूँद जल कारनै, चातक दुख पावे।
प्रान गये सागर मिलै, पुनि काम न आवै॥
प्रान जो थाके थिर नाहीं, कैसे विरमावो।
बूड़ि मुये नौका मिलै, कहु काहि चढ़ावो॥
मैं नाहीं कुछ हौं नाहीं, कछु आहि न मोरा।
औसर लज्जा राखि लेहु, सदना जन तोरा॥

अंहभाव का पूर्ण रूप से तिरोभाव, निपट दीनता, अपने आप को पूर्णतः 'उस के' हांथो सौप देना; यह सव पराभक्ति के लक्षण हैं। ऊपर वाले पद मे हम यह सभी बाते पाते हैं। रैदास की रचना मे भी हम यही भाव पाते हैं। भक्ति की यह भावना आगे चल कर प्रायः सभी संतों ने अपनाई और इस का उपदेश दिया। ये दोनो महात्मा कबीर के सम-सामयिक थे।

रामानंद के एक शिष्य पीपा जी का भी प्राथमिक संतों मे एक विशेष स्थान है। ये एक राजा थे और कबीर से कुछ पहले के थे। इन का उल्लेख यहां पर इस लिये करना हम आवश्यक समझते हैं कि सब से पहले यथासंभव इन्हो ने ही स्पष्ट शब्दो मे साकार उपासना को आडंबर और पूजा के लिये देवता, मंदिर तथा अन्य असंख्य बाह्य-उपचारो को व्यर्थ बताया। इन का पद देखिये—

काया देवल काया देवल,
काया जंगम जाती।
काया धूप दीप नैवेदा,
काया पूजों पाती॥
काया बहु खड खोजने,
नव निद्धी पाई।
ना कछु आइबो ना कछु जाइबो,
राम की दुहाई॥

जो ब्रह्मडे सोइ पिंडे।
जो खोजे सो पावे।
पीपा प्रनवे परम तत्व ही,
सतगुरु होय लखावे ॥

इन के अनुसार अपने से बाहर किसी वस्तु को खोजने की आवश्यकता नहीं है। सब कुछ अपने ही अंदर है। ब्रह्म के सारे तत्व इसी 'पिंड' में मौजूद हैं, हाँ खोजने वाला और देखने वाला चाहिये, और यह सतगुरु की कृपा से ही संभव है। यह विचार जो आगे चलकर संतसाहित्य को प्राप्त हुआ, सब से पहले हम पीपा जी की वाणी में ही देखते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर के आविर्भाव काल के कुछ पहले तथा उन के समय मे ही नाथपथी योगियों और रामानंदी भक्तों की सम्मिलित विचार-धारा से एक नये मार्ग का क्षेत्र तैयार हो रहा था। तदनुसार आगे चल कर हम संतसाहित्य मे ज्ञान और भक्ति दोनों का अपूर्व सामंजस्य पाते हैं।

पर ज्ञान और भक्ति से अलग संतबानी में हम एक तीसरी बात भी पाते हैं; और वह है 'रहस्यवाद'। यो तो भारत के दर्शन के इतिहास में 'रहस्यवाद' कोई नई चीज़ नहीं थी। वेदांत-दर्शन तथा शकराचार्य की विचारधारा में रहस्यवाद प्रचुर परिमाण मे है ही। पर कबीर तथा अन्य सतकवियों का रहस्यवाद कुछ दूसरे प्रकार का है। इस में ईरान के सूफी फकीरों के रहस्यवाद की भी झलक मिलती है जिस को जायसी आदि प्रेमगाथा लेखकों ने भली भाँति निवाहा था। संतो के साहित्य में हम भारतीय एकेश्वरवाद तथा सूफियो के प्रेमतत्व दोनों का मधुर समिश्रण देखते हैं। इस रहस्यवाद की कुछ विस्तृत आलोचना हम आगे चल कर करेंगे।

पूर्वोक्त कथा से इतना स्पष्ट होगया होगा कि नामदेव, रामानंद, सदना, पीपा तथा रैदास आदि ने किस प्रकार आगामी संतसाहित्य का क्षेत्र तैयार किया और किन किन विचारधाराओं के मेल से यह क्षेत्र तैयार हुआ तथा इन विभिन्न विचारधाराओं का आदि उद्गम क्या था और पहले पहल कौन किस विचारधारा को प्रकाश में लाया।

अब संतसाहित्य में है क्या यह देखना है। हमें शुरू में ही यह जान लेना चाहिये कि वास्तविक काव्यरचना की दृष्टि से इस साहित्य में अधिक आलोच्य विषय कुछ है नहीं। रस, भाषा, अलकार, छंद तथा रचना सौंदर्य आदि की दृष्टि से सतसाहित्य में हमें कोई विशेष आशा नहीं करनी चाहिये। बल्कि विद्वानों के अनुसार तो सतकाव्य साहित्य कोटि में आता ही नहीं। इस धारणा का कारण यही है कि सुदरदास आदि दो एक अपवादों को छोड़ कर अधिकांश संतकवि सुशिक्षित नहीं थे। भाषा साहित्य पिंगल आदि का ज्ञान इन को

नाम मात्र का था। सस्कृत का ज्ञान तो शायद ही किसी को रहा हो। 'कवि' होने के लिये जो तीन बातें (शिक्षा, प्रतिभा, अभ्यास,) हमारे यहां आवश्यक मानी गई हैं इन मे पहले से तो बहुत कम सत कवियों से परिचय रहा होगा बल्कि बहुतेरे तो 'निरक्षर' भी कहे जाते हैं। सब से प्रधान सतकवि स्वयं कबीर ने 'मसि कागद' कभी हाथ से भी नही छुआ। पर इन मे से बहुत से विलक्षण प्रतिभासंपन्न अवश्य थे। 'अभ्यास' से यदि वास्तविक काव्यकला के अभ्यास से मतलब है, तो वह भी कम ही संत कवियो के रहा होगा। पर सब से मुख्य बात यही है कि इन मे से अधिकांश सचमुच तत्वज्ञानी और पहुँचे हुए साधक थे। यदि रस, अलकार आदि की छटा तथा भाषासौष्ठव का इन की रचना मे अभाव है तो इन्हो ने जो 'बात अनूठी' कही है उस की भी अवहेलना या तिरस्कार कर दिया जाय यह इन के प्रति महान् अन्याय होगा। अगले पृष्ठो मे हमे यही करना है। ये लोग पंडित या विद्वान नहीं थे। कृत्रिम तपस्या, इंद्रियनिग्रह और तीर्थाटन आदि के अभ्यासी भी नही थे ये। गुफा मे बैठ कर योगसाधन, दुखी लोगो को औषधि देकर तथा अन्य चमत्कारो से लोक को चमकृत करना भी इन की शैली नहीं थी। इन की वाणी, वेशभूषा तथा आचार, व्यवहार आदि मे कोई असाधारणता नहीं थी। ये प्राय: सभी अपनी अपनी साँसारिक जीविका के लिये कोई न कोई 'पेशा' करते थे। कबीर ने अपना जोलाहे का काम उम्र भर नहीं छोड़ा। दादू धुनियां थे, या मतांतर से चमड़े के मोट बनाते थे। सदना मांस बेचते थे। रैदास जूते बनाते थे। सब को भरोसा एक मात्र भगवान का था और सब अपने उद्यम से ही अपने और अपने कुटुंब का पालन करते थे। अधिकतर साधु-सतों की भांति जीविका के लिये उद्यम को ईश चिंता मे बाधक नही मानते थे ये, और न इस का उपदेश ही देते थे। इन का पथ 'सहज' था।

अधिकांश सत-कवियों ने प्राय: एक ही ढंग की बातें कही हैं। इन की वाणियों के शीर्षक भी बहुत कुछ एक से ही हैं। इस लिये इन के विविध अगों पर विचार करने मे सुविधा भी है। मुख्य मुख्य अंगों पर अलग अलग विचार कर लेने पर समष्ठि रूप से इन की विचार-धारा स्पष्ट हो जायगी। उदाहरण हम अधिकतर कबीर और दादू से देंगे क्योंकि सब से अधिक प्रसिद्धि इन्ही को मिल सकी।

सहज पथ

हम पहले भी सकेत कर चुके है कि ससारिक कर्तव्य पालन करते हुए ही अपने आध्यात्मिक कल्याण-साधन की शिक्षा संतो ने दी। भगवान के मिलने के लिये संसार छोड़ कर वन मे जाकर हठ-योग की क्रियाओ आदि द्वारा शरीर को सुखाना ये जरूरी नहीं समझते थे। असल चीज है मन को वश मे करना। यदि घर मे रहते हुए और सांसारिक सारे कर्त्तव्यो का पालन करते हुए मन पर राज्य न किया तो क्या किया। कबीर दादू आदि के मत से पथ 'सहज' होना चाहिये।

सौर परिवार से एक दृष्टांत लेकर कह सकते हैं कि पृथिवी अपने केंद्र पर चक्राकार घूमती हुई ही सूर्य की परिक्रमा करती है। अपनी धुरी के चारों ओर घूमते रहने वाली उस की दैनिक गति ही उसे सूर्य के चारों ओर उस की वृहत् वार्षिक गति को संभव बनाती है। सूर्य की परिक्रमा के लिये यदि पृथिवी अपनी गति बंद कर दे तो उस की सारी गतिविधि समूल नष्ट न हो जायगी? इसी प्रकार इन संतो के अनुसार दैनिक जीवन ही मनुष्य को शाश्वत जीवन की ओर 'सहज' रूप से अग्रसर कर सकता है।

दूसरा दृष्टांत नदी और उस के सागर सम्मिलन से दिया जा सकता है। नदी का प्रतिक्षण का उद्देश्य ही है अपने प्रियतम समुद्र मे अपने को लीन करना। परंतु नदी अपने दोनो तटों से क्षण भर के लिये भी अलग हो कर सागर की ओर क्या अग्रसर हो सकती है? नहीं। अपने दोनों किनारों के असख्य काम करती हुई ही वह अपने चरम उद्देश्य की ओर अग्रसर होती है। उस के प्रतिक्षण का जीवन उस के शाश्वतजीवन से इस अभिन्न और सहज योग से युक्त है। एक को छोड़ने का अर्थ होगा दूसरे का असंभव या व्यर्थ हो जाना? इसी से कबीर ने कहा है कि संसार और गार्हस्थ्य जीवन से अलग होकर मैं साधना नहीं जानता। साधना में कोई 'ऐंचातानी' नहीं है। साधना मे 'दैनिक' और 'नित्य' के बीच कोई विरोध नहीं है।

इस महान सत्य को कबीर और दादू ने भली भाँति समझा था और इसी से परम साधक होते हुए भी ये गृहस्थ थे। यही सहज पथ ही इन के अनुसार सत्य पथ है। इस आशय को इन संतों ने अनेक वाणियों द्वारा व्यक्त किया है। कबीर जी कहते है—

सहज सहज सब को कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजै विषया तजी, सहज कहीजै सोइ॥
सहज सहज सब को कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
पाँचू राखै परस तो, सहज कहीजे सोइ॥
सहजैं सहजै सब गए, सुत वित कामणि काम।
एक मेक है मिलि रह्या, दासि कबीरा राम॥
सहज सहज सब को कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
जिन्ह सहजै हरिजी मिलैं, सहज कहीजै सोइ॥

—कबीर ग्रथावली' पृष्ठ ४१

इसी आशय को भक्तप्रवर सुंदरदास जी ने और भी सुंदरता से प्रगट किया है। देखिये उन के 'सहज-आनंद' नामक ग्रंथ में—

सहज निरंजन सब में सोई।
सहजै संत मिलै सब कोई॥

सहजै शकर लागै सेवा।
सहजै सनकादिक शुकदेवा॥ १६॥
सोजा पीपा सहजि समाना।
सेना धना सहजै रस पाना॥
जन रैदास सहज को वदा।
गुरु दादू सहजै आनंदा॥ २६॥

अब यह स्पष्ट है कि इस 'सहज-पथ' के पथिक के लिये जाति-पाँति का साँप्रदायिक भेदभाव कोई अर्थ नहीं रखता। साँप्रदायिक मतमतांतरो के कारण भाँति-भाँति के वेश और बाने बनाकर, अपने 'साधु' होने का विज्ञापन करना दादू आदि के अनुसार मिथ्या ढोंग और आडंबर मात्र था। इस से इन को बड़ी चिढ़ थी। सच्ची साधना 'अहम्' को मिटाने के बाद ही संभव हो सकती है—

सब दिखलावहिं आप को नाना भेष बनाइ।
आपा मेटन हरि भजन तेहि दिसि कोइ नहिं जाइ॥

दादू, भेप को अंग, ११॥

जीविका के लिये उद्यम करना ईशचिंतन में बाधक नहीं होता। लोग उद्यम को भगवत्प्रेम का शत्रु इसी लिये समझते हैं कि मनुष्य सांसारिक माया मोह और बधन की चक्की मे इतना लिप्त होजाता है कि वह अपने को एक प्रकार की मशीन सा बना कर जड़वत हो जाता है। पर इस मे उद्यम को दोष क्यो दिया जाय। वास्तविक उद्यम तो वही है जिस मे आदमी अपनी चेतना को न भूले और अपने बनाने वाले को क्षण भर के लिये भी अपने से अलग न समझे। उद्यम वही है जो अपने स्वामी के साथ रह कर किया जाय—

उद्यम अवगुन को नहीं, जौं करि जानइ कोय।
उद्यम में आनद है, साईं सेती होय॥

दादू विस्वास को अंग, १०।

इसी से कुछ भक्तो ने उद्यम को छोड़ कर फकीरी करने को एक प्रकार की विलासता मानी है। इस सिलसिले मे दादू के शिष्य रज्जब जी ने एक बड़ी जोरदार बात कही है—

एक जोग में भोग है, एक भोग में जोग।
एक बुड़हिं वैराग मे, इक तरहिं सो ग्रही लोग॥

मुक्ति अग, ४९।

अर्थात योग के अंदर भी एक प्रकार का भोग होता है, और भोग मे भी योग सभव हो सकता है और गृहस्थजीवन वाला पार हो जाता है।

सहज-पथ के संबंध मे दादू जी ने एक और ध्यान देने योग्य बात कही है। सहज-पथ का यात्री अपने मन को गुलाम बना अपनी सफर को तय नही कर

सकता। जो सचमुच इस मार्ग पर चल पडा है वह स्वयं कभी नहीं जान सकता कि वह कितना रास्ता पार कर चुका। परमात्मा के बीच गोता लगाने के बाद फिर उसे अपनी बात याद रखने की फ़ुरसत कहां? सहज पथ के पथिक का लक्षण ही है अपने सबध मे अचेत रहना। जो कहता है 'मैं पहुँच चुका हूँ तुम सब मेरे पथ से चलो,' वह 'पथ' के बारे मे कुछ नहीं जानता—

मानुष जब उड़ चालते, कहते मारग माहिं।
दादू पहुँचे पथ चल , कहहि सो मारग नाहि॥

उपत् के अग, १५।

दादू को यह देख कर बड़ा आश्चर्य होता है कि लोग खुद तो आत्मतत्व को समझे नहीं और दूसरो को उपदेश भी देने लग जाते है। सोता हुआ आदमी दूसरे को कैसे जगा सकता है? वास्तविक 'ज्ञान' तो हुआ नहीं और कुछ थोड़े से शब्द और साखी रच कर लोग समझने लगते हैं कि मै ज्ञानी हो गया। यह कैसा पाखंड है! दादू के अनुसार ऐसे ही लोग जो अपने को कुछ समझने लगते हैं, पहले डूबते है—

सोधी नहीं शरीर को, औरों को उपदेश।
दादू अचरज देखिया, ये जाँगे किस देश॥
सोधी नहीं शरीर कों, कहहिं अगम की बात।
जात कहावहिं बापुरे, आवध लीये हाथ॥

—गुरु को अग, ११७-१८।

दादू दो दो पद किये, साखी भी दो चार।
हम को अनुभव ऊपजी, हम ज्ञानी ससार॥
सुनि सुनि परचे ज्ञान के, साखी सबदा होइ।
तब ही आपा उपजई, हम से और न कोइ॥

सहज, शून्य और गुरु

यों तो मध्यकालीन भक्ति की सगुण निर्गुण ज्ञानाश्रयी, प्रेमगाथा, नाथपंथी। आदि सभी शाखाओ मे गुरु सद्गुरु या दीक्षा गुरु की आवश्यकता अनिवार्य मानी गई है, पर इसको ज्ञानश्रयी शाखा के इन संतकवियों ने जितना महत्व, जितनी व्यापकता दी उतनी और किसी ने नहीं। यह हम पहले भी एक बार कह चुके हैं कि इन महात्माओं के अनुसार गुरु का पद ईश्वर से भी ऊँचा होता है, और यह इस सहज तर्क के अनुसार कि गुरु न मिलता तो ईश्वर से मिलाता कौन? "गुरु कैसा होना चाहिये? उस के लक्षण क्या हैं? इस सबंध में इन्होने विस्तार से बहुत सी बातें कही हैं। उन लक्षणों पर ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरु ही 'ब्रह्म' है, गुरु ही ईश्वर है—

गुरु गोविंद तो एक हैं, दूजा यहु आकार।
आपा मेट जोवत मरै, तौ पावै करतार॥ २६

दादू अल्लह राम का, दोनों पथ से न्यारा'।
रहिता गुन आकार का, सों गुरू हमारा ॥ ४८ ॥
—दादू, मध्य को अग।

इन भक्तो ने प्राय: 'शून्य' के साथ गुरु की तुलना की है। इस जीवन के सहज विकास के लिये शून्य आकाश की भॉति मुक्त अवकाश अपेक्षित है। गुरु भी ठीक ऐसा ही होना चाहिये। इसी से रज्जब जी गुरु के अंग मे कहते हैं—

'सत गुरू शून्य समान है'—

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि चराचर सृष्टि के विकास के लिये शून्य आवश्यक है। साधारण से लेकर बड़े से बड़े अंकुर का स्वाभाविक विकास तभी हो सकता है जब उस के ऊपर मुक्त आकाश हो। ऊपर यदि शून्य आकाश न होकर किसी चीज से ढक दिया जाय तो कोई भी पौदा बढ़ नही सकता। इसी प्रकार गुरु अपने व्यक्तित्व से शिष्य को प्रभावित करना चाहे तब तो वह दब ही मरेगा आगे उस का विकास क्या होगा? इसी से गुरु को सहज शून्यवत् होना चाहिये। सतो की बानियो मे 'सहज' और 'सुन्न' शब्द बारंबार आते हैं पर इन शब्दो के वास्तविक मर्म को लेकर आगे चल कर बड़ी छीछा लेदर हुई है। संतों का 'सहज' 'सहजिया' संप्रदाय वालों के 'सहज' से बिलकुल भिन्न है, यह आरभ मे ही भली भाँति समझ लेना चाहिये। शुरू मे सहजिया सप्रदायक वालो का जो कुछ भी सिद्धांत रहा हो पर आगे चल कर तो यह बहुत बदनाम हो गया। इसी सिद्धांत के कारण, खास कर बंगाल में 'सहज' का यह अर्थ होने लगा कि मन और इंद्रियो को उन के सहज स्वाभाविक गति विधि के मार्ग पर छोड़ देना, अर्थात् जो मन और इंद्रियां मांगे वही करना। इस का परिणाम हुआ घोर नैतिक पतन और विषयपरायणता तथा इंद्रियलोलुपता। पर संतों का 'सहज' सिद्धांत, जैसा कि हम ऊपर देख चुके है, इस के बिलकुल विपरीत है। मन को वश मे करना इन के ज्ञानतत्व की पहली सीढ़ी है।

'सहजिया सप्रदाय'

रामानंद के बाद संत कवियो ने एक मत से उपदेश के लिये संस्कृत के स्थान पर देशभाषा का आश्रय दिया यह कुछ कम महत्व की बात नहीं थी। यदि अधिक से अधिक संख्या मे अपने मंतव्य का सफल प्रचार करना है तो देशभाषा ही का आधार लेना होगा इसे स्वामी रामानद ने भली भांति समझा था। सब से पहले तो इस सिद्धांत को समझने का श्रेय महात्मा बुद्ध को है जिन्हों ने संस्कृत के स्थान पर तत्कालीन देशभाषा पाली में अपने सिद्धांत प्रकाश करने का निश्चय किया। संस्कृत तो अर्से से पंडितों की भाषा हो रही थी और केवल विद्वान् ब्राह्मण मात्र ही उस से लाभ उठा सकते थे जिन की संख्या क्रमशः घटती ही जा रही थी। पर ग्रंथकारों और विद्वान कवियों को सस्कृत मे रचना किये बिना संतोष ही नही होता था। उन्हे

सस्कृत के स्थान पर भाषा

सर्वसाधारण के हित की चिंता नहीं थी, उन्हे केवल पंडितमंडली मे स्तुत्य होने की अभिलाषा थी। पर रामानंद आदि का दृष्टिकोरण ही दूसरा था। इन्हें विद्वत्समाज की स्तुति निंदा से कोई सरोकार नहीं था। ये सर्वसाधारण के कल्याण की अभिलाषा रखते थे। इस के लिये इन्होंने सर्वसाधारण मे प्रचलित कथित भाषा का प्रयोग ही ठीक माना, वह साहित्यिको को भले ही गँवारू या असुंदर जँचे इस की उन्हे परवाह नहीं थी।

यहां पर कह सकते हैं कि रामानंद ने संस्कृत के विद्वान होते हुये भाषा को अपनाया यह उन की अग्रशोचिता का परिचायक तो हो सकता है पर यही बात कबीर आदि के बारे मे भी कही जा सकती है या नहीं ? क्योकि इन मे से अनेक निरक्षर थे। सिवा बोलचाल की भाषा (परिमार्जित नागरिक भाषा भी नहीं) के इन को और गति ही क्या थी ? पर नही, संतों ने संस्कृत के विपक्ष और भाषा के पक्ष में अपने विचार भी समय समय पर प्रगट किये हैं जिन से इन के दृष्टिकोण पर संदेह करने का कारण नहीं रह जाता। कबीर जी की यह उक्ति प्रसिद्ध है।

संस्कृत कूप जल कबीरा भाषा बहता नीर।
जब चाहौ तब ही डुबौ, सीतल होय शरीर ॥

संप्रदाय की व्यर्थता

देश मे फैले हुए नानाविध मतमतांतरो को इन संतों ने शुरू से ही सारे कलह, द्वेष की जड़ मानी है और देश से इस के समूल उच्छेदन मे इन्होंने कोई बात उठा नहीं रक्खी, पर सखेद यह मानना पड़ेगा कि यह समस्या आज भी ज्यो की त्यों मौजूद है और शायद इस का लोप धर्म और मत के साथ ही होना संभव होगा। पर स्मरण रहे धर्म से यहां हमारा मतलब केवल (Religion) और (Religiosity) से है, (Virtue) और (Spirituality) से नही। संप्रदाय और मत एक प्रकार की दलबंदियां हैं। आरंभ मे इन का जो कुछ भी उद्देश्य रहा हो, भला या बुरा, पर आगे चल कर इन का उद्देश्य ही हो गया अपने से भिन्न संप्रदाय और मतावलंबियो को सब प्रकार से नीचा दिखाने और उन के अनिष्ट साधन मे अपनी सारी शक्ति खर्च कर डालना।

संतों के समय में हिंदूसमाज अनगिनित फिर्कों मे बटा हुआ था और सब के ऊपर शासन करता था सनातनी ब्राह्मण-वर्ग। अब्राह्मणों, और खास कर शूद्रो की बड़ी शोचनीय अवस्था थी। हिंदू समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग मानना तो दूर की बात रही, हमारे पुरोहित श्रेणी के पंडित लोग इन्हे अस्पृश्य ! जानवरो से भी गया बीता समझते थे। मंदिर मे अगर कोई कुत्ता चला जाय तो उतना हर्ज नही है पर अगर कोई चमार दर्शनार्थ घुस पड़े तो उस की मौत ही समझिये ! इन्हीं अत्याचारों का दंड तो अब भोगना पड़ रहा है हिंदुओं को।

जो हो, पर हमारे अग्रशोची संतो ने बहुत पहले हिंदूसमाज की यह भयंकर भूल समझी। उन्होने इस के फलस्वरूप हिंदूसमाज का सर्वनाश ही

देखा। यद्यपि सनातनी विद्वान् पडितों के बद्धमूल प्रभाव के कारण इन की चली नहीं पर यथाशक्ति उद्योग ये करते ही रहे, और कुछ शताब्दियों के लिये तो इन्होंने हिंदुओं को सर्वशेषी गृहयुद्ध और श्रेणीयुद्ध से बँचा ही लिया।

इन संतो का उद्देश्य केवल हिंदू मात्र को ही एक करने का नहीं था। इन का दृष्टिकोण बहुत व्यापक था। क्या हिंदू क्या मुसलमान, मनुष्यमात्र को ये एकता के समानसूत्र में लाने की चेष्टा कर रहे थे। दादू जी एक एक स्थान पर कहते हैं, "हिंदू अपने मंदिर को लेकर व्यस्त है और मुसलमान मस्जिद को लेकर। मैं एक अलख में लग रहा हूँ और वहीं है निरतर प्रीति—

दादू हिंदू लागै देहरै, मुसलमान मसीति।
हम लागे एक अलख सों, सदा निरतर प्रीति॥
न तहाँ हिंदू देहरा, न तहँ तुरक मसीत।
दादू आये आप है, नहीं तहाँ रह रीति॥

मधि अग, ५२, ५३।

अब इसी आशय पर कबीर की उक्ति देखिये—

हिंदू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ में कहे न जाइ॥
काबा फिर काशी भया, राम भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, वैठि कबीरा जीम॥
कबीर दुविधा दूरि करि एक अग है लागि।
यहु सीतल वहु तपति है, दोऊ कहिये आगि॥

मधिको अंग, ७, १० २।

इसी सिलसिले में मतवाद, शास्त्र, तीर्थ, व्रत पूजा नमाज आदि की व्यर्थता पर भी बहुत कुछ कहा है इन महात्माओं ने। धर्म के इन दिखावटी व्यवहारो को असल वस्तु के प्राप्त करने में इन्होंने एक बहुत बड़ी बाधा समझी। इन से होता यह है कि लोग यहीं तक रह जाते हैं और धर्म का वास्तविक उद्देश्य ही आँख से ओझल हो जाता है। इन का कहना है कि जो वास्तविक सत्य की खोज में है उस को विविध मतवादों के पीछे पड़ने से कोई लाभ न होगा। दादू जी कहते हैं—

बाह्य उपचारों की व्यर्थता

मतवाद

मैं पथि एक अपार के, मन और न भावै।
सोई पंथ पावै पीरका, जिसे आप लखावै॥
को पंथि हिंदू तुरक के, को काहू राता।

को पंथि सूफी सेवड़े, को सन्यासी माता ॥
को पथि जोगी जंगमा, को सकति पथि धारै ।
को पथि कमडे कापड़ी, को बहुत मनावै ॥
को पंथि काहूं के चलै, मै और न जानौ ।
दादू जिन जग सिरजिया, ताही को मानौं ॥

—दादू रामकली, पद, १६८ ।

शास्त्र

श्रुति स्मृति, पुराण तथा शास्त्रों आदि के पचड़े में पड़ने के संबंध में दादू जी कहते हैं कि जिस ने मूलाधार का आश्रय लिया वह तो वास्तविक आनंद को प्राप्त हो गया पर जो वेद, पुराण आदि के पीछे पड़ा वह डाल, पत्तों में ही भटकता रह गया अर्थात् असल चीज उसे नहीं मिल सकी—

दादू पाती प्रेम की, बिरला बाँचे कोइ ।
वेद पुरान पुस्तक पढ़े, प्रेम बिना क्या होइ ॥

साँच को अंग १० ।

कबीर कागद काढ़िया, तब लेखै वार न पार ।
जब लग साँस समीर में, तब लग राम सँभार ॥ ४ ॥

—कबीर साँच को अंग

इसी प्रकार मूर्तिपूजा को व्यर्थ बताते हुए कबीर जी कहते हैं—

पाहन कूं क्या पूजिये, जे जनम न देई जाब ।
आँधा नर आसा मुखी, यौंही खोवै आब ॥ ३ ॥
हम भी पाहन पूजते, होते रन के रोझ ।
सतगुरु की कृपा भई, डारया सिर थैं बोझ ॥ ४ ॥
जेती देखौं आतमा, तेता सालिगराम ।
साधू प्रतषि देव हैं, नहि पाथर सूं काम ॥ ५ ४

—भ्रम विधौंसण को अंग ।

फिर मूर्ति पूजा के साथ ही इसी अग मे तीर्थों की कटु आलोचना करते हुए कबीर जी कहते हैं—

तीरथ तो सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाइ ।
कबीर मूल निकदिया, कौण हलाहल खाइ ॥ ६ ॥
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाँणि ।
दसवाँ द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछांणि ॥१०॥
कबीर दुनियाँ देहुरै, सीस नवांवण जाइ ॥
हिरदा भीतर हरि बसै, तू ताही सौं ल्यौ लाइ ॥११॥

इसी प्रकार तीर्थ, रोजा, नमाज तथा मिथ्याचारों की तीव्र आलोचना से भी संत साहित्य भरा पड़ा है। दो एक बनियां इन प्रसंगों पर भी उदाहरण के तौर पर यहाँ दी जा रही हैं—दादू जी कहते हैं—

तीर्थादिक की व्यर्थता

कोई दौड़े द्वारिका, कोई कासी जाँहि।
कोई मथुरा को चले, साहिब घट ही माँहि॥

कस्तूरिया मृग अंग ८।

जिस के लिये इधर उधर भटकते फिरते हो वह तो तुम्हारे अंदर ही है, फिर क्यों सब जगह कस्तूरी मृग की भाँति मारे मारे फिरना। इसी अंग मे कबीर जी की बानी देखिये—

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूढ़े बन माँहि।
ऐसे घटि घटि राम हैं, दुनियां देखै नाँहि॥ १॥

कस्तूरा उस मृग को कहते हैं जिस की नाभि मे कस्तूरी होती है। उस की सुगध से मतवाला होकर वह सब जगह उसे खोजता फिरता है पर उसे पता नहीं होता कि वह उसी के अदर है।

इसी प्रकार पूजा, नमाज आदि की निस्सारता के संबध में दादू जी कहते हैं—

परचा के अंग में:—

आप अलेख इलाही आगे, तहँ सिजदा करें सलाम। २२६

साधक का ईश्वर उस के घट में ही विराजमान है, उस की सलाम बंदगी वहीं होनी चाहिये।

हाथ में माला तस्बीह लेकर राम, रहीम जपने से क्या होता है? जप तो ऐसा होना चाहिये कि सारा शरीर और मनही तुम्हारी माला हो—

सब तन तसवी कहैं करीम, ऐसा करले जाप। २३०

दिन मे प्रातःसायं की संध्या पूजा या पांचों वक्त की नमाज से काम नहीं चलने का। इबादत तो वह है जो अनवरत रूप से आठों पहर चलती रहे और अंतिम घड़ी तक यही हाल रहे—

आठो पहर इबादती, जीवन मरन निबाहि। २३२

कबीर जी का मदिर नींव-रहित है और उन के देवता के कोई शरीर नहीं है—

नींव विहूणा देहुरा, देह बिहूणा देव।
कबीर तहा विलंबियो, करे अलष की सेव॥४१॥

अंत में दादू जी ने स्पष्ट शब्दों में एक साथ ही मंदिर, मूर्तिपूजा आदि को 'झूठा' कर दिया——

झूठे देवा झूठी सेवा, झूठी करै पसारा।
झूठी पूजा झूठी पाती, झूठा पूजन हारा॥

—राग रामकली, १६७।

पाहन की पूजा करै करि आतम घाता।

—राग रामकली, १६६।

धार्मिक ऐक्य पर ज़ोर

संतो ने 'धर्म' को बड़ी व्यापक दृष्टि से देखा था। यह हिंदू धर्म है, यह इस्लाम है, यह, मसीह' का धर्म है तथा ऐसी ही अन्य बातों से इन को चिढ़ थी। धर्म तो एक है। इसे जाति या संप्रदाय-विशेषो के अनुसार खंडशः नहीं किया जा सकता और जो खडशः किया जा सकता है वह धर्म नहीं, तथाकथित धर्म के नाम पर लड़ने का बहाना मात्र है। जो 'धर्म' है वह सब के लिये धर्म है वर्ना वह धर्म नहीं है। हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई ये नहीं जानते थे। ये जानते थे केवल मनुष्य और मनुष्य मात्र का साधारण धर्म, दूसरे शब्दों मे जिस को, विश्व धर्म' या Costmopolitan Religion कहते हैं इस के वास्तविक सिद्धांत बीजारोपण सब से पहले इन्हीं महात्माओं ने किया था। दादू जी कहते हैं—

हिंदू तुरुक न जानौं दोई।
साईं सबनि का साईं है रे, और न दूजा देखौं कोई ॥

—राग भैरों, ३६६।

\+ \+ \+

हिंदू तुरुक न होइब, साहिब से ती काम।
षट्दर्शन के सग न जाइब, निर्पख कहिबा राम ॥

—मधि अग, ४

\+ \+ \+

सब हम देख्या सोधि करि दूजा नाहीं आन।
सब घट एकै आतमा, क्या हिंदू मुसलमान ॥

—दया निर्बैरता अंग ५ ॥

\+ \+ \+

अल्लह राम छूटा भ्रम मोरा।
हिंदू तुरक भेद कुछ नाहीं, देखौं दर्शन तोरा

—राग तोड़ी, ६५।

अवतार

संतों के धार्मिक विचारों की आलोचना करते समय यह प्रश्न उठ सकता है कि 'अवतारवाद' के संबंध में इन का क्या मत था। यह तो सहज ही अनुमेय है कि जो साकार उपासना को व्यर्थ समझता है, मंदिर मस्जिद जिस के लिये ढोंग है वह ईश्वर के अवतार में भी आस्था न कर सकेगा। ईश्वर तो अनादि, अनत है फिर उस का जन्म, मरण या पुनर्जन्म या अवतार कैसा। अवतार रूप में ईश्वर कल्पना करना इन के अनुसार संकीर्णता थी। दादू जी कहते हैं—पीव पिछाण अंग में —

मरै न जीवै जगत गुरु, सब उपजि खपै उस माहि। १६।

+ + +

पूरण निश्चल एकरस, जगति न नाचै आइ

इसी सबध में कबीर जी कहते हैं—

जाके मुह माया नहीं, नहीं रूपक रूप।
पुहुप बास थैं पतला, ऐसा तत अनूप॥

तो फिर संतो के अनुसार वास्तविक धर्म है क्या? पूजा, जप, तप, मदिर मस्जिद, काशी, काबा, मूर्ति, अवतार रोजा, नमाज यह सभी तो 'झूठा' है। फिर सच्चा क्या है? ये कहते हैं सत्य की खोज कैसी? वह तो स्वयं प्रकाशमान है, हाँ जो उसे देखने की सचमुच परवाह करता हो। सत्य तो इतना स्पष्ट है कि इस का छिपाया जाना या उस का न दिखाई पड़ना ही असंभव है। अपने चारों ओर जो कुछ हम देखते हैं वह सभी तो सत्य है। वेदांतियो की भाँति इन संतों की फिलासफी मे 'यह सब 'मिथ्या' अथवा 'स्वप्न' नही है। 'जगत्' को मिथ्या नहीं माना इन्हों ने। यदि 'ब्रह्म सत्य है तो जगत् मिथ्या कैसे?' जगत् भी तो ब्रह्म का ही एक प्रदर्शन विशेष है। जगत् को 'मिथ्या', 'माया', 'भ्रम', या 'स्वप्न' मानते हुए हम ब्रह्म को कैसे सत्य कहते हैं। हमारे सामने सब से पहले जगत् ही आता है और उसी को यदि मिथ्या मान लिया जाय तब तो सब ही कुछ मिथ्या हो जायगा। जो हो, यह बड़ा जटिल प्रश्न है और अनादि काल से तत्वचिंतकगण इस पर विचार-विवाद करते आ रहे हैं, और शायद महाप्रलय तक करते रहेंगे। पर निश्चित रूप से कोई बात कम से कम अभी तक तो तय नही पाई, आगे की परमात्मा जाने। यहां पर हमारा काम था इस प्रश्न पर संतकवियों के सिद्धांत का प्रतिपादन कर देना, सो हम ऊपर कर चुके। दादू जी कहते हैं - 'सुमिरन' अग में- कि रसातल के अत से लेकर आकाश के ध्रुवतारा तक जो कुछ हम देखते हैं सभी सत्य है। मन के जिस अंतस्तल मे तुम खुशी को छिपा कर रखते हो वहां तुम सत्य को थोड़े ही छिपा कर रख सकते हो। चाहे तुम कोटि जतन करो पर उस सत्य को नहीं छिपा सकते—

मुख्य धर्म सेवा

सत्य क्या है

भावै तहाँ छिपाइये, साच न छाना होइ।
सेस रसातल गगन धू परगट कहिये सोई॥' ११०॥

+ + +

अगम अगोचर राखिये, करि करि कोटि जतन।
दादू छाना क्यों रहे, जिस घट राम रतन॥ ११५॥

हिंसा का त्याग

इस लिये मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है प्राणीमात्र की यथाशक्ति सेवा और सब प्रकार के हिंसा-द्वेष का त्याग। प्राणीमात्र पर सदय तो रहना ही चाहिये, पर इन सतों के अनुसार पेड़ पल्लव मे भी जान होती है और 'साहिब' का वास चराचर सब के अदर है अतः किसी को दुख न देना चाहियेः—

दादू सूखा सहजै कीजिये, नीला मानै नाहिं।
काहे कौं दुख दीजिये, साहिब है सब माहिं॥

—दया निर्वैरता, २१

कर्म का उपदेश

हम प्रायः देखते हैं कि सत मलूकदास की एक वाणी को लेकर कुछ लोग प्रायः समूचे संतसाहित्य का मखौल उड़ाया करते हैं। वह वाणी यों है—

अजगर करै न चाकरी, पछी करै न काम।
दास मलूका कहि गए, सब के दाता राम॥

इस मे स्पष्ट रूप से सारे सांसारिक कर्मों से निरत होकर 'राम आसरे' अपने को छोड़ देने का उपदेश है। पर इसे हम एक अपवाद मात्र कह सकते हैं और एक अपवाद से सिद्धांत की पुष्टि ही होती है। यद्यपि इस दोहे का वास्तविक अर्थ कुछ विद्वानो के अनुसार यह नहीं है कि निश्चेष्ट होकर बराबर पड़े ही रहना और कुछ करना ही नहीं। इस का मर्म केवल यही है कि जो पूर्ण रूप से अपने को ईश्वर में समर्पित कर देता है उस को रोटी की चिंता से विचलित न होना चाहिये, जीविका के लिये भटकते न रहना चाहिये। इस का यह अर्थ नहीं कि जिस के पास जो जीविका हो उस को भी छोड़ कर बैठ जाना और राम राम जपने लगना चाहिये। पर यह यदि न माने तो भी क्या इस दोहे के कारण कबीर, दादू आदि सभी को इसी मत का पोषक मानना पड़ेगा?

तथ्य तो यह है कि गीता के 'कर्म' की फिलासफी और कर्मयोग का पूरा उपदेश हम संतों की वाणियो मे पाते हैं। हम पहले उदाहरण दिखला चुके हैं, कि मनुष्य के लौकिक धर्म पर कितना जोर दिया है इन महात्माओं ने। गीता के प्रसिद्ध श्लोक—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" का अक्षरशः पालन ये करते थे, और इसी का उपदेश देते थे। फलकामना की व्यर्थता के सबंध में 'निहकरमी-पतिव्रता' के अंग में दादू जी साफ कहते हैं—

फल कारन सेवा करइ, जॉचइ त्रिभुवन राव।
दादू सो सेवक नहीं, खेलइ अपना दाव॥ ६२

\+ + +

तन मन सब लागा रहइ, दाता सिरजन हार।
दादू कुछ माँगइ नहीं, ते विरला संसार॥ ६४

फिर 'कर्म' की महत्ता के संबंध में कहते हैं —

करम करम काटइ नहीं, करमइ करम न जाय॥
करम करम छूटइ नहीं; करमइ करम बँधाइ॥ ६७

कर्म से छुटकारा नहीं है। योग, जप, तप, चाहे जो करो, सांसारिक कर्म से बरी कभी नहीं हो सकते।

संत काव्य की भाषा और वाणी-विभाग

संत काव्य की विचारधारा के संबंध में समष्टि रूप से कुछ थोड़ी सी गवेषणा ऊपर की पक्तियों में की गई। यह केवल इतनी ही है जिससे साधारण पाठक को संतसाहित्य की रूपरेखा से कुछ सामान्य परिचय हो जाय और उद्देश्य यह है कि वास्तविक संतकाव्य के अध्ययन और मनन का शौक़ पैदा हो, बस।

अब यहां पर संतसाहित्य में कविता का कौन सा 'फार्म' या वाह्यप्रकार काम में लाया गया है, यह भी संकेत कर देना अनुचित न होगा। 'फार्म' के अंदर मुख्य दो बातें हैं—भाषा और छंद।

भाषा के संबंध में हम पहले संकेन कर चुके हैं कि इन्होंने भाषा या कविता के वाह्य को तो बिलकुल ही व्यर्थ की बात समझी। इस ओर इन का ध्यान ही न था और न ये अधिकांश में पढ़े लिखे ही थे। ये थे पहुँचे हुए विचारक और साधक। ये सोधी बात सीधे तरीक़े से कहने के क़ायल थे। और वसूलन ये कथित, या सर्वसाधारण के रोजमर्रा की बोलचाल की भाषा में ही अपना संदेश रखने के पक्षपाती थे। पर प्रांतीयता के प्रभाव से ये नहीं बच सके। जो संत जिस प्रांत के रहने वाले थे वहाँ का रंग उन की भाषा पर खूब ही चढ़ा। उदाहरण के लिये नानक की वाणियों में पंजाबीपना और कबीर में बनारसीपने की भरमार की ओर इशारा कर देना काफ़ी होगा।

अब छंद के बारे में। केशव आदि पिंगल-पारदर्शियों की भाँति छंद की जादूगरी से इन भोले संत लोगों का क्या वास्ता? इन के यहां तो बस एक दोहा है, और या तो फिर रागों में कहे हुए पद। पर विशेष भाग दोहा ही है, संत साहित्य समुद्र को पार करने के लिये पोत के समान। इन के पदों में सूर और मीरा आदि के पदों का इतना संगीत तो नहीं है पर कुछ है अवश्य। सूर और मीरा का जीवन ही संगीतमय था, पर यही बात हम कबीर और दादू के बारे में नहीं कह सकते। कुछ पद कबीर के भी गाने लायक बन पड़े हैं पर चिमटा खंजड़ी वाले साधू गवैयों ने उन्हें ज्यादा अपनाया बनिस्पत मार्गीय संगीतज्ञों के। इन के लिये तो सूर और मीरा के पद ही सब कुछ हैं। इस का कारण यही है कि संत कवि

ज्ञान और साधना के ज्यादा कायल थे और ये प्रेम और साकार भक्ति के। फलतः इन के पद साधारण व्यक्ति को ज्यादा मधुर जँचेंगे ही।

पर संत-साहित्य के बाह्य में सब से मार्के की चीज है इन का वाणी-विभाग, उपयुक्त शीर्षकों द्वारा। दूसरे शब्दों में इसे हम वाणी का 'अंगन्यास' कह सकते हैं। प्रत्येक संत की साखियों और 'शब्द' कुछ अंगों में विभाजित हैं और ये अधिकांश संतों में साधारण हैं, जैसे 'गुरु को अंग' 'सुमिरन को अंग' इत्यादि। ये अंग संख्या में लगभग चालीस के हैं:—

१—गुरु	को	अंग
२—सुमिरन	”	”
३—विरह	”	”
४—परचा	”	”
५—जरणा	”	”
६—हैरान	”	”
७—चेतावनी	”	”
८—निहकरमी, पतिव्रता	”	”
९—लय	”	”
१०—माया	”	”
११—सूछम जनम	”	”
१२—मन	”	”
१३—साँच	”	”
१४—साधु	”	”
१५—भेख	”	”
१६—सत्य	”	”
१७—मध्य	”	”
१८—पीव पिछाण	”	”
१९—विचार	”	”
२०—विस्वास	”	”
२१—सारग्रही	”	”
२२—समरथ	”	”
२३—जीवितमृतक	”	”
२४—उपज	”	”
२५—दयानिर्वैरता	”	”
२६—सूरमा	”	”
२७—बेली	”	”
८—कस्तूरिया मृग	”	”

२९—उपज को अंग
३०—परख " "
३१—सजीवन " "
३२—काल " "
३३—सूरातन " "
३४—संबद् " "
३५—बिनती " "
३६—निंदा " "
३७—निरगुन " "
३८—सुंदरी " "
३९—अबिहड़ " "
४०—समृथाई " " इत्यादि

यों तो इन शीर्षकों का प्रयोग अधिकतर इन के साधारण अर्थों में ही हुआ है। पर कहीं कहीं कुछ विचित्रता भी है, सो उस का मर्म वास्तविक अध्ययन और मनन से ही समझ में आ सकता है। इन के ऊपर सम्यक् विचार करने के लिये एक पृथक ग्रंथ अपेक्षित है। खेद है कि किसी आलोचक ने अभी तक इस ओर ध्यान नहीं दिया।

अब रह गया अगले पृष्ठों में दिए संग्रह के बारे में। हिंदी का संतकाव्य एक अगम समुद्र की भाँति है और इस में से अनमोल रत्नों को खोज लेना आसान काम नहीं है। बीस हज़ार छंद से नीचे तो किसी संत की रचना कही ही नहीं जाती। बहुतों की लाख सवालाख के ऊपर संख्या भक्तों ने कही है, और ये संत स्वय भी बहुत से हैं। इस छोटे से संग्रह में कबीर, दादू, नानक आदि कुछ प्रसिद्ध संतों की रचना का ही समावेश हो सका है।

अंत में पाठ के सबंध में हमें केवल यही कहना है कि इस संबंध में हम निरुपाय हैं। संत-साहित्य के जो प्रकाशित ग्रंथ बाज़ार में लभ्य हैं उन्हीं पर हमें भरोसा करना पड़ा है। कबीर का तो एक संपादित विश्वसनीय संस्करण नागरीप्रचारिणी सभा से निकल चुका है। इसी प्रकार कुछ और सुसंपादित संतों की रचनाएं भी लभ्य हैं, पर अधिकांश में हमें वेलवेडियर प्रेस की 'संतबानी संग्रह' नाम की सीरीज़ पर ही निर्भर करना पड़ा है। इन पाठों में बड़ी गड़बड़ी है। इस का मुख्य कारण यही है कि अधिकांश संत कवि स्वयं अपनी रचना लिपिबद्ध नहीं कर गये हैं। इन के भक्तों ने इन्हें याद किया, और फिर लिखा, और बहुधा अपनी ओर से यथेष्ट संशोधन और परिमार्जन कर के। भक्तों में भी दो किस्म के लोग थे। एक 'भगजिया,' और दूसरे 'कगदिया,'। बहुत से भक्त भी ऐसे थे जो अपने गुरु देवों की भाँति लिखना पढ़ना नहीं जानते थे और वेदों की भाँति

पुश्तहापुश्त बानियों को कठस्थ रखते चले आ रहे थे और अपनी रचनाएं भी अपने गुरु का नाम देकर जोड़ते चले जा रहे थे। इस प्रकार गुरु की वास्तविक रचना का आकार और प्रकार दोनों ही में असाधारण वृद्धि और परिवर्तन होना अनिवार्य था। और हुआ भी ऐसा ही। ये कंठस्थ रखने वाले भक्त ही 'मगजिया' कहलाते थे। ये अब भी मिलते हैं खास कर जयपुर और बनारस में। बानियों को तुरंत लिख डालने वाले भक्त 'कगजिया' कहलाते थे। इन के संस्करणों में मौलिक पाठ में रद्दोबदल कम ही हुआ, पर किस कवि की रचना हम को मगजियों से मिली है और किस की कगदियों से, यह निर्णय करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है।

अगली जिल्द में जायसी आदि प्रेमगाथा-काव्य के लेखकों के संग्रह होंगे।

विजया दशमी
सन् १९३८

गणेशप्रसाद द्विवेदी

कबीर

संस्कृत और हिंदी दोनों ही इस लिये प्रसिद्ध हैं कि इनके शायद ही किसी प्राचीन या मध्यकालीन कवि की जन्म या मरण तिथि निर्विवाद रूप से ज्ञात हो, और खेद से कहना पड़ता है कि कबीर भी इस नियम के अपवाद नहीं हैं। भिन्न-भिन्न अन्वेषकों ने भिन्न-भिन्न रूप से कबीर-संबंधी तिथियाँ स्थिर की हैं पर प्रश्न अभी ज्यों का त्यों है। सब के मतों का मिलान करने पर हम केवल इतना ही निश्चय पूर्वक समझ सकते हैं कि इनका आविर्भाव और रचनाकाल चौदहवीं से लेकर पंद्रहवीं या सोलहवीं शताब्दी के बीच में रहा होगा। यहाँ संक्षेप से इनके तिथिसंबंधी विभिन्न मतों पर एक दृष्टि डालने से यह कथन स्पष्ट हो जायगा।

कबीर का समय

कुछ कबीरपंथियों के अनुसार कबीर ३०० वर्ष जीवित रहे। इनके अनुसार उनका जन्म सं० १२०५ और मृत्यु सं० १५०५ में हुई। परंतु इस कथन पर तो हम अधिक ध्यान दिए बिना ही कबीर को परमात्मा समझने वाले उनके अनुयायिओं की कोरी कल्पना मात्र कह कर एक किनारे रख सकते हैं। डा० हंटर ने इनका जन्म सं० १४३७ में और विल्सन साहब ने इनकी मृत्यु सं० १५७५ में मानी है। रेवरेंड वेस्टकाट इनका जन्म सं० १४९७ और मृत्यु सं० १५७५ में स्थिर करते हैं। इन तिथियों के अतिरिक्त कबीर के जन्म के संबंध में नीचे दिया हुआ एक पद्य बहुत प्रसिद्ध है जो कि इनके प्रधान शिष्य और इनकी गद्दी के प्रथम उत्तराधिकारी धर्मदास का रचा हुआ कहा जाता है—

चौदह सौ पचपन साल गए, चंद्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए॥
घन गरजे दामिनि दमके बूँदे बरषे झर लाग गए।
लहर तलाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु प्रगट भए॥[1]

इसके अनुसार कबीर का जन्म सं० १४५५ ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा के सोमवार को मानना चाहिए, परंतु अन्वेषकों की गणना से ज्ञात हुआ है कि सं० १४५५ के ज्येष्ठ की पूर्णिमा सोमवार को नहीं पड़ती। परंतु सं० १४५६ के ज्येष्ठ की पूर्णिमा सोमवार को पड़ती है, और उक्त पद्य की "चौदह सौ पचपन साल गए" वाली पंक्ति के आशय पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि रचयिता का तात्पर्य सं० १४५५ वाले साल के बीत जाने के बाद आने वाले नए साल अर्थात् सं०

---

[1] कबीर कसौटी—ले० श्री बाबू लैहनासिंह (श्रीवेंकटेश्वर प्रेस-बम्बई) पृ० ७

१४५६ से ही रहा होगा, अन्यथा उक्त पंक्ति में आए हुए "गए" शब्द का कोई अर्थ नहीं हो सकता।

इसी प्रकार इनके स्वर्गवास की तिथि के संबंध में भी निम्नलिखित पंक्तियाँ बहुत प्रचलित हैं—

(१) संवत् पंद्रह सौ औ पाँच मौं, मगहर कियो गमन।
अगहन सुदी एकादसी, मिले पवन में पवन॥
(२) संवत् पंद्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गवन।
माघ सुदी एकादसी, रलो पवन में पवन॥

इन में से प्रथम के अनुसार कबीर की मृत्यु सं० १५०५ में और दूसरे के अनुसार सं० १५७५ मे सिद्ध होती है, पर बार न दिए होने के कारण गणना से दोनों तिथियों की जाँच करना असंभव है और फिर दोनो में अंतर भी ७० वर्ष का है। परंतु अब तक के प्राप्त प्रमाणों से ऐसा जान पड़ता है कि कबीर साहब स० १५७५ तक जीवित रहे होंगे। कम से कम इतना तो हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि सं० १५०५ के बहुत दिनों बाद तक कबीर अवश्य जीवित रहे होंगे। इस धारणा का सब से मुख्य कारण यह है — यह बात लोकप्रसिद्ध है कि कबीर बादशाह सिकंदर लोदी के समकालीन थे और उसी के अत्याचार से तंग आकर उन्हें काशी छोड़कर मगहर चला जाना पड़ा था। परंतु सिकंदर लोदी का राजत्वकाल सं० १५७४ से १५८३ ई० (१५१७-२६) तक था। ऐसी अवस्था में कबीर की मृत्यु सं० १५०५ मेंनना असंभव है, और साथ ही स० १५७५ तक कबीर का जीवित रहना मानना भी असगत नहीं जान पड़ता। फिर रेवरेंड वेस्टकाट का कहना है कि गुरु नानक जब २७ वर्ष के थे तब उनकी कबीर से मुलाकात हुई थी, और नानक की कविताओं पर कबीर की इतनी गहरी और स्पष्ट छाप देखते हुए इस कथन पर विश्वास करने में कोई आपत्ति नहीं जान पड़ती। नानक का जन्म सं० १५२६ में हुआ था। सो इस प्रकार भी कबीर का कम से कम सं० १५५३ तक जीवित रहना तो निश्चय ही समझना चाहिए। 'भक्ति सुधाविंदु स्वाद' के लेखक सीतारामशरण भगवानप्रसाद ने कबीर का जन्म सं० १४५१ और मृत्यु सं० १५५२ में मानी है।[1] परन्तु इसके अनुसार कबीर की मृत्यु नानक से भेंट होने के एक साल पहले ही सिद्ध होती है। इनके मृत्यु सबधी सब प्रमाणो की परीक्षा करने पर स० १५७५ को ही इनकी निधनतिथि मानना ठीक जान पड़ता है। इस तिथि के सबंध में ऊपर जो दोहा उद्धृत किया गया है उसकी पुष्टि 'कबीर कसौटी' से भी होती है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि 'माघ सुदी एकादशी,

---

[1] 'भक्ति सुधाविंदु स्वाद' (हितचिंतक प्रेस, बनारस) पृ० ७१४, ८४०

दिन बुधवार, सं० १५७५ को काशी को तजकर मगहर को चले।[1] वेस्टकाट साहब भी इसी मरण तिथि को ठीक समझते हैं।[2] डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा अंडरहिल साहब भी इसी को प्रामाणिक तिथि समझते हैं।[3]

अंत मे अब तक मिले हुए सब प्रमाणो की परीक्षा करने पर कबीर का जन्म सं० १४५६ और मृत्यु सं० १५७५ के लगभग मानना ही युक्तिसगत सिद्ध होता है। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि इन तिथियो मे से कोई भी निर्विवाद रूप से सिद्ध नहीं है, पर इतना कहने मे हम को कोई आपत्ति नहीं है कि कबीर की जीवन मरण सबधी निकटतम तिथियाँ यही जान पड़ती हैं। पर इन तिथियों पर विश्वास करने मे एक कठिनाई यह पड़ती है कि इनके अनुसार कबीर की आयु प्रायः १२० साल की ठहरती है और साधारणतया इतना दीर्घजीवी कोई बिरला ही हुआ करता है। इसका समाधान लोग इस प्रकार करते हैं कि कबीर के जीवनयात्रा के नियम तथा उनके रहन सहन के ढंग कुछ ऐसे थे कि उनका इतनी बड़ी आयु पाना कोई बड़े आश्चर्य की बात नही है। इस समय भी सरल जीवन बिताने वाले ऐसे बहुत से लोग मिलते है जिनकी आयु सवा सौ वर्ष से भी ऊपर हो चुकी है। फिर यह बात लोकप्रसिद्ध है कि कबीर एक पहुँचे हुए फकीर और योगी थे। हठ और राजयोग के प्रभाव से जरा और व्याधि के ऊपर विजय प्राप्त कर सकना अब एक वैज्ञानिक सत्य माना जाता है। पुराकाल के ऋषि मुनि तो योगाभ्यास के बल से मृत्यु को भी वश मे रखते थे, और ऐसी अवस्था मे कबीर का साधु और सयत जीवन बिताने के परिणाम स्वरूप १२० वर्ष जीना कोई अनहोनी बात न मानी जानी चाहिए।

कबीर का आविर्भाव

कबीर का जन्म सबधी कई कथाए और किंवदंतियां प्रचलित हैं पर सब का उल्लेख यहां असंभव है। यद्यपि यह सभी कथाएँ रोचक हैं पर इन में से किस को हम प्रमाण मान सकते हैं यह निश्चय करना बहुत कठिन है।[4] इनमें से एक का, जो सब से अधिक प्रचलित और जिस का प्रायः सभी जगह उल्लेख पाया जाता है, वर्णन किया जाता है—काशी मे स्वामी रामानंद के शिष्य एक ब्राह्मण रहते थे। वे एक बार अपनी विधवा कन्या को लेकर स्वामी जी के पास दर्शनार्थ गए और

---

[1] 'कबीर कसौटी' पृ० ४४

[2] 'कबीर ऐंड दि कबीर पंथ'—रेवरेंड वेस्टकाट (क्राइस्ट चर्च मिशन प्रेस)

[3] ('वनहड्रेड पोएम्स आफ़ कबीर'—मैकमिलन कंपनी भूमिका, पृ० १०६

[4] बनारस गज़टियर के अनुसार कबीर का जन्म आज़मगढ़ ज़िले के बेलहरा नाम के गाँव में सं० १४५५ में (ई० १३९८) और मृत्यु सं० १५०५ में हुई थी। रेवरेंड वेस्टकाट साहब इस मृत्यु तिथि को ठीक समझते हैं।

प्रणाम करने पर उन्होंने उस लड़की को आशीर्वाद देते हुए कहा कि तुझे एक बड़ा प्रतापी पुत्र होगा। परंतु उसके पिता ने चौंक कर स्वामी जी से लड़की का वैधव्य बताया पर यह सुनकर भी स्वामी जी ने थोड़ी देर तक ध्यानमग्न रहकर कुछ खेद प्रगट करते हुए कहा कि यह आशीर्वाद अन्यथा नहीं हो सकेगा। अंत मे उसे एक लड़का हुआ और अपनी लज्जा छिपाने के लिये वह उस नवजात शिशु को लहर तारा नाम के एक तालाब में डाल आई। पर सुयोग से थोड़ी ही देर बाद नीरू नाम का एक जुलाहा नीमा नाम की अपनी स्त्री के साथ उधर आ निकला। ये दोनो बिचारे संतान सुख के बिना लालायित रहा करते थे और इस अवसर पर ऐसी अवस्था मे सुदर मुखश्रीयुक्त उस होनहार शिशु को देखकर वे उसे अपना पोष्य पुत्र बनाने का निश्चय कर बड़े प्रेम से उसे उठा ले गए और उसका लालन-पालन करने लगे। यहां पर यह कह देना उचित जान पड़ता है कि उस विधवा ब्राह्मण कन्या के पुत्र होने की बात कोइ असभव घटना नही है। ऐसी घटनाएं प्राय: हुआ करती हैं, पर इस सबध मे रामानद के आशीर्वाद वाली कथा शायद उस लड़की की लज्जा रखने और कबीर को उत्पत्ति को एक निराला रूप देने के लिये ही जोड़ी गई है। ऐसी कथाएँ प्राय: महापुरुषों की उत्पत्ति के सबंध मे जोड़ी हुई मिलती है। मुसलमान घराने में लालित पालित होते हुए भी कबीर का हिंदू विचारो के साथ इतनी स्वाभाविक सहानुभूति रखना बलात् यह धारणा प्रबल करता है कि हो न हो इनकी उत्पत्ति किसी हिंदू कुल मे ही हुई होगी। यद्यपि इन की रचनाओ से इन के जुलाहा होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं, पर साथ ही ऐसे पद्य भी मिलते हैं जिन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्हे अपने जुलाहा होने और किसी ब्राह्मण के कुल मे न उत्पन्न होने पर कभी कभी बड़ा दुख होता था। दो एक पद्य नीचे दिए जाते हैं—

जाति जुलाहा मति को धीर।
हरषि हरषि गुन रमै कबीर॥
मेरे राम की अभैपद नगरी,
कहै कबीर जुलाहा।
तू ब्राहन मैं काशी का जुलाहा।

उक्त पद्य में यह अपने को स्पष्ट रूप से जुलाहा कहते हैं और साथ ही नीचे दिए हुए पद्य में वह इसी विषय पर खेद प्रगट करते हुए दिखाई पड़ते हैं—

पूरब जनम हम ब्राहन होते ओछे करम तप हीना।
राम देव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीना॥

यह इस पद्य मे पूर्व जन्म में अपने को ब्राह्मण होना तथा इसी जन्म में किए हुए नीच कर्मों के प्रभाव से स्रष्टा द्वारा जुलाहा के घर में उत्पन्न किए जाने की बात कहते हैं। उनका विश्वास था कि उस जन्म में हरि सेवा नहीं बन पड़ी

और इसी पाप से उद्धार पाने के लिये ही शायद उन्होंने निरंतर ईश गुण गान में मग्न रह कर अपनी पूर्वजन्म की भूल सुधारने की चेष्टा की थी।

उक्त कथन से कबीर का जन्म काशी मे सिद्ध होता है पर कुछ समालोचक ग्रंथ साहब में दिए हुए कबीर के एक पद के आधार पर इनका जन्मस्थान मगहर मानते हैं। उस पद की एक पंक्ति यो है—"पहिले दरसन मगहर पायो पुनि काशी बसे आई।" इस पंक्ति के आधार पर कबीर का उस विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से काशी मे प्रगट होने की बात निराधार सिद्ध होती है, और शायद इसी के आधार पर कुछ विद्वान् इन्हे नीरू और नीमा का औरस पुत्र मानना ही ठीक समझते हैं। परंतु ग्रथ साहब वाले उक्त पद के कबीर की रचना होने मे कुछ लोग संदेह करते हैं, और सदेह होने का उचित कारण भी है। ग्रंथ साहब एक ऐसा सग्रह ग्रंथ है जिस में अनेक सतों की बानियों का सकलन है। इस का वर्तमान रूप कबीर के मरने के सैकडो वर्ष बाद हुआ है। और संकलनकर्त्ता गण, जैसा कि स्वाभाविक है, संतो की महिमा बढ़ाने के लिये जो कोई भी पद जिस के नाम से मिला, मिलाते चले गए हैं। तात्पर्य यह है कि इस मे कबीर के बहुत से ऐसे पदों का होना जिन्हे उन्होंने स्वय कभी नहीं बनाया और जिन्हें उनके अनुयायी किसी खास पक्ष को दृढ़ करने या और ही किसी मतलब से रचा होगा, असंभव नही है। और इसी कारण से हम ग्रंथ साहब की उक्त पंक्ति को कोई विशेष महत्व देने मे असमर्थ हैं, और सो भी खास कर ऐसी अवस्था मे जब कि बीजक आदि कबीर के अधिक प्रमाणित ग्रंथों मे उनके काशी मे जन्म लेने और अंतकाल मे मगहर जाने के पक्ष मे कई उक्तियाँ मिलती हैं। ग्रंथ साहब की उक्त पक्ति पर विचार करते हुए बाबू श्यामसुंदर दास कहते हैं कि 'कदाचित् उनका बालकपन मगहर मे बीता हो और वे पीछे से आकर काशी मे बसे हों, जहाँ से अतकाल के कुछ पूर्व उन्हे पुनः मगहर जाना पड़ा हो।'[1] सभी बातों पर विचार करते हुए बाबू साहब भी इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि 'कबीर ब्राह्मणी या किसी हिंदू स्त्री के गर्भ से उत्पन्न और मुसलमान परिवार मे लालित पालित हुए थे।'[2]

कबीर के नाम के संबंध मे भी दो एक कथाएँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि तालाब में पाए हुए उस बच्चे के नामकरण के लिये नीरू और नीमा उसे काज़ी के पास ले गए। कुरानशरीफ खोलते ही पहले उसकी निगाह 'कबीर' शब्द पर पड़ी पर उसे एक जुलाहे के लड़के का नाम 'कबीर' रखते हुए कुछ हिचक मालूम हुई। यह देखकर उसने

नामकरण

---

[1] कबीरग्रंथावली—बाबू श्यामसुंदर दास, काशी नागरीप्रचारिणीसभा पृ० २४

[2] वही, पृ० २४।

और कई काजियों से कुरानशरीफ खुलवाया पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ जबकि सभो ने वही पृष्ठ खोले और सभों की निगाह पहले 'कबीर' वाले शब्द पर ही पड़ी। यह देख काजी का माथा ठनका और उसने यह कहते हुए उस लड़के का नाम 'कबीर' रक्खा कि हो न हो यह लड़का कोई वड़ा प्रतापी मनुष्य होगा। अरबी मे कबीर शब्द के अर्थ होते हैं 'सबसे महान्'। 'अकबर' शब्द की उत्पत्ति भी उसी धातु से है। 'कबीर' और 'अकबर' यह दोनो ही शब्द ईश्वर के विशेपण हैं।

गुरु

कबीर के जीवन का सुसंबद्ध कोई वृत्तांत नहीं मिलता। जो कुछ अब तक जाना जा सका है वह किंवदंतियों के आधार पर इनके जीवन से संबंध रखने वाली कुछ मुख्य घटनाएँ हैं। इनमें से कुछ इनके विवाह, इनकी संतान, गुरु, मृत्यु तथा इनके द्वारा किए गए माने जाने वाले कुछ अलौकिक कृत्यो से सबंध रखती हैं।

इस प्रकार की कुछ कथाओं की पुष्टि तत्कालीन इतिहास से भी होती है और इस लिए इनमे से कुछ महत्वपूर्ण घटनाओ का सक्षिप्त वर्णन यहाँ आवश्यक है। इनके गुरु कोन थे, इस विषय को लेकर काफ़ी मतभेद चला आ रहा है। कुछ लोगों की धारणा है कि कबीर ने कभी किसी को अपना गुरु न बनाया होगा। उनके इस कथन का आधार यह है, जैसा कि कबीर की रचनाओं से भी स्पष्ट है, कि कबीर ने यदि अपने जीवन मे कुछ किया तो वह 'गुरुडम' आदि बुद्धिस्वातंत्र्य तथा विचारस्वातत्र्य आदि मे वाधा डालने वाली पुरानी प्रथाओं का विरोध तथा अंधविश्वास पर कुठाराघात ही है। ऐसा मनुष्य किसी को अपना गुरु बनावे यह ज़रा कुछ अस्वाभाविक जान पड़ता है। यह तर्क बहुत ठीक है पर इसमे जिस प्रकार के 'गुरु' या 'गुरुडम' की ओर सकेत किया गया है उसके अतिरिक्त और प्रकार के भी गुरु हो सकते हैं। आधुनिक समय मे भी ससार के वड़े से बड़े स्वतंत्र विचार वाले भी किसी न किसी को अपना मानसिक गुरु या पथप्रदर्शक मानते हैं, पर इस का मतलब यह न होना चाहिये कि जिसको पथप्रदर्शक माना वह जो कुछ भी कहता हो या कह गया हो वही ऑख मूंद कर करते चलना। प्रत्येक प्रकार के कार्यक्षेत्र मे कुछ महापुरुप ऐसे हो गए हैं जिनके कार्यकलाप को मनन करने, उनके कथनों पर विचार करने या उनके स्मरण मात्र से हमें अपने कर्त्तव्यपालन मे एक लोकोत्तर उत्तेजना तथा उत्साह सा मिल जाता है, कठिन समस्याओ के सुलझाने की तरकीब मालूम हो जाती है और हम आगे बढ़ चलते हैं। इसी को अंग्रेजी में 'इन्स्पिरेशन' पाना कहते हैं। पर यह 'गुरुडम' से बिलकुल भिन्न है। कबीर ने अपनी रचनाओ में जहाँ एक ओर अंधविश्वास और 'गुरुडम' के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाइ है वहीं दूसरी ओर उन्होंने बिना गुरु के 'चेताए'

ईश्वर का मिलना भी कठिन बताया है, दोनों ही प्रकार के उदाहरण भरे पड़े हैं। 'सद्गुरु' की आवश्यकता उसके 'लक्षण' तथा परम पद को प्राप्ति के संबध मे एक उपयुक्त गुरु की अनिवार्यता पर एक स्वर से सभी सत कवियो ने बड़ा जोर दिया है। पर खेद है कि कबीर जिस अर्थ में एक सद्गुरु होने की आवश्यकता का अनुभव करते थे, उसका महत्व इनके अनुयायी क्रमशः भूलने लगे और आगे चल कर वह सचमुच 'गुरुडम' में ही परिणत हो गया। इस विषय पर आगे यथा-स्थान प्रकाश डाला जायगा। जो हो, सब बातों पर समष्टि रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर भक्त के आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए एक विशेष सीमा तक गुरु का होना आवश्यक समझते थे और उन्होंने अपना गुरु स्वय स्वामी रामानंद को बनाया था। इसके संबंध मे एक विचित्र कथा प्रचलित है। कहते है कि लड़कपन मे ही कबीर को लोगों को उपदेश देते फिरने की लत पड़ गई थी। मगर उस समय उपदेश देने का अधिकारी वही समझा जाता था जिसने स्वयं किसी योग्य गुरु से दीक्षा ली हो, पर कबीर ने किसी को गुरु नहीं बनाया था और इस लिये इन्हें 'निगुरा' कह कर लोग इनका मखौल उड़ाया करते थे। स्वतंत्र विचार के पक्षपाती कबीर को जनता के सम्मुख अपने विचार प्रगट करने के लिए गुरु की छाप लगा कर अपने को पेटेंट बनाने की आवश्यकता का अनुभव नही हुआ था। आगे चल कर इन्होंने स्वामी रामानद के गुणों और विचारो पर मुग्ध होकर अथवा उपदेश देने का अधिकारी बनने भर के लिये इन्होंने स्वामी जी को जैसे हो अपना गुरु बनाने का निश्चय कर लिया। इसके सिवा कबीर स्वभाव से ही हिंदुओं मे प्रचलित प्रथाओं के प्रेमी थे। जुलाहे के घर मे लालित पालित होते हुए भी रामनाम जपने और धार्मिक उपदेश देने का इनको व्यसन तो हो ही गया था, कभी कभी ये गले में जनेऊ भी डाल लिया करते थे। इससे कट्टर और सनातनी हिंदू, विशेष कर हिंदुओं के धर्मयाजक पंडित और पुरोहित लोग इनसे बहुत चिढ़ गए और अनधिकारी कह कर इन्हे बहुत तग करने लगे। स्वामी रामानद को उस समय सभी बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। कबीर को निश्चय था कि यदि वे मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर लेगे तो सभो की जबान बंद हो जायगी। पर साथ ही साथ यह सोच कर कि एक जुलाहे को भला वे कब दीक्षा देने लगे, उन्होंने एक विचित्र रीति से अपना गुरु बनाया। स्वामी रामानंद नित्य प्रातःकाल चार बजे गगास्नान करने जाते थे; कबीर को यह बात मालूम थी। एक दिन उनके आने के समय से कुछ पहले जिन सीढ़ियो से उतर कर वह गंगा जी तक पहुँचते थे उनमे से किसी एक पर चुप चाप लेट रहे। स्वामी रामानद बेखटके सीढ़ियां तय करते जा रहे थे कि यकायक उनका खड़ाऊँ कबीर के सर से टकराया और वह रोने लगे। स्वामी जी को यह देख कर बडा दुख हुआ और वह उस रोते हुए लड़के के सर पर हाथ फेरते हुए उससे 'राम' 'राम' कहने का उपदेश देने लगे। कबीर ने रोना बंद कर कहा, "गुरु जी, क्या मैं 'राम'

'राम' कह सकता हूँ ?" स्वामी जी ने कहा, "हाँ, 'राम' 'राम कह।" कबीर ने उसी समय 'राम' 'राम' कहना आरंभ किया। दूसरे ही दिन उन्होंने अपने को रामानंद का शिष्य घोषित कर दिया। हिंदू लोग इस पर बहुत बिगड़े और अंत में अपना संदेह दूर करने के लिये रामानंद के पास यह पूछने पहुँचे कि क्या आपने सचमुच एक मुसलमान बालक को अपना शिष्य बनाया है ? पर उन्होंने तुरत इस बात को झूठ बताया। इस पर कबीर ने वहाँ पहुंच कर उस रात की सारी बातें उन्हें बताईं और पूछा कहा कि क्या आपने 'राम' 'राम' कहने की अनुमति नहीं दी थी ?" स्वामी जी इस पर निरुत्तर हो गये और उसी क्षण से उन्होंने प्रगट रूप से कबीर को अपना शिष्य स्वीकार किया। एक किंवदंती के अनुसार यह भी प्रसिद्ध है कि कबीर रामानंद के शिष्य के रूप में उनके साथ बहुत दिन तक रहे भी थे और उनके सब शिष्यों में अग्रगण्य थे। यह भी कहा जाता है कि उन्होंने बहुत से चमत्कार भी रामानंद को दिखाए थे और उन्हें कभी कभी उपदेश भी देते थे। एक अवसर पर रामानंद ने अपने स्वर्गीय गुरु का श्राद्ध करते समय अपने शिष्यों को दूध लाने के लिए भेजा। इनके और शिष्य तो दूध के लिये ग्वालों के पास गए पर कबीर वहाँ पहुँचे जहाँ मरी हुई गैयों की हड्डियाँ पड़ी रहती थीं। वहाँ उन्होंने उन हड्डियों को इकट्ठा कर उनसे दूध माँगा। जब उनके गुरु जी ने इस अनोखे काम की कैफ़ियत माँगी तो उन्होंने कहा कि मरे हुए गुरु के लिए मरी गैयों का दूध ही उपयुक्त होगा।

परंतु इतिहास की कसौटी पर कसी जाने पर रामानंद और कबीर संबंधी उपर्युक्त किंवदंतियां बहुत कुछ निराधार सी जँचने लगती हैं। कबीर का जन्म सं० १४५६ माना गया है ; और इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि रामानंद की मृत्यु सं० १४५२ या ५३ में ही हो गई थी। अधिक से अधिक सं० १४६७ के बाद कोई भी स्वामी रामानंद का जीवित रहना नहीं मानेगा। यदि रामानंद वास्तव में सं० १४५२ में ही मर गए थे तब तो कबीर से उनका साक्षात्कार भी असंभव माना जायगा, पर यदि सं० १४६७ में उनकी मृत्यु मानी जाय तो यह कहना पड़ेगा कि उस समय उनकी (कबीर की) अवस्था अधिक से अधिक ११ वर्ष की रही होगी। इस बात को स्मरण रखते हुए भी कि बहुत कम उमर में ही कबीर को उपदेश देने की आदत पड़ गई थी और इसके लिये उन्हें गुरु की आवश्यकता का अनुभव हुआ था, यह विश्वास करना ज़रा कठिन जान पड़ता है कि नौ या दस बरस की उमर में ही कबीर इतने मार्के के उपदेशक हो गये थे कि बड़े बड़े पंडितों का ध्यान आकृष्ट करने में समर्थ हुए और फलतः किसी योग्य गुरु के अभाव में कबीर को जिन्होंने इस उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य के लिये अनधिकारी करार देना जरूरी समझा। इस शंका का समाधान एक ही तर्क द्वारा कुछ अंशों तक हो सकता है। कबीर के जीवन-संबंधी प्रायः सभी बातों में थोड़ी बहुत अलौकिकता है। विलक्षण प्रतिभासम्पन्न तो ये थे ही, और ऐसी अवस्था में हो सकता है कि आरंभ से ही रामानंद के वाता-

वरण में रहने के कारण बचपन से ही उपदेशक या सुधारक बनने की उच्चाशा से प्रेरित हो यह उपदेशक बनने के प्रयत्न मे प्रवृत्त हो गए हो।

कबीर का गार्हस्थ्य जीवन

कुछ लोगों की धारणा है कि कबीर ने लोई नाम की एक स्त्री को पत्नी रूप से ग्रहण किया था। इस धारणा का आधार यह कथा है—एक बार कबीर देशाटन करते हुए किसी तपोवन मे एक साधु की कुटिया के पास पहुँचे। वहाँ उनका स्वागत बीस वर्ष की एक युवती कन्या ने किया। कबीर की उमर उस समय लगभग तीस बरस के थी। उस युवती ने इनसे उनका नाम पूछा तो उन्होंने अपना नाम 'कबीर' बताया। क्रमशः उसने इनकी जाति, वर्ण, वश और संप्रदाय आदि के बारे मे भी पूछा, पर सभी के उत्तर में उन्होंने सिर्फ, 'कबीर' कहा। इस पर उस कन्या ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि मैंने बहुत से साधु सतो के दर्शन किए हैं पर किसी ने मुझे ऐसा उत्तर नही दिया। कबीर ने कहा ठीक है, अन्य साधुओं के जाँति पाँति और सप्रदाय आदि हुआ करते हैं पर मेरे यह सब कुछ नही हैं। इसी बीच मे वहाँ छै अभ्यागत साधु आ पहुँचे। उस कन्या ने सत्कार के लिये सभों के सामने एक एक प्याला दूध रक्खा। और सब तो अपना अपना हिस्सा पी गए पर कबीर ने अपना प्याला एक ओर अलग रख दिया और पूँछने पर बताया कि यह मैंने एक और साधु के लिये रख छोड़ा है जो कि यहाँ आ रहे हैं और गंगा उस पार तक पहुँच गए हैं। थोड़ी ही देर मे यह बात ठीक उतरी और सचमुच वह साधु वहाँ आ पहुँचे। उस कन्या की उत्पत्ति सबंध मे यह कथा प्रचलित है—उसी कुटी मे जिसमें कबीर और लोई की मुलाकात हुई थी, पहले एक साधु रहा करते थे। उन्होंने गंगा जी मे स्नान करते समय एक दिन देखा कि बीच दरिया मे ऊनी कपड़ों मे लपेटी हुई कोई चीज किनारे की ओर बहती चली आ रही है। पास आने पर उन्होंने उसे उठा लिया और खोलने पर उन्हें उसमें एक सद्यः प्रसूता कन्या मिली। वे इसे ईश्वरीय दान समझ बड़े प्रेम से कुटी में ले जाकर दूध से उसका पालन-पोषण करने लगे। क्रमशः वह कन्या बड़ी हुई और उन्होंने उसका नाम भी लोई इसीलिए रक्खा था कि वह कपड़ों मे लपेटी हुई मिली थी। मरते समय वह लोई से कह गए थे कि किसी दिन उसे एक संत के दर्शन होगे जो कि भविष्य मे उसके पथप्रदर्शक होगे। अंत में यह हुआ कि लोई उसी दिन कबीर की शिष्या हो गई और उनके साथ काशी चली गई। मुसलमानी किंवदंतियो में लोई कबीर की पत्नी मानी गई है, पर हिंदुओं में प्रचलित किंवदतियों के आधार पर अधिक से अधिक यह कबीर की शिष्या मात्र सिद्ध होती है। बहुत से वृत्तांतो मे तो इसका नामोल्लेख भी नहीं किया गया है। सिखों में लोई और कबीर के संबध की कई कथाएँ प्रचलित हैं। मि० मेकालिफ द्वारा सगृहीत सिखो की किंवदतियो में कहा जाता है कि काशी आकर लोई ने भी जुलाहे का काम सीखा और घर में नीरू और नीमा की सहायता करने लगी। कबीर को साधु और अभ्यागतों के सत्कार का व्यसन था। जो आ जाता

था सब काम छोड़ उसी की सेवा मे तत्पर हो जाते थे और सब के लिये भोजन आदि लोई को ही बनाना पड़ता था। वह प्राय: कार्यभार से अधीर भी हो जाया करती थी, यहां तक कि एक बार उसने एक अतिथि साधु के लिये भोजन बनाने से इनकार भी कर दिया था और इस पर कबीर ने उसे अच्छी डाँट भी बताई थी। अंत में लोई ने इस अवज्ञा के लिये माफी माँगी और भविष्य में कभी ऐसी धृष्टता न करने की प्रतिज्ञा की।

कबीर की संतति

कहा जाता है कबीर के 'कमाल' नामक एक पुत्र और 'कमाली' नामक पुत्री थी। कुछ लोग इन्हें कबीर की औरस सतान मानते हैं और कुछ लोगों के अनुसार यह केवल पोष्य पुत्र और कन्या थे। अधिकतर प्रमाण इनके पोष्य संतान होने के पक्ष में ही मिलते हैं। इनकी उत्पत्ति के संबंध में भी विचित्र कथाएं प्रचलित हैं। एक बार जब कबीर गगा तट पर शेख़ तकी के साथ टहल रहे थे, किसी बच्चे की लाश पानी में बहती हुई दिखाई पड़ी। शेख़ तकी ने कबीर को उसे जिंदा कर देने को ललकारा। कबीर ने उसे जिला दिया और घर ले जाकर उसे अपना पोष्य पुत्र बनाया। कबीर के प्रताप से जब वह बच्चा जी उठा था तो तकी साहब ने कबीर की आध्यात्मिक शक्ति की तारीफ करते हुए कहा था कि आपको 'कमाल' हासिल है। इसी बात पर उस लड़के का नाम 'कमाल' रख दिया गया था। कमाली की उत्पत्ति के सबंध में भी कुछ इसी ढंग की एक कथा प्रचलित है। कहते हैं कि यह एक पड़ोसी की कन्या थी जिसे मर जाने के बाद कबीर ने जिंदा किया था। कुछ किवदंतियों के अनुसार यह भी प्रसिद्ध है कि यह और कोई नहीं शेख़ तकी की ही मृत कन्या थी जिसे आठ दिन क़ब्र मे रहने के बाद कबीर ने जिंदा किया था।

कमाल और कमाली के सबंध में कोई और परिचय नहीं मिलता। कमाल के बारे में कहा जाता है कि वह कबीर के सिद्धांतो का विरोधी था और उनके खडन में कविताएँ लिखा करता था। एक किंवदती में यह भी कहा गया है कि वह कबीर का पुत्र नहीं बल्कि उनके प्रधान शिष्यों में से एक था जो कि आगे दादू का गुरु हुआ जिन्होने 'दादूपंथी' नाम से एक नया पथ चलाया। कुछ दतकथाओं मे यह भी कहा जाता है कि कमाल का शेख़ तकी से विशेष सबंध था और उन्होंने ही झूँसी से दस मील दूर जलालपुर नामक शहर में अपनी गद्दी स्थापित करने का आदेश किया था। जो हो सभी किंवदंतियों में इस बात का कुछ परिचय मिलता है कि कबीर और कमाल मे मतभेद अवश्य था। इसी विषय को लेकर निम्नलिखित दोहा बहुत प्रचलित है—

बूडा बंस कबीर का, उपजा पूत कमाल।
हरि का सुमिरन छाड़ि के, घर ले आया माल॥

हिंदू घराने में अब भी बहुधा लोग अपने लड़कों की भर्त्सना करते समय यह दोहा प्राय: पढ़ा करते हैं।

कमाली के संबंध में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण कहानी प्रसिद्ध है। एक बार वह किसी कुएँ पर पानी भर रही थी कि एक प्यासा ब्राह्मण उधर से आ निकला और उसने इस से पानी माँगा और इसने पानी पिला भी दिया। पर पीने पर जब उसे मालूम हुआ कि उसने तुर्किन के हाथ का पानी पिया तो वह बिल्कुल घबड़ा गया और कहने लगा कि तूने मुझे जातिच्युत कर दिया। वह मर्माहत होकर कबीर के पास पहुँचा और उनसे अपने जातिभ्रष्ट होने की करुण कहानी कहते हुए कोई उपाय सुझाने को कहा। इस पर कबीर ने यह कहा—

"पाँड़े बूझि पियहु तुम पानी।
जिहि मटिया के घर मह बैठे, ता महं सिष्टि समानी।
छपन कोटि-जादव जहं भींजे, मुनिजन सहस-अठासी।
पैग पैग पैगंबर गाड़े, सो सभ सरि भौ माटी।
तेहि मटिया के भाड़े पाड़े, बूझि पियहु तुम पानी।
मच्छ कच्छ घरियार वियाने, रुधिर नीर जल भरिया।
नदिया नीर नग्क बहि आवे, पसु मानुप सभ सरिया।
हाड़ झरी झरि गूद गरीगरि, दूध कहा ते आया।
सो लै पांड़े जेवन बैठे, मटियहिं छूति लगाया।
वेद कितेब छाड़ि देहु पाड़े, ई सभ मत के भरमा।
कहहिं कबीर सुनहु हो पाड़े, ई सभ तुमरे करमा।"[1]

इस पद्य के विचारों पर ध्यान देने पर आश्चर्य होता है। कबीर ने इसमें छुवाछूत के प्रश्न को कितनी सरल और साथ हो अकाट्य युक्ति से हल कर दिया है। वेद और कुरान दोनो को एक साथ ही इसमे केवल मन का भ्रम मात्र बतलाया गया है। एक पन्द्रहवीं शताब्दी के कवि के लिये इतने दूर की सूझ, अपने समय से इतना आगे सोचना अवश्य एक बहुत बड़ी बात है। जो हां, कहा जाता है कबोर की इस युक्ति को सुनकर उस ब्राह्मण के, जो कमाली के हाथ का पानी पीने से अपने धर्मभ्रष्ट और जातिभ्रष्ट समझकर शोकसागर मे निमग्न हो गया था, सारे संदेह मिट गए और उसने कबीर के पैरो पर गिर पड़ा और अपना शिष्य स्वीकार करने की भिक्षा मांगने लगा।

कबीर का अधिकांश समय साधुओ के सत्संग, उनकी सेवा तथा ज्ञान की खोज मे कभी कभी विभिन्न प्रदेशों मे घूमने में ही व्यतीत होता

कबीर का गृह जीवन था। साधुओं के अतिरिक्त यह यथाशक्ति मनुष्य मात्र की सेवा मे तत्पर रहा करते थे। इन कामो के अतिरिक्त ये अपने घर के काम—कपडा बुनने और कातने के लिये भी समय निकाल लेते थे, पर हरि भजन और सत सेवा मे ये इतने निमग्न रहा करते थे कि इनके घर के लोगों को

---

[1] बीजक, शब्द ४७

अक्सर यह शिकायत रहा करती थी कि यह अपने काम में मन नहीं लगाते। इनकी माता नीमा प्रायः इनके अल्हड़पने पर इन्हें कोसा करती थी। इनकी स्त्री या शिष्या लोई भी कभी कभी इन के अत्यधिक साधुप्रेम से घबरा जाती थी जैसा कि पहले कहा जा चुका है। पर यह सब होते हुए भी ये अपना जुलाहे का काम सदा कुछ न कुछ कर ही लेते थे। कभी कभी इस विषय पर साधुओं से इनका वादाविवाद भी हो जाता था। एक बार एक साधु ने कहा तुम यह नीच कर्म छोड़ क्यों नहीं देते ? इस का उन्होंने जो मुहतोड़ जवाब दिया था वह ध्यान देने योग्य है—

जोलहा बीनहु हो हरिनामा, जाके सुर नर मुनि धरें ध्याना ॥
ताना तनै को अहुँठा लीन्हौ, चरखी चारिहुँ बेदा ॥
सर खूँटी एक राम नराएन, पूरन प्रगटे कामा ॥
भवसागर एक कठवत कीन्हौं, तामहँ मॉड़ी साना ॥
मॉड़ी के तन माड़ि रहा है, माड़ी बिरले नाना ॥
चॉद सूरज दुइ गोड़ा कीन्हौ, माझ-दीप कियो माझा ॥
त्रिभुवन नाथ जो मॉजन लागे, स्याम मुररिया दीन्हा ॥
पाई करि जब भरना लीन्हौ, वै बॉधे को रामा ॥
वै भरा तिहुँ लोकहिं बाधै, कोइ न रहत उबाना ॥
तीनि लोक एक करिगह कीन्हौ, दिगभग कीन्हों ताना ॥
आदि पुरुष बैठावन बैठे, कबिरा जोति समाना ॥[1]

इस बात के बहुत से प्रमाण मिलते हैं कि कबीर नीरू और नीमा के साथ रहते और जुलाहे का काम किया करते थे पर वे अपना अधिकांश समय साधु संतों के सत्संग में ही बिताते थे। इनके साधु मित्रो मे से बहुतों ने इनसे यह पेशा छोड़ने का आग्रह किया पर उन्होने हमेशा इस बात पर जोर दिया कि अपना सांसारिक सब काम छोड़ कर केवल राम नाम रटना ही मनुष्य का एक मात्र कर्त्तव्य नहीं है। सच्चाई और ईमानदारी से अपना लौकिक कर्त्तव्य पालन करते हुए जीवन बिताना ही ईश्वर और सत्य को प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय है। ढोंगी और पाखंडी, या बने हुए साधुओं की यह बड़ी तीव्र आलोचना किया करते थे और सदा उन्हे अपने मुख्य कर्त्तव्य की याद दिलाया करते थे। पर उधर उनके घर के लोगों को, खास कर इनकी माता नीमा को हमेशा यह शिकायत रहा करती थी कि यह अपने घर के काम में मन नहीं लगाते और अपना सब समय साधुओं की सेवा में ही लगा देते थे। इनकी स्त्री या शिष्या कोई भी प्रायः इनके अत्यधिक साधु सेवा से घबरा उठती थी। इनकी माता तो इतनी घबरा उठती थी

---

[1] बीजक, शब्द ६४

कि वह अक्सर यह कह कर रोया करती थी कि इस कठीवारी लड़के ने हमारा सब कारोबार ही चौपट कर दिया, यह मर क्यो नहीं गया, इत्यादि। पर जो हो इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि कबीर कपड़े बुनने और उन्हे बाजार मे वेचने का काम करते थे। एक दफे की बात है कि कबीर अपना बनाया हुआ कोई कपड़ा बाजार मे बेचने के लिये बैठे हुए थे। ये उसका दाम पाँच टका बता रहे थे पर कोई तीन टके से ज्यादे देने पर तैयार नही होता था। आखीरकार एक दलाल इनकी मदद करने को पहुँचा और उसने उस कपड़े का दाम जब बारह टके लगाया तो सात टके पर उसे खरीदने वाले गाहक मिल गए और आखीरकार उस दलाल ने सात टके पर वह कपड़ा बेच भी दिया जिस मे से दो तो उसने दलाली के तौर पर खुद रख लिए और पाँच टके कबीर को दे दिए। जो हो इन दो रगी कथाओ से सारांश यही निकलता है कि वह साधु संतो के प्रेमी और सेवक तो स्वभाव से ही थे और हिंदुओं मे प्रचलित आचार विचार को भी अधिकतर अपनाते थे, पर साथ ही इस के जुलाहे का काम भी कर्त्तव्य समझ कर किया करते थे जो कि उनकी नैसर्गिक प्रतिभा के योग्य नहीं था। शायद वह जनता के सम्मुख यह आदर्श उपस्थित करना चाहते हों कि हर हालत में मनुष्य को अपने पुश्तैनी पेशे से सहानुभूति रखना और यथाशक्ति उसे कायम रखना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए।

कबीर का देशाटन

किंवदंतियो के अनुसार कबीर ने देशाटन भी बहुत किया था। संत-समागम और हानि लाभ के लिये ये बलख और बुखारा आदि दूरस्थित विदेशों मे भी घूमे थे। इस के साथ ही इस बात के भी यथेष्ट प्रमाण मिलते हैं कि इनके जीवन का अधिक भाग बनारस मे ही बीता। बनारस के बाहर मगहर और प्रयाग के पास झूँसी नामक स्थान में ये प्रायः जाया करते थे। झूँसी और मगहर मे इनके शिष्यो की गद्दियां अब तक चल रही है। इनकी यात्रा संबधी अधिकतर किंवदंतियों मे बहुत सी ऐसी क्रियाएँ वर्णित हैं जिनमे इनके कोई न कोई अमानुषिक कार्य करने की बात कही गई है। स्पष्टतः ऐसा इनके शिष्यों द्वारा इनका महत्त्व बढ़ाने के विचार से ही किया गया है। इस प्रकार की घटनाओं मे ऐतिहासिक तत्त्व नही के बराबर है। कहा जाता है कि एक बार यह झूँसी के प्रसिद्ध फक़ीर शेख तकी के यहाँ गए थे और वहाँ किसी द्वेष भाव से शेखतकी ने उन्हें ऐसा खाना खिलाया जिससे इनको दस्त आने लगे, यहां तक कि छै महीने तक कबीर को दस्त आए। पुरानी झूँसी के नालो में से एक अभी तक कबीर का नाला कहलाता है। कुछ मुसलमान अनुयायी शेख तकी को ही कबीर का गुरु मानते हैं, पर यह धारणा अमूलक है। अधिकतर किंवदंतियो के आधार पर यही विश्वसनीय जान पड़ता है कि शेख तकी कबीर के पीर नही बल्कि ईर्ष्यावश उनके द्वेषी थे। कबीर के अनुयायियों और शिष्यों की सख्या इतनी बढ़ी कि तकी को जलन पैदा हो गई

और वे सदा ऐसे अवसर की ताक में रहने लगे कि कबीर को नीचा दिखाया जा सके, पर साधारण मनुष्यो से लेकर तत्कालीन दिल्ली सम्राट् सिकंदर लोदी के दरबार तक जब जब इन दोनो फकीरों का मुकाबला हुआ, तकी को ही नीचा देखना पड़ा। धार्मिक विषयो पर कबीर से तकी तथा बहुत से अन्य पीरो के साथ शास्त्रार्थ तथा वादविवाद भी प्रायः हो जाया करते थे। पर इस प्रकार के विचार के समय कबीर ग्रथो और शास्त्रों की दुहाई न देकर विवेक, बुद्धि और कौशल से ही काम लिया करते थे और ऐसी युक्ति से प्रतिपक्षी को निरुत्तर कर देते थे कि उसे अपना सा मुंह लिए लौटते ही बनता था, और इसका प्रभाव दर्शको और श्रोताओ पर भी बहुत गहरा पड़ता था। यहाँ उदाहरणार्थ एक किंवदती उद्धृत करना असगत न होगा। इनका बड़ा नाम सुन कर जहान् गश्त नामक एक प्रसिद्ध फकीर इनके आध्यात्मिक ज्ञान की परीक्षा करने के इरादे से मिलने आ रहे थे। कबीर ने उनके आने की खबर सुन उनके पहुँचने से कुछ पहले ही एक सुअर का बच्चा अपने दरवाजे पर बँधवा दिया था। जब उन्होने दरवाजे पर पहुँच कर वहाँ सुअर बँधा देखा तो अत्यत घृणा और क्रोध के वशीभूत होकर वह कबीर से बिना मिले ही लौटने लगे। यह देख कर कबीर ने उन्हे बुलवाया और पास आने पर कहा—' मैंने नापाक को अपने दरवाजे पर बाँधा है पर तुमने नापाक को अपने हृदय से बाँधा है। क्रोध, अहकार, लोभ आदि नापाक हैं। और यह सब तुम्हारे हृदय के अदर हैं। जिसे तुम नापाक समझते हो नापाक नहीं है, पर क्रोध नापाक है।" इसका उस फकीर पर इतना असर हुआ कि वह अपना सारा ज्ञान भूल गया और उसकी आँख खुली और वहीं वह कबीर का शिष्य हो गया।

कबीर और नानक

कहा जाता है कि शिख संप्रदाय के निर्माता गुरु नानक का कबीर के साथ कुछ दिन तक सत्संग हुआ था। कुछ लोग इन्हे कबीर के प्रधान शिष्यों मे से एक मानते हैं। इनके और कबीर के प्रथम साक्षात्कार के संबंध मे भी एक ऐसी कथा प्रचलित है जिसका उद्देश्य शायद कबीर की अलौकिकता पर जोर देना ही रहा होगा। कहा जाता है नानक जब कबीर के पास पहुँचे तो उन्हें दूध पीने की इच्छा हुई। उस समय कोई दुधार गाय न थी केवल एक पाँच बरस की बछिया बँधी थी। कबीर ने उसी को दुह कर नानक को दूध पिला कर और सभी उपस्थित संतों को चकित कर दिया।

इस प्रकार के आमानुषिक और अलौकिक कृत्यों से ज्यों ज्यों कबीर की ख्याति बढ़ने लगी त्यो त्यों दूर दूर से बहुत लोग इनके दर्शन करने आने लगे और इसका फल यह हुआ कि इनके हरि भजन में बहुत विघ्न पड़ने लगा। अब कबीर को किसी ऐसे उपाय की आवश्यकता पड़ी जिससे लोगो की श्रद्धा उन पर कम हो जाय। इस लिये वे अब अक्सर शाम को किसी वेश्या के गले मे हाथ डाले मतवालों की तरह बनारस को सड़को पर झूमते हुये नजर आने लगे। इसका फल

वही हुआ जो कबीर चाहते थे। लोगों मे इनकी बदनामी फैल गई और फलतः दर्शनार्थ बहुत से लोगो का नित्य का जमघट कम हो गया।

धर्मदास

मध्य प्रांत में बांधोगढ़ के रहने वाले धर्मदास नाम के एक वैश्य (बनियाँ) कबीर के सर्वप्रधान शिष्य हुए, और इनके मरने के बाद यही इनकी गद्दी के उत्तराधिकारी भी हुए थे। इनसे भी कबीर की पहली मुलाक़ात देश देशांतरो मे घूमते समय ही हुई थी। कहा जाता है पहले वह मथुरा मे कबीर से मिले थे। उस समय धर्मदास जी मूर्तिपूजा के बड़े क़ायल थे। न जाने कैसे कबीर का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट हुआ और मूर्तिपूजा मे इनकी सच्ची तन्मयता देख कबीर ने सोचा कि इतना धुन का पक्का आदमी अगर धर्म और भक्ति के वास्तविक मर्म को समझ जाय तो इससे लोक का बहुत कुछ कल्याण हो सकता है। यह सोच कर उन्होने धर्मदास के सामने भाँति भाँति की युक्तियो और दलीलो से मूर्तिपूजा का खंडन किया और यद्यपि घंटो बहस करने पर भी धर्मदास को संतोप न हुआ पर कबीर के व्यक्तित्व का इन पर अवश्य बड़ा प्रभाव पड़ा होगा क्योकि आप किंवदंतियों के अनुसार कबीर के सिद्धांतो को सुनने समझने की चेष्टा करने के लिये बनारस गए। वहाँ फिर मूर्ति-पूजा के संबंध मे ही वाद विवाद छिड़ा और अंत मे जिस मूर्ति को पूजने के लिये धर्मदास सदा अपने पास रखते थे उसे कबीर ने उठा कर नदी मे फेंक दिया।[1] पर इससे भी धर्मदास विचलित न हो कर कबीर के सिद्धांत को समझने की चेष्टा करते ही रहे। अंत मे कहा जाता है कबीर स्वय बांधवगढ़ इनके मकान पर पहुँचे और कुछ बात चीत के बाद उनसे कहा कि तुम उसी पत्थर की मूर्त्ति को पूजते हो जिसके तुम्हारे तौलने के बाट हैं। इसी एक बात का धर्मदास के हृदय पर इतना प्रभाव पडा कि उनका सारा विचार बदल गया और वह कबीर के शिष्य हो गए।[2] कबीर की मृत्यु के बाद धर्मदास ने छत्तीसगढ़ मे कबीर पथ की शाखा चलाई और काशी की 'सुरत गोपाल' नाम की इस पंथ की प्रधान शाखा के उत्तराधिकारी भी हुए।

---

[1] एक किंवदंती के अनुसार यह भी प्रसिद्ध है कि कबीर ने इनके सामने कुछ अलौकिक चमत्कार दिखलाए थे और इन्हीं कृत्यों का इन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि ये कबीर के शिष्य हो गए।

[2] एक किंवदंती के अनुसार यह भी प्रसिद्ध है कि एक बार इनकी और धर्मदास की मुलाक़ात वृंदावन में हुई थी और वहीं पर इन्होंने इनके इष्टदेव की मूर्ति यमुना में डाल दी थी।

राजा वीरसिंह

कबीर के शिष्यों के संबंध में प्रसिद्ध है कि इनके शिष्य अधिकतर निम्न श्रेणी के लोग ही होते थे। यह कथन बहुत कुछ सत्य भी है। इसका कारण यही है कि ब्राह्मण आदि उच्च श्रेणी के लोग तो इन्हें पाखंडी और अपने धर्म का द्रोही मानते थे। इन लोगों की सदा यही चेष्टा रहती थी कि कबीर को किसी तरह नीचा दिखाया जाय और जहाँ तक हो सके उनकी बदनामी फैलाई जाय, और इसके लिये वे कोई बात उठा नहीं रखते थे। पर कबीर का कुछ ऐसा सिक्का जम गया था कि इनकी सब चालें उल्टी पड़ती थीं और कबीर की कीर्ति दिन पर दिन फैलती ही जाती थी। अधिकतर निम्न श्रेणी के लोगों का कबीर पंथियों में शामिल होने का एक कारण यह भी था कि उच्चवर्ण के लोगों द्वारा यह बहुत दलित और अपमानित होते थे। ब्राह्मण पुरोहितों और धर्म-याजकों के गुरुडम की छाया तले इन्हें अपने किसी भी प्रकार के उत्थान की आशा नहीं थी। कबीर के समदर्शी पंथ से इन्हें बहुत कुछ संताप हुआ और ये बड़ी संख्या में इनके झंडे के नीचे आने लगे। यही कारण था जिससे ब्राह्मण लोग कबीर से इतने असंतुष्ट हो रहे थे। पर यह तो हुई निम्न श्रेणी के लोगों की बात। कबीर के व्यक्तित्व और उनके सिद्धान्तों का बहुत से विद्वान् पंडितों, राजा महाराजों तथा नवाब रईसों आदि पर भी बड़ा प्रभाव था। स्वतंत्र विचार के सभी लोगों को इनके सिद्धांत और विचार युक्तिसंगत प्रतीत होते थे। ऐसे ही लोगों में जौनपुर के तत्कालीन राजा वीरसिंह भी थे। इनके और कबीर के साक्षात्कार के संबंध में भी एक कथा प्रचलित है। इन्होंने जौनपुर में एक बड़ा रम्य प्रासाद बनवाया था और एक फ़क़ीर को छोड़ जितने लोग इसे देखने आए सभों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की। उस फ़क़ीर से जब पूछा गया कि इसमें क्या कमी है तो उसने कहा कि इसमें दो त्रुटियाँ हैं, एक तो यह कि प्रासाद चिरस्थायी नहीं है, और दूसरे यह कि इसका निर्माता इसके भी पहले संसार से विदा हो जायगा। यह सुनकर राजा साहब पहले तो असंतुष्ट हुए पर जब उन्होंने जाना कि वह फ़कीर और कोई नहीं स्वयं महात्मा कबीर हैं, तो वह उनके पैरों पर गिर पड़े और उनको अपना गुरु मान लिया।

एक बार गुजरात के एक सोलंकी राजा ने अपनी रानी के साथ इनके पास जाकर पुत्र का आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। कबीर ने उस राजा को पुत्र का आशीर्वाद दिया भी और कहा कि उसका वंश बयालीस पीढ़ी तक राज्य करेगा। कहा जाता है कि कबीर ने स्वयं बांधवगढ़ में इस राजवंश को स्थापित किया और रीवाँ के वर्तमान महाराज उसी वंश के एक वंशधर हैं। यही बाँधवगढ़ किसी समय उस प्रांत की राजधानी था जो कि अब रीवाँ राज्य कहलाता है और इसे सम्राट् अकबर ने ध्वंस किया था।

यह प्रसिद्ध है कि कबीर की मृत्यु मगहर में हुई थी। यहाँ का शासक नवाब

बिजली खाँ

बिजली खाँ भी कबीर का शिष्य था। जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे। कबीर के अंतिम संस्कार के संबंध में इनमें और राजा वीरसिंह में मुठभेड़ होते होते बच गई थी।

सिकंदर लोदी

कबीर संबंधी सभी किंवदंतियों में तत्कालीन भारतसम्राट् सिकंदर लोदी द्वारा उन पर किए गए अत्याचारों की विस्तृत कथा मिलती है। इन में से एक के अनुसार कबीर के द्रोही हिंदू और मुसलमान दोनो ही एक बार दिन दोपहर को जलती हुई मशालें लेकर बादशाह के दरबार में फिरियाद लेकर पहुँचे। उनकी शिकायत यह थी कि कबीर मुसलमान होकर भी जनेऊ पहन और तिलक लगाकर 'राम' 'राम' कहता फिरता है और उसकी माया से सारे देश में अंधकार छा गया है, इत्यादि। शेख तकी ने जो कि बादशाह के पीर थे, इन उपालंभो का पूरा समर्थन किया। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, कबीर की दिन प्रति दिन बढ़ती हुई कीर्ति से यह बहुत जलते थे और हृदय से उनका अनिष्ट साधन करना चाहते थे। जो हो, यह सब सुनकर बादशाह ने कबीर को बुलवाया, पर वह दिन भर अपना काम कर शाम को वहाँ पहुँचे और पहुँच कर बादशाह को सलाम तक न किया। इस बेअदबी का कारण पूछे जाने पर कहा कि मैंने ईश्वर को छोड़ और के सामने सिर झुकानो नहीं सीखा है। फिर पूछा गया कि शाही हुक्म के तामील करने में इतनी देर क्यों हुई। इस पर उन्होंने कहा कि मैं एक तमाशा देखने में लगा हुआ था। जब पूछा गया कि वह तमाशा क्या था तो उन्होंने कहा कि मैंने एक ऐसा सूराख देखा जो कि है तो सुई से भी छोटा पर उसी में से मैंने हजारों ऊँट और हाथी निकलते हुए देखे। बादशाह ने कहा कि तुम इसका मतलब समझाओ नहीं तो मैं तुम्हें झूठा समझूँगा। कबीर ने शायद बादशाह को चकित करने के लिये एक उल्टबांसी कहा जिसका भावानुवाद नीचे दिया जाता है—

'कबीर कभी झूठ नहीं बोलता।

कोई नहीं जानता एक क्षण के चतुर्थांश में क्या होगा। एक बूंद पानी का समुद्र में समा जाना सब समझते हैं पर समुद्र का बूंद में समाना कोई विरला ही समझ सकता है। जिसके चर्मचक्षु तथा मानसिक चक्षु सभी नष्ट हो चुके हैं उसमें किसी को क्या मिल सकता है।'

इसे सुन बादशाह और भी भ्रम में पड़ गया और कबीर को अपना आशय स्पष्ट कर देने को कहा और इसके उत्तर में कबीर ने जो कहा उसका सारांश यह है—

'तुम देखते हो पृथ्वी और आकाश, चंद्र और सूर्य एक दूसरे से कितने दूर दूर हैं। इनके बीच के महान् क्षेत्र में कितने ऊँट और हाथी तथा कितने और अनगिनित जीव विचरते हैं। पर यह सभी आँख के तारे में दिखलाई पड़ते हैं। क्या आँख का तारा सूई के सूराख से बड़ा है?

यह उत्तर सुनकर बादशाह ने संतुष्ट होकर कबीर को साफ छोड़ दिया। पर इससे कबीर के द्रोहियो को बहुत असंतोष हुआ और वे हर तरह से कबीर के बारे में बादशाह के कान भरने लगे। यहाँ तक कि कबीर को देश की शांति के लिये खतरा बतलाया गया। कुछ लोगों ने यह भी कहा कि यह शराबी वेश्यागामी और जादूगर है, और नीचो की सोहबत में रहता है। इस पर बादशाह ने कबीर को दरबार में बुलाया और वहाँ नियमानुसार उनपर उक्त दोष लगाकर उनसे जवाब तलब किया। इसके जवाब मे कबीर ने कहा कि यदि मैं बुरा आचरण करता हूँ तो इससे मै ही पतित होता हूँ दूसरों को इससे क्या। पर इस उत्तर से किसी को सतोष नहीं हुआ और क़ाजियो ने कहा कि कबीर को सच्चे मुसलमान की तरह जीवन बिताने पर बाध्य करना चाहिए। पर इस पर कबीर ने क़ाजी और पुरोहित दोनों को ही ख़ूब खरी खोटी सुनाई। उन्होंने इन दोनो श्रेणी के लोगों को ही घोर पाखडी, वास्तविक धर्म के द्रोही और नरकगामी तक कहा। इस पर सभी लोग इनसे बिगड़ खड़े हुए और बादशाह को इन्हे मृत्युदड देने पर विवश किया। अंत मे एक नाव मे पत्थर भर उसके साथ कबीर को लोहे की जजीरो से जकड़ कर उन्हे दरिया मे ठेल दिया। थोड़ी ही देर में उस नाव के साथ कबीर डूब गए जिससे उनके शत्रुओ को अपार हर्ष हुआ। पर क्षण भर बाद ही वह एक मृगछाले पर बैठे हुए नदी के स्रोत के विरुद्ध बहते हुए दिखाई पड़े। इस पर उनके शत्रुओं के आग्रह से बादशाह ने उन्हें पकड़कर आग मे झोकवा दिया। सारी आग जल कर ठडी भी हो गई पर कबीर का बाल तक बॉका नहीं हुआ। इस पर लोग बड़े चकराए और चिल्ला चिल्ला कर नास्तिक, जादूगर आदि शब्दो से उनकी भर्त्सना करने लगे। अंत मे बादशाह को यह सलाह दी गई कि कबीर हाथी के पैरों तले कुचलवा दिए जायं, और बादशाह ने इसका आयोजन भी किया। हाथ पॉव बाध कर कबीर जमीन मे डाल दिए गए और एक मतवाला हाथी उनके ऊपर छोड़ दिया गया, पर कबीर के पास आकर वह हाथी रुक जाता था और बहुत डरकर इधर उधर भागने लगता था। पूछने पर महावत ने कहा कि कबीर के सामने जाते ही एक भयानक सिंह हाथी का रास्ता रोक कर खड़ा हो जाता है जिसके डर से हाथी भाग खड़ा होता है। इस पर बादशाह ने झल्ला कर खुद उस हाथी पर चढ़ उसे आगे बढ़ाया, मगर कबीर के पास जाते ही उन्होन भी उस भयानक सिह को हाथी की ओर लपकते देखा और हाथी फिर चिग्घाड़ कर भाग खड़ा हुआ। अब बादशाह से न रहा गया। वह हाथी से कूद कर कबीर के पैरों पर गिर पड़े और क्षमा प्रार्थना करते हुए कहा जो आप चाहे वह दड मुझे दें। इसके उत्तर मे कबीर का कहा हुआ निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है—

जो तोकूं काटा बुए, ताहि बोय तू फूल,
तोको फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरसूल।

कुछ किंवदंतियों में कबीर और सिकंदर लोदी संबंधी और भी विस्तृत वृत्तांत मिलता है। एक में इसी सिलसिले में स्वामी रामानंद भी घसीटे गए हैं और कबीर के द्रोहियों ने इन पर भी वही दोष लगाए जो कबीर पर लगाए गए थे। कहा जाता है कि बादशाह ने इनको मरवा डाला पर बाद में कबीर ने इन्हें अपनी अलौकिक शक्ति से जीवित किया था। इसके सिवा कबीर ने और भी कई अलौकिक चमत्कार बादशाह के सामने दिखाए जिससे अंत में उसने इन्हें सचमुच एक महापुरुष समझ कर इनसे माफी मांगी और इनके द्रोहियों को हताश होना पड़ा।

मृत्यु संबंधी किंवदंतियां

किंवदंतियों के प्रमाण के अनुसार कबीर ११९ वर्ष, ५ महीने, और २७ दिन जिए थे और उनका स्वर्गवास बस्ती जिले के अंतर्गत मगहर नामक स्थान में सं० १६७५ में हुआ था। कहा जाता है कबीर को जब अपना महाप्रस्थान काल समीप जान पड़ा तो उन्होंने मगहर जाकर शरीर छोड़ने की इच्छा प्रगट की और वहां के लिये रवाना भी हो गए। इनके भक्तों और प्रेमियों को इससे यह सोच कर और भी बड़ा क्षोभ होने लगा कि लोक में प्रसिद्ध है कि मगहर में मरने वाला अगले जन्म में गधा होता है और काशी में मरने वाले की मुक्ति होती है। और सिर्फ मरने ही के लिये काशी ऐसे पवित्र स्थान को छोड़ कबीर का मगहर जाना देख सारा नगर शोक सागर में निमग्न हुआ। परंतु सब को सांत्वना देते हुए कबीर का कहा हुआ यह पद्य प्रसिद्ध है—

लोगा तुमहीं मति के भोरा।
जौं पानी पानी महं मिलि गौ, त्यौं धुरि मिलै कबीरा।
जो मैं थीको सांचा व्यास, तोर मरन हो मगहर पास।
मगहर मरै सो गदहा होय, भल परतीति राम सो खोय।
मगहर मरे मरन नहिं पावे, अनते मरे तो राम लजावे।
का कासी का मगहर ऊसर, हृदय राम बस मोरा।
जो कासी तन तजइ कबीरा, रामहि कवन निहोरा।[1]

अंत में, कबीर, सब लोगों के समझाने बुझाने पर भी मगहर चले गए और उनके साथ साथ प्रायः दस सहस्र शिष्य और भक्त भी साथ गए। जौनपुर के राजा वीरसिंह यह हाल सुन कर अपने दल बल के साथ मगहर पहुँचे और वहाँ यह घोषित किया कि मैं कबीर के शव का अंतिम संस्कार काशी ले जाकर करूँगा। पर मगहर का नवाब बिजली खाँ पठान भी कबीर का शिष्य था। उसने कहा कि मैं यह कभी नहीं होने दूँगा और कबीर की लाश मुसलमानी क्रिया के

---

[1] बीजक, शब्द १०३

अनुसार यहीं दफनाई जायगी। कबीर मगहर पहुँच कर एक साधु की कुटिया में विश्राम कर रहे थे। उन्होंने कुछ कमल के फूल और दो चादरें मँगवाई। उस समय उन्होंने सुना कि उनके अंतिम सस्कार को लेकर वीरसिंह और बिजली खाँ की सेनाओं में रक्तपात होने वाला है। यह सुन कर उन्होंने दोनो को बुलाकर समझा बुझा कर शांत किया और इसके बाद दोनों चादरें तान कर लेट रहे और सब को बाहर से द्वार भेड़ कर बाहर चले जाने को कहा। सब किसी के बाहर चले जाने के थोड़ी देर बाद भीतर से एक शब्द हुआ और तब लोग द्वार खोल कर भीतर गए पर वहाँ कबीर के शरीर का कहीं पता नहीं था। केवल कमल के फूलों से भरी हुई वही दोनों चादरें थीं। सब को बड़ा आश्चर्य हुआ और अंत में फूलो से भरी हुई एक चादर राजा वीरसिंह काशी ले गए और वहीं हिंदू धर्मशास्त्र की विधि से इसका दाह कर्म हुआ और भस्मावशेष वहीं के कबीर चौरा नामक स्थान में सुरक्षित किया गया। इधर बिजली खाँ ने भी फूलो से भरी दूसरी चादर को मगहर मे दफनाया और वहाँ कबीर की एक समाधि भी बनवाई जो अब तक विद्यमान है।

कबीर संबंधी ऐतिहासिक तथ्य

कबीर के जीवन संबंधी ज्ञातव्य बातों का ऐतिहासिक तथ्यातथ्य निर्णय करने के लिये हमारे पास केवल दो साधन हैं—किंवदंती और कबीर की रचनाएँ। यह सत्य है कि प्रमाण के लिये किंवदंतियों या दंतकथाओं को ज्यों की त्यों मान लेना बड़ी भूल है। यहाँ तक कि विद्वान् समालोचक और जीवनी लेखक इन पर एक क्षण भी विचार करना व्यर्थ समझते हैं। पर सभी किंवदंतियाँ एक सी नहीं होतीं। जिन किंवदंतियो का एक ही रूप मे या कुछ साधारण भिन्नता के साथ कई स्थानो पर उल्लेख मिलता हो उनके मूल मे अवश्य ऐतिहासिक तथ्य रहता है और कोई भी समालोचक उनकी पूर्ण रूप से अवहेलना नहीं कर सकता। तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, तथा साहित्यिक परिस्थितियों को बराबर ध्यान मे रखते हुए और अनावश्यक विस्तार की काट छाँट करते हुए इन किंवदंतियों का मूलस्थित सत्य निर्द्धारित करना पड़ता है। कबीर के संबध मे जितनी किंवदंतियाँ प्रचलित हैं उतनी शायद हिंदी के किसी भी कवि के संबंध में नहीं। इनकी चर्चा पहले हो चुकी है, अब केवल यह देखना है कि इनमे ग्राह्य तथ्य कितना है। इसकी जाँच तत्कालीन इतिहास और कबीर की रचनाओं के प्रमाण के आधार पर हो सकती है। पर इतिहास से जो सहायता मिलती है वह नहीं के ही बराबर है।

इस संबंध मे हमे अधिक सहायता कबीर की रचनाओं से मिल सकती है। इनसे स्थान स्थान पर प्रायः इनके जीवन की कुछ मुख्य मुख्य घटनाओं पर कुछ प्रकाश पड़ता है। परन्तु इन पर भी पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि कबीर के नाम से प्रचलित काव्य मे उनके भक्तो या शिष्यों के रचे

हुए बहुत से पद जोड़ दिए गए हैं जो कि बाद मे उनके महत्व को बढ़ाने के लिये मिलाए गए हैं। यही बात हिंदी और संस्कृत के कई महाकवियो के संबध मे कहा जा सकती है, पर कबीर की रचना के साथ जितनी मिलावट हुई उतनी शायद और किसी के साथ नही। इसके भी कई कारण हैं। एक तो यह कि कबीर शायद पढ़े लिखे बिल्कुल नही थे। कुछ लोग तो उन्हे कोरा निरक्षर मानते हैं। जो हो, पर इतना निश्चय है कि कबीर यदि बिल्कुल निरक्षर नहीं तो अधिक पढ़े लिखे भी नहीं थे। इनका सारा ज्ञान सत्संग और अपनी निजी प्रतिभा, कल्पना और अनुभूति का प्रसार था। देशाटन और देशकाल के अध्ययन से भी इनका बहुत कुछ मानसिक विकास हुआ था। इस प्रकार प्राप्त अपने अनुभव और विचारो को ये प्रायः कविता के रूप मे जिज्ञासुओं को सुना दिया करते थे और वे उन्हे, प्रायः अपना नमक मर्च लगाकर लिपिबद्ध कर दिया करते थे। दूसरे यह कि ये एक मतप्रचारक भी थे। जितने मत या पंथ चलाने वाले आज तक हो गए है सभी की रचना के साथ समय समय पर अनुयायियो की इच्छानुसार मिलावट होती रही है। इनके किसी भी पद के बारे मे हम निर्भ्रांत रूप से नही कह सकते कि यह उन्ही का है। और फिर, इन बातों के सिवाय कबीर की रचना को किसी भी प्रकार के कालक्रम के अनुसार सिलसिलेवार करके जाँचना भी संभव नही है। यदि यह संभव होता तो कम से कम कबीर के मस्तिष्क का विकास और उनकी सत्य की खोज के अध्ययन मे बहुत कुछ सुविधा हो सकती थी। कबीर के पदों, शब्दों तथा उलटबासियो आदि के अर्थ बहुधा दुरूह तथा एक से अधिक अर्थ रखने वाले होते हैं। इससे और उलझन पड़ जाती है। ऐसी स्थिति मे बहुधा इनका वास्तविक मंतव्य जानना कठिन हो जाता है।

इनकी जन्म और मरण तिथि के संबंध मे तो पहले ही पर्याप्त विचार किया जा चुका है। हिंदू विधवा के गर्भ से इनकी उत्पत्ति के संबंध में जितनी किंवदंतियाँ हैं उनका एक मात्र उद्देश्य यही जान पड़ता है कि किसी प्रकार कबीर हिंदू भक्तो के लिये अधिक से अधिक ग्राह्य बनाए जा सकें! इस बात को तो सभी कबीरपंथी और समालोचक सत्य मानते हैं कि कबीर मुसलमान परिवार में पलित हुए थे, और उनका नाम भी मुसलमानी था। ऐसी अवस्था मे ब्राह्मणी से उनकी उत्पत्ति सो भी स्वाभाविक परिस्थिति मे नहीं, केवल गोसांई रामानंद के आशीर्वाद मात्र से और वह भी माता के गर्भ से नहीं बल्कि उसकी हथेली से बताने का प्रयास, देखते ही कल्पित जान पड़ता है। और इसी कल्पना को थोड़ा और आगे बढ़ाकर कुछ हिंदू भक्तो ने उनके नाम 'कबीर' को भी इसी प्रसिद्धि के अनुसार 'करबीर' ('कर' अर्थात् हाथ से पैदा होने वाला 'बीर') का अपभ्रंश कहना प्रारंभ किया। परंतु उनके इस प्रकार की कल्पनाओं के ढंग से ही इन किंवदंतियों की निस्सारता स्पष्ट है। कबीर ने स्वयं बार बार अपने को जुलाहा कहा

समय

उत्पत्ति

है। ऐसी अवस्था में कबीर को नीमा का औरस पुत्र मानना ही अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है। कबीर के हिंदू संतान होने का सब से बड़ा कारण बताया जाता है। उनका आरंभ से ही हिंदू धर्म के संस्कारों और भावों से व्याप्त रहना। शैशव काल मे ही कबीर प्रायः जनेऊ पहन कर राम नाम का उपदेश देते फिरते थे। ऐसा वह करते तो अवश्य रहे होगे, पर यह हिंदू कुल में उत्पन्न होने के कारण नहीं। यह बात सभी जानते हैं कि जुलाहे या इस वर्ग के अन्य उद्योग धधो की जीविका करने वाले अपने बच्चो की धार्मिक शिक्षा आदि का कोई प्रबंध नही करते। उन्हें आरभ से ही हर तरह से अपने खांदानी पेशे की ही शिक्षा मिलती है, वे ऐसे वातावरण मे ही रक्खे जाते हैं। पर कबीर एक असाधारण प्रतिभासंपन्न बालक तो था ही, साथ ही आरंभ से ही इसका रिझान धर्म सबधी विषयो की ओर था। फिर काशी ऐसी धर्मप्राणा नगरी मे इन्हे रहने का अवसर प्राप्त था। यहाँ आज भी तुमुल ध्वनि से धर्म के कम से कम वाह्य रूप का अपूर्व दिग्दर्शन होता रहता है। चारो ओर गली गली मे राम नाम के उपदेशक घूमते फिरते थे और इनमें सब से प्रधान स्वामी रामानंद जी थे। कबीर के भावुक हृदय पर इन सब बातो का प्रभाव पड़े बिना रह नही सकता था। यह प्रायः रामानंद के उपदेशों को सुनता और उनके भक्तो को उनको भूरि भूरि प्रशसा करते देखता रहा होगा। धीरे धीरे इन बातो ने कबीर के हृदय पर पूरा अधिकार जमा लिया और आगे चलकर इनके हिंदू अनुयायियों को यह कहने का अवसर दिया कि हो न हो हिंदू उत्पत्ति के कारण ही कबीर हिंदू भावों से ओतप्रोत थे। परंतु दोष इसमे हिंदू उत्पत्ति का नही बल्कि कबीर के सारग्राही हृदय और तत्कालोन काशिस्थ धर्मप्रचार के प्राधान्य का है।

गुरु — कबीर के रामानंद के शिष्य होने में किसी प्रकार का संदेह न होना चाहिए। एक तो इसके सबध की जनश्रुतियाँ बहुत प्रबल और बहुसख्यक हैं, दूसरे स्वय कबीर की रचनाओ मे एक से अधिक बार इसकी ओर स्पष्ट संकेत है।

परिवार — यह तो सहज ही मे अनुमान किया जा सकता है कि स्वामी रामानंद के एक मुसलमान लड़के को शिष्य रूप से ग्रहण करने पर खासी हलचल मच गई होगी। कबीर की रचनाओ मे ही अनेक स्थलो पर ऐसी उक्तियाँ प्रायः मिलती हैं जिन से यह स्पष्ट हो जाता है कि धार्मिक विषयों और सत सेवा की ओर अधिक तत्परता दिखाने के कारण कबीर के घर के लोग उनसे बहुधा असंतुष्ट रहते थे। आदि ग्रथ मे कई पद ऐसे[1] मिलते हैं जिनमें इनकी माता ने इन्हे अपने पेशे की ओर ध्यान न देने और साधु संतों की

---

[1] आदि ग्रंथ, गूजरी

गोष्ठी में समय नष्ट करने के कारण भला बुरा कहा है, और कबीर ने उनका उत्तर भी दिया है। इन पदों से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि कबीर के माता पिता और लोई नाम की स्त्री भी थी। कबीर ने एक पद में अपनी माता की मृत्यु का उल्लेख भी किया है। लोई को कुछ लोग, विशेषतः इनके हिन्दू भक्त, इनकी स्त्री नहीं केवल शिष्या मानते हैं, और इस मत को दृढ़ करने के लिये उन्हें कबीर के पुत्र कमाल और पुत्री कमाली के संबंध में कुछ अनोखी किंवदंतियाँ गढ़नी पड़ी हैं। मुसलमान सूफी फकीर गृहस्थ हुआ करते हैं, और इसलिये मुसलमान अनुयायियों को सस्त्रीक कबीर में कोई अनौचित्य नहीं देख पड़ता पर हिन्दुओं का आदर्श गुरु वही होता है जो बालब्रह्मचारी हो, और कबीर में यही बालब्रह्मचर्य दिखलाने के लिये ही लोई, कमाल, तथा कमाली के संबंध में पूर्वोक्त विचित्र किंवदंतियाँ प्रचलित की गई जान पड़ती हैं। इस मत की पुष्टि उन्हीं किंवदंतियों से ही हो जाती है। लोई के विषय में एक पद है जिसमें लिखा है कि उसने कबीर की साधु सेवा से तंग आकर एक बार कबीर के कहने पर भी एक अभ्यागत के लिये भोजन बनाने से इनकार कर दिया था। फिर अन्यत्र[1] यह भी वर्णन मिलते हैं कि लोई भी कबीर की अत्यधिक धर्मचर्चा और सत्संग की प्रायः तीव्र आलोचना किया करती थी। पर किंवदंतियों ही के अनुसार लोई ने कबीर का शिष्यत्व ग्रहण उनके असाधारण साधुपरायणता पर ही रीझ कर किया था। यदि सचमुच वह इस प्रकार की केवल शिष्या मात्र होती तो इस प्रकार उसके कबीर की साधु सेवा से खीझने और उन्हें इससे विरत कर अपने घर के काम में मन लगाने की चेष्टा करने का प्रयास उसके शिष्यत्व की सीमा के बाहर का काम था। यह काम स्त्री, माता, या ऐसे ही किसी अन्य आत्मीय का ही हो सकता है। एक पद[2] में तो कबीर के द्वितीय विवाह का संकेत मिलता है। यदि इसे केवल अन्योक्ति ही मान लें तो भी काम नहीं चलता। एक पद में[3] कबीर की माँ इस बात पर रुष्ट हो रही है कि ये घुटे सर वाले कबीर के साथी मेरी पतोहू 'धनियां' को 'रामजनियां' क्यों कहते हैं। इससे इतना क्रोध उसे इस लिये आता था कि 'रामजनियाँ' नाम उन देवदासियों का भी होता था जो कि मंदिरों में सेवा के लिये समर्पित कर दी जाती थीं। अब प्रश्न यह है कि यह 'धनियाँ' या रामजनियाँ। लोई के ही नामांतर थे या यह उनकी दूसरी स्त्री के नाम थे। जो हो इतना तो स्पष्ट है कि कबीर का विवाह अवश्य हुआ होगा और कमाल तथा कमाली उनकी

क्या कबीर विवाहित थे?

---

[1] आदि ग्रंथ, गौड़ ६

[2] वही, आसा ३५

[3] वही, आसा ३३

संतान थे। कबीर के पिता के संबंध की बहुत कम चर्चा इनके पदों में मिलती है। एक पद जो मिलता है उसमें उन्होंने पितृशोक व्यक्त किया है। कबीर द्वारा किए गए पिता या माता के वियोग वर्णन को लोग अधिकतर अन्योक्ति रूप मे लेते हैं। पर इस प्रकार की पारिवारिक दुर्घटना को लेकर ही अन्योक्ति कहने का क्या तात्पर्य? अन्योक्तियों का आधार सदा कोई न कोई लौकिक घटना हुआ करती है।

कबीर की पारिवारिक स्थिति उनकी आभ्यंतरिक प्रवृत्ति के लिये नितांत असुविधाजनक थी। अनेक पदों में उन्होंने इस प्रतिकूल कौटुंबिक वातावरण से बड़ा करुण असंतोष प्रकट किया है।

क्या कबीर अशिक्षित थे?

जहाँ तक पता चला है कबीर के शिक्षित होने के कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलते। उन्होंने अपने पदों में इस विषय को निर्भ्रांत रूप से स्पष्ट कर दिया है। बीजक में वह यों कहते हैं—

"मसि कागद छूयो नहीं, कलम नहीं गही हात।
चारिहु जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात॥[1]

आदि ग्रंथ में भी एक जगह[2] उन्होंने साफ़ कह दिया है कि मैं पोथी की विद्या नहीं जानता और न मैं मतभेद ही समझता हूँ। इसके अतिरिक्त कबीर की पारिवारिक स्थिति तथा जुलाहे के घर में उनके पालन-पोषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हे लिखने पढ़ने की प्रारंभिक शिक्षा नहीं मिल सकती थी। उन्होने जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त किया वह सत्संग और अपनी प्रतिभा से। अपनी भाषा के बारे में भी वह एक जगह साफ कह देते हैं कि मेरी बोली ठेठ पूर्वी है और धुर पूरब का रहने वाला ही उसे समझ सकता है -

'बोली हमरी पुरब की, हमै लखै नहिं कोय।
हमको तो सोई लखै, धुर पूरब का होय।'[1]

कबीर की उद्दंडता

कबीर की रचनाओं मे विचार स्वतंत्र की मात्रा बहुत है। यह बात दूसरी है कि उनके विचारो को अर्थशून्य अथवा चिमटा खँजड़ी के सुर में ज्ञान गुदड़ी गाने वाले बैरागड़ों की बहक कह कर टाल दिया जाय, पर यदि उनकी रचनाओं में कुछ भी विचार है और उनसे यदि कबीर की किसी प्रकार की मनोवृत्ति का पता चलता है, तो वह यही कि वह हिंदू मुसलमानों मे प्रचलित परपरागत अंध विश्वासों तथा अर्थशून्य रूढ़ियों के तीव्र विरोधी थे और अपने स्वतंत्र विचार से जिस निष्कर्ष पर वह पहुँचते थे उसका बड़ी निर्भीकता और प्रायः बड़ी उद्दंडता से

---

[1] बीजक, साखी, १८७
[2] आदि ग्रंथ, बिलावल, २
[1] बीजक, साखी, १६४

प्रतिपादन करते थे। इसी संबंध में वह हिंदू और मुसलमान दोनों ही के धर्म शास्त्रों की भी कटु आलोचना कर डालते थे। यही कारण था कि सनातनी रूढ़ियों के संरक्षक समझे जाने वाले ब्राह्मण और मुल्ला दोनों ही कबीर के कट्टर विरोधी हो गए। महाकवि तुलसीदास जी को भी कबीर की यह उद्दंडता खटकी थी। कबीर के निम्नलिखित पद से ही क्षुब्ध होकर शायद तुलसीदास जी ने वेद और पुराण की बेसमझे बूझे निंदा करने वाले अशिक्षित कबीर या कबीर पंथियों के प्रति कुछ तीव्र आक्षेप किए हैं—

रमैनी[1]—

पंडित भूले पढ़ि गुनि वेदा, आपु अपन पौ जानु न भेदा।
संझा तरपन औ खटकरमा, ई बहु रूप करहिं अस धरमा।
गाइत्री जुग चारि पढ़ाई, पुछहु जाय मुकुति किन पाई।
अवर के छिए लेत हौ सींचा, तुम ते कहहु कवन है नीचा।
ई गुन गरब करौ अधिकाई, अधिक गरब न होय भलाई।
जासु नाम है गरब-प्रहारी, सो कस गरबहि सकै सहारी।

साखी—

कुल-मरजादा खोय के, खोजिनि पद निरबान।
अंकुर बीज नसाय के, भए बिदेही थान॥

इसी प्रकार तीव्र आलोचना प्रायः इनकी रचनाओं में मिलती है और इन्हें देखते हुए इस में संदेह करने का कोई स्थान नहीं रह जाता कि उन्होंने अवश्य अपने को तत्कालीन अधिकांश सनातनी पंडित समाज मे नितांत अप्रिय बना लिया होगा। यही बात मौलवियों और इस्लाम के कट्टर अनुयायियों के बारे में भी सत्य है। वह इस्लाम की भी समय समय पर बुरी तरह से खिल्ली उड़ाते थे। एक उदाहरण देखिए, इसमे पंडित और मुल्ला दोनो की एक साथ खबर ली गई है—

संतो राह दुनो हम डीठा।

हिंदू तुरुक हटा नहिं मानैं, स्वाद सभन्हि को मीठा।
हिंदू बरत एकादसि साधैं, दूध सिंघारा सेती।
अन को त्यागैं मन को न हटकैं, पारन करैं सगोती।
तुरुक रोजा नीमाज गुजारैं, बिसमिल बाँग पुकारैं।
इनकी भिस्त कहाते होइ है, साँझै मुरगी मारैं।

[1] बीजक, रमैनी, ३९

हिंदु की दया मेहर तुरुकन की, दोनौं घटसों त्यागी।
वे हलाल वै झटके मारैं, आगि दुनौं घर लागी।
हिंदू तुरुक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
कहहिं कबीर सुनहु हो संतो, राम न कहेउ खुदाई।[1]

'नाथ' संप्रदाय वालों का उपहास

बात यहीं तक नहीं थी। कबीर ने अपने समय के प्रायः सभी संप्रदाय वालों में प्रचलित कुरीतियों और अंध विश्वासों का उपहास तथा कहीं कहीं निंदा भी की है। इन के समय में नाथ संप्रदाय वालों की संख्या काफी बढ़ चुकी थी। किंवदंतियों में तो गोरखनाथ और कबीर का साक्षात्कार होना भी प्रसिद्ध है परंतु वास्तव में यह अभी तक संभव सिद्ध नहीं हो सका है। अभी थोड़े दिनों तक तो गुरु गोरखनाथ के ऐतिहासिक पुरुष होने में भी संदेह था, पर अभी हाल में इनके कुछ ग्रंथ मिले हैं और इनका रचना काल कबीर से लगभग एक शताब्दी पहले था। कबीर ने अपने कुछ पदों को किसी गोरखनाथ को संबोधन करते हुए कहा है। इनको मछंदरनाथ का शिष्य और 'कनफटे' योगियों के नाथसंप्रदाय का प्रवर्त्तक गोरखनाथ मानने में स्पष्ट बाधाएँ हैं। हो सकता है कि कबीर ने जिनका उल्लेख किया है वह कोई दूसरे गोरखनाथ रहे होंगे। पर उन पदों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह दूसरे गोरखनाथ भी किसी मार्ग के प्रवर्त्तक या इसके तत्कालीन कर्णधार रहे होंगे और वह संप्रदाय कबीर पंथ का बड़ा विरोधी था। हठ योगियों के संप्रदाय में बहुत सी ऐसी प्रथाएँ प्रचलित थीं जिनको कोई भी विचारवान् मनुष्य बिना प्रतिवाद किए न रहेगा। इन्हीं अविचार पूर्ण रस्मों के प्रतिवाद स्वरूप कबीर की एक रमैनी देखिए—

ऐसा जोग न देखा भाई, भूला फिरै लिए गफिलाई।
महादेव को पंथ चलावे, ऐसो बड़ो महंत कहावै।
हाट बजारे लावैं तारी, कच्चे सिद्धन माया प्यारी।
कब दत्ते मावासी तोरी, कब सुखदेव तोपची जोरी।
नारद कब बंदूक चलाया, व्यासदेव कब बंब बजाया।
करहिं लराई मति के मंदा, ई अनीत की तरकस बंदा।
भए बिरक्त लोभ मन ठाना, सोना पहिरि लजावैं बाना।
घोरा घोरी कीन्ह बटोरा, गाव पाय जस चले करोरा।
साखी— (तिय) सुंदरि का सोहई, सनकादिक के साथ।
कबहुँक दाग लगावई, कारी हाड़ी हाथ ॥[2]

---

[1] बीजक, शब्द १०

[2] बीजक, रमैनी, ६६

एक स्थान पर वह गोरखनाथ से यों कहते हैं—

काटे आम न मौरसी, फाटे जुटे न कान।
गोरख पारस परस बिनु, कवने को नुकसान ॥[२]

इसी प्रकार उस समय प्रचलित प्रायः सभी मतों और संप्रदायों में जो कुछ बुराइयां इन्हें देख पड़ीं उनको इन्होने निश्शंक होकर, पर यथेष्ट उद्दंडता पूर्वक तीव्र समालोचना की है। सब से अधिक तो शायद इन्होंने इस्लाम मत के मर्म को उल्टा पल्टा समझाने वाले मुल्लाओं की ही खबर ली है। इस संबंध का एक उदाहरण और ध्यान देने योग्य है—

× × ×

बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़ैं कितेब कुराना।
कै मुरीद ततबीर बतावे, उनिमहं उहै जो ज्ञाना ॥

× × ×

हिंदु कहै मोहि राम पियारा, तुरुक कहैं रहिमाना।
आपुस महं दोउ लरि लरि मूए, मरम काहु नहिं जाना ॥[१]

कबीर और शेख़ तकी

कबीर की रचनाओं में कई ऐसे पद मिलते हैं जिनसे यह स्पष्ट है कि शेख तकी नामक एक फकीर से इनका कुछ सत्संग हुआ था। परंतु इतिहास से इसी नाम के दो फकीरों का पता चलता है—एक कड़ेमानिकपुर वाले जो चिश्ती संप्रदाय के सूफी फकीर थे और बादशाह सिकंदर लोधी के पीर माने जाते हैं। दूसरे झूँसी के शेख तकी जो कि सुहरवर्दी सम्प्रदाय के थे। किंवदंतियों से यह स्पष्ट नहीं होता कि कौन से तकी से कबीर का संपर्क था। पर जहाँ तक जान पड़ता है कड़ेमानिकपुर वाले तकी से ही कबीर का साक्षात्कार हुआ होगा, क्योंकि झूँसी वाले तकी की मृत्यु सं० १४८६ मे और कड़े वाले की सं० १६०२ मे मानी गई है। 'ख़जीनतुल आसफ़िया' के अनुसार तकी की मृत्यु स० १६४१ में कही गई है। यह कड़ेमानिकपुर वाले तकी ही हो सकते हैं। इस मे यह भी लिखा है कि पीर शेख़ तकी की मृत्यु के बाद इनकी गद्दी का उत्तराधिकारी शेख़ कबीर जुलाहा हुआ। झूँसी वाले तकी से कबीर का साक्षात्कार मानने से तिथियाँ ठीक नहीं बैठतीं। झूँसी में यह तकी के किसी शिष्य से ही मिले होंगे। अब रही तकी के कबीर के पीर या गुरु होने की बात। इस विषय पर परस्पर विरुद्ध किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कबीर ने अपनी रचनाओं में जहाँ जहाँ तकी का उल्लेख किया है उससे कहीं भी यह व्यक्त नहीं

---

[२] वही, साखी, ४६

[१] बीजक, शब्द, ४

होता कि तकी उनके गुरु रहे होंगे। प्रतिद्वंदिता का भाव अवश्य झलकता है। सब बातों के मिलान करने पर यही युक्तिसंगत जान पड़ता है कि कबीर ने आदि में स्वामी रामानंद को तो अवश्य ही गुरु स्वीकार किया था और हो सकता है कि बादशाह के पीर तकी का बड़ा नाम सुनकर उसके ज्ञान से लाभ उठाने की अभिलाषा से उसके समीप गए हों और वहां से निराश होकर लौटे हों। क्योंकि बहुत सी किंवदृतियों से यह स्पष्ट है कि तकी कबीर का जानी दुश्मन हो गया था और बादशाह से उन के बध तक कराने का दुराग्रह किया था। राजगुरु तकी के इतने रोष का सिवाय इसके और कोई कारण नहीं हो सकता कि उन्होंने इनकी (तकी की) शिष्यता स्वीकार नहीं की।

मगहर प्रस्थान

हो न हो जीवन के अंतिम दिनों कबीर को काशी छोड़ कर मगहर जाने पर वाध्य होना तकी की कुचेष्टा का ही परिणाम रहा हो। यह तो हम समझ सकते हैं कि कबीर स्वेच्छा से ही अपना चिरप्रिय काशिस्थ वासस्थान छोड यकायक मगहर के प्रेम में पड़कर वहाँ चले गए हों। 'जो कबिरा-काशो मरै तो रामहि कवन निहोरा' वाले बचन में कुछ भी तत्त्व नहीं है। अब दो ही बातें ऐसी रह जाती हैं जिनकी वजह से विवश हो कर कबीर को काशी छोड़ कर चला जाना पड़ा हो। एक तो जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि तकी आदि उनके द्वेपियों के कुचक्र और कुमंत्रणा से बादशाह ने इन्हें काशी छोड़ कर चले जाने की आज्ञा दे दी हो। दूसरा कारण यह हो सकता है कि काशी के पडितों और मुल्लाओं आदि ने ही इनको इतना तग करना शुरू कर दिया हो कि इन्होंने विवश होकर अन्यत्र चले जाने का ही निश्चय किया हो। यह एक तथ्य है कि कबीर के अंतिम दिन मगहर में ही बीते और इसके उपर्युक्त दोनों ही कारण या उनमें से कोई एक हो सकता है।

कबीर का साहित्य

यह तो कबीर स्वयं कह चुके हैं कि मैंने 'मसि' और 'कागद' कभी हाथ से भी नहीं छुआ था और 'चारो जुग का महातम' मैंने मुँह से कह के ही जनाया है। इस से यह तो स्पष्ट ही है कि इन्होंने स्वयं अपनी कोई भी रचना लिपिवद्ध नहीं की थी। तो भी इनके नाम से प्रसिद्ध रचना परिमाण में बहुत अधिक मिलती है। 'हस्त लिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' (प्रथम भाग) नामक काशी-नागरी-प्रचारिणी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ मे इनके रचित ग्रंथों की सूची में साठ से ऊपर ग्रंथ गिनाए गए हैं। मिश्रबंधुओं की 'हिंदी नवरत्न' नामक पुस्तक में इनके ग्रंथों की एक सूची दी गई है और इसमें इनके ग्रंथों की संख्या सत्तर से भी ऊपर पहुँच गई है। ऐसी अवस्था मे यह तो स्पष्ट ही है कि इनके मुख से निकले हुए पदों को इनके शिष्य भरसक कंठस्थ कर लेते थे। बाद में ये पद 'बीजक' और सिखों के

छठवें गुरु अर्जुन द्वारा संपादित 'आदिग्रंथ' मे संगृहीत किए गए। परंतु ऐसी अवस्था मे पाठो मे अत्यधिक भ्रष्टता, हेर फेर तथा रद् बदल होना स्वाभाविक ही है। यह तो निश्चय है ही कि इनके शिष्यों ने संग्रह को लिपिवद्ध या सपादित करते समय भूले हुए पद्यो या पद्यांशो को अपनी निजी सूझ बूझ के अनुसार जोड़ दिया होगा, साथ ही यह भी निश्चय है कि ये काफी बड़ी सख्या मे कबीर के विचार और शैली के ढंग पर बहुत से स्वरचित पद भी उनकी रचना के साथ यत्र तत्र मिलाते चले गए। कबीर के नाम से जितनी रचना इस समय उपलब्ध है उसका एक काफी बड़ा भाग इनके शिष्यों की रचना है और समूची रचना मे से कबीर के पदों को छाँट कर अलग करना असंभव है।

कबीर के उपलब्ध सग्रहों मे सबसे अधिक प्रसिद्ध 'बीजक' है। कहा जाता है कि बनारस के आस पास के कुछ लोगो मे धन सुरक्षित रखने की एक अनोखी प्रथा है। ये लोग धन को किसी गुप्त स्थान मे छिपा देते हैं और यादृदाश्त के लिये एक संकेतपत्र या नकशा या बीजक बनाते हैं जिसको समझने वाला ही उस स्थान का पता लगा सकता है। इसी शब्द के अनुसार कबीर के सग्रहकर्त्ताओ ने इनके सग्रह का नाम 'बीजक' रक्खा होगा। आशय यह है कि इसको ठीक ठीक समझने वाला ही कबीर के ज्ञानकोश से परिचित हो सकता है।

'बीजक'

इस समय बीजक के कई संस्करण उपलब्ध हैं पर इनमे कई बातों में एक दूसरे से बड़ा अतर है। पाठ, पदसंख्या, विषयक्रम तथा साधारण व्यवस्था आदि सब ही भिन्न भिन्न प्रकार से हैं। निम्नलिखित संस्करण हमारे सामने हैं—

(१) बुढ़ानपुर निवासी श्री पूरनदास की टीकायुक्त, सन् १९०५ मे प्रयाग मे मुद्रित संस्करण।

(२) कानपुर के रेवरेंड अहमदशाह का सन् १९११ का सस्करण। इसका संपादन रीवाँनरेश महाराज विश्वनाथ सिंह द्वारा सकलित 'बीजक' के अनुसार ही किया हुआ कहा जाता है। विश्वनाथ सिंह जी ने बीजक की टीका भी की है और इनका सस्करण सन् १८६८ मे काशी में छपा था, पर अभाग्यवश संप्रति अप्राप्य होने के कारण यह हमारे देखने मे नही आया।

(३) अभी हाल में (सन् १९२८) मे प्रयाग के लाला रामनरायन लाल ने श्री विचारदास की टीका का एक सुलभ संस्करण प्रकाशित किया है।

सन् १८९० मे कलकत्ते में रेवरेंड प्रेमचंद नामक मुंगेर के एक मिशनरी सज्जन ने भी बीजक का एक संस्करण निकाला था, पर यह भी अब बाजार मे अलभ्य हो गया है।

बीजक की रचनाएँ साधारणतः इन्हीं शीर्षकों में विभाजित हैं—

रमैनी	पद संख्या	८४
शब्द	,,	११५
ज्ञान चौंतीसा	,,	१
विप्रमतीसी	,,	१
कहरा	,,	१२
बसंत	,,	१२
चाँचर	,,	२
बेली	,,	२
बिरहुली	,,	१
हिंडोला	,,	३
साखी	,,	३५३

कबीर की कविताओं का दूसरा बड़ा सग्रह 'आदिग्रंथ' में हुआ है। इस बृहत् धर्मग्रंथ का संकलन सिखों के छठवें गुरु अर्जुन ने स० १६६१ मे कराया था। इसमे प्रथम गुरु नानक से लेकर गुरु अर्जुन तक छहों गुरुओ की रचनाएं सगृहीत हैं। बाद में गुरु तेग बहादुर और अतिम गुरु गोविंद सिंह की रचनाएं भी इसमे जोड़ दी गई हैं। इन गुरुओं के अतिरिक्त इसमे नामदेव तथा कबीर आदि कुछ प्रमुख भक्तों की बानियां भी सगृहीत हैं। इस महद्ग्रंथ में मि० पिनकाट की गणना के अनुसार कबीर के १,१४६ पद्य हैं, जिनमें २४४ तो साखियाँ हैं और शेष विभिन्न राग रागिनियों मे गेय पदों के रूप में हैं। अधिकांश समालोचकों की राय मे ग्रंथ के अधिकतर पद कबीर के रचे हुए नहीं हैं पर उनमें विचार उन्हीं के हैं। कबीरपंथी इनका पाठ कभी नहीं करते। और फिर बहुत थोड़े पद ऐसे हैं जो बीजक और इसमें दोनों में समान हों, और जो समान हैं भी उनमें पाठांतर बहुत हैं।

आदिग्रंथ

अभी थोड़े दिन हुए काशी नागरीप्रचारिणी सभा से बाबू श्यामसुंदरदास जी ने 'कबीर ग्रथावली' नाम से कबीर की रचनाओं का एक अति सुचारु रीति से संपादित एक संस्करण निकाला है। सभा को हस्तलिखित पुस्तकों की खोज मे कबीर के ग्रथों की दो प्रतियां मिलीं थी, एक सं० १५६१, अर्थात् कबीर के जीवन काल की ही लिखी हुई, और दूसरी सं० १८८१ की। कहा जाता है कि पहली प्रति बाबा मलूकदास जी की लिखी हुई है। दोनों प्रतियों तथा आदिग्रथ को मिला कर बाबू साहब ने इस सग्रह का संपादन किया है। जो दोहे और पद मूल अंश में नहीं आए उन्हे आपने अलग कर परिशिष्ट में डाल दिया है। सर्वसम्मति से यह इस समय कबीर का सबसे प्रामाणिक संग्रह माना जाता है। प्रस्तुत सग्रह के अधिकांश पद इसी ग्रथावली से लिए गए हैं।

कबीर की कविता

कवि के लिये हमारे प्राचीन आचार्यों ने जो तीन बातें आवश्यक मानी हैं उन में दो—'शिक्षा' और 'अभ्यास'—से तो कबीर साहब शून्य थे। रह गई 'प्रतिभा', सो अब कुछ विद्वानो को कबीर के प्रतिभान्वित होने मे भी संदेह होने लगा है। यह एक तथ्य अवश्य है कि साधू संतों, और वैरागियों की एक ऐसी शाखा बाबा गोरखनाथ के समय से ही चली आ रही है जिस के अनुयायियो को ज्ञानोपदेश और वेद, पुराण, वर्णाश्रम धर्म आदि की उद्दंड समालोचना का रोग सा होता है। दलित जातियो तथा अशिक्षितो की सहानुभूति पाने की लालसा से द्विजातियो के धर्म तथा कर्मकांड आदि की तीव्र निंदा करते हुए एक विचित्र रूप से एकेश्वरवाद का मंत्र देते फिरते हैं। इनके ज्ञानभंडार मे कुछ चलते हुए दार्शनिक शब्दो तथा वाक्यो के सिवा और कुछ नही होता। धूनी लक्कड़ सुलगा कर गाँजे और चरस की दम तैयार हुई नहीं कि मूर्खमंडली एकत्रित हो कर इन के ज्ञान और चिलम दोनो से लाभ उठाने लगती है। फिर खँजड़ी के ताल और चिमटे के सुर मे ज्ञान स्रोतस्विनी मे ये भक्त गोते लगाने लग जाते हैं। इन्ही परिस्थितियों मे कहे हुए शब्द आगे चल कर 'बानी' नाम से अभिहित होकर मायावाद और रहस्यवाद आदि बड़े शब्दो से अलंकृत होते है। इस प्रकार कहे हुए बहुत से पद अर्थशून्य वाग्जाल मात्र हैं, पर इन के रहस्यपूर्ण या उलटवाँसी आदि शब्दो से पुरस्कृत होने का एक मात्र कारण है इन की अर्थशून्यता। इस कथन से मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि कबीर के सब पद भी ऐसे ही है। पर इतना कहने मे कुछ हानि नहीं प्रतीत होती कि लाख कोशिश करने पर भी विद्वानो की समझ मे न आने वाले बहुत से पद कोई खास मानी नही रखते। उन्हें किसी आध्यात्मिक तत्त्व से पूर्ण मानना भ्रम है। हम यह भी कहने का साहस कर सकते है कि हो न हो ऐसे पद विशेष कर कबीर के अनुयायियो के रचे हुए होगे जो कालांतर मे कबीर की रचना मे मिला दिए गए। इस अनुमान का आधार यही है कि कबीर ऐसा स्पष्टवादी कभी ऐसी उक्ति कहने का पक्षपाती न रहा होगा जिस का आशय जन साधारण की समझ मे न आवे। और एक बात यह भी है कि कबीर के ही बहुत से पद और दोहे बहुत मनोरम और सहल सुंदर भी बन पड़े हैं। इन मे काव्याडंबर तो कुछ भी नही है पर भाव बड़े सुंदर और ऊँचे हैं। क्या यह संभव है कि एक ही कवि एक साथ ही नितांत दुरूह और अति स्पष्ट हो? कबीर का हिंदी साहित्य मे जो स्थान है वह इन्ही स्पष्ट और बोधगम्य पदो के प्रभाव से, उन के ईश्वर संबंधी तथ्य कथन अधिकतर स्पष्ट रूप से ही हुए हैं। जहाँ जहाँ उन्हों ने हिंदू मुसलमान दोनों ही के धार्मिक ढोंग, पाखंड, तथा समाज संबंधी परंपरागत दुर्बल विश्वास, स्वतंत्रविचार के अभाव आदि की आलोचना की वहाँ उन के पदो से व्यंग तथा कही कहीं क्रूर परिहास की मात्रा अवश्य आ गई

है पर वे भी अधिकांश में भलीभाँति बोधगम्य हैं। अबोधगम्य अधिकतर वही हैं जिन में माया, ब्रह्म, अज्ञान आदि संबंधी तात्त्विक सिद्धांतों का समावेश सा प्रतीत होता है। ऐसे पदों में सूफी फ़कीरों तथा अद्वैतवाद के सिद्धांतों का एक निराला सम्मिश्रण सा जान पड़ता है। मेरे विचार से इस प्रकार के पदों को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया गया है। पर ऐसा कहते समय कबीर के तात्त्विक सिद्धांतों के प्रतिपादन करने वाले तथा आचार और समाज नीति से संबंध रखने वाले पदों के पार्थक्य को भलीभाँति मन में रखना होगा। तात्त्विक सिद्धांतों से संबंध रखने वाले कबीर के जितने पद मिलते हैं उन पर समष्टि रूप से विचार करने के बाद कोई सुनिश्चित अपना स्पष्ट दार्शनिक सिद्धांत स्थापित नहीं होता। यहां पर उनके तात्त्विक सिद्धांतों के विश्लेषण का अवसर नहीं है, संक्षेप से केवल यही कहा जा सकता है कि इन के पदों मे कहीं निर्गुण ब्रह्म की महिमा गाई है तो कहीं इस्लामी एकेश्वरवाद की। कहीं इन्होंने जीवात्मा, परमात्मा, तथा जड जगत् की अलग अलग सत्ता स्वीकार की है तो कहीं एक ही परमात्मा (नूर) से सब की सृष्टि और उसी में सब का लय दिखलाया है। कोई भी एक मत स्थिर नहीं हो पाता। आध्यात्मिक सिद्धांतों के निरूपण के लिये शब्दों के प्रयोग में जो स्पष्टता तथा सावधानी तथा एकरूपता की आवश्यकता है वह कबीर से कोसों दूर है। ईश्वर या ब्रह्म के लिये जो शब्द इन्हे सूझा उसी का इन्होंने प्रयोग किया। राम, रहीम, अल्ला, हरि, गोविंद, आप, साहिब, नाम, शब्द, सत्य आदि अनेक शब्दों से इन्होने काम लिया है। फिर सभी की महिमा भिन्न भिन्न रूपों से गाई गई है। इस का परिणाम यह हुआ है कि इन के पदों को पढ़ने पर पाठक कुछ अव्यवस्थित सा हो जाता है और कोई भी समालोचक इन की रचना के दार्शनिक पहलू पर कोई सम्मति नही स्थिर कर सकता। इन का अच्छा से अच्छा समर्थक केवल यही कह कर संतोष कर लेता है कि तत्त्वज्ञान का विषय जिस प्रकार गहन और जटिल है कबीर की कविताएँ भी वैसी ही हैं। उनका कहना है कि कबीर का काव्य केवल अनुभव की वस्तु है, वह गूँगे का गुड़ है। अध्यात्मज्ञान की भाँति उस का केवल अनुभव संभव है, शब्दों द्वारा उस को व्याख्या नही। कबीर पहुँचे हुए फ़कीर थे, उन्होने अपनी अनुभूति को शब्दों में व्यक्त करने की चेष्टा की है। पर जब वह विषय, जिसे व्यक्त करना उन्हे अभीष्ट था, अतींद्रिय है तो उन की रचना कैसे इंद्रियग्राह्य हो सकती है। अतएव इस प्रकार की रचना का मर्म वही समझ सकता है जो स्वयं कबीर की भाँति पहुँचा हुआ हो, अतींद्रियज्ञाननिधि हो चुका हो। यही एक तर्क कबीर के दुरूह पदों के समर्थन मे पेश किया जा सकता है। पर इसका प्रत्युत्तर या प्रतिवाद करने की चेष्टा व्यर्थ है।

जो हो, इन कठिनाइयों के होते हुए भी कबीर को हिंदी साहित्य का एक उज्ज्वल रत्न मानना पड़ेगा। उन की अनूठी उक्तियां, चाहे वह कभी कभी समझ

में न भी आवें, हिंदी साहित्य मे अनुपम हैं, और चाहे कुछ हो या न हो उन में भक्ति और शांति का एक ऐसा नीरव सगीत प्रवाहित है जो हिंदी क्या संसार के साहित्य के किसी भी साहित्य में शायद ही प्राप्य हो। इन के पदों, शब्दों और वाक्यों मे न कलाकार की खराद है, न छदों, पंक्तियो या मात्राओं आदि पर ही कोई विशेष ध्यान रक्खा गया है। ये उनके 'हृदयोद्गार' मात्र हैं, जो कि परिवर्ती कविता मे इतने दुर्लभ हो गए, और इसी से इन का इतना मूल्य है।

दुलहनीं गावहु मंगलचार,
हम घरि आए हो राजाराम भरतार ||टेक||

तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पचतत्त बराती ।
रामदेव मोरै पाहुनैं आये, मैं जोबन मैंमाती ||
सरीर-सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार ।
रामदेव सग भावरि लैहूँ, धनि धनि भाग हमार ||
सुर तेंतीसू कैतिग आये, मुनिवर सहस अठ्यासी ।
कहैं कबीर हम व्याहि चले हैं, पुरिष एक अविनासी ||

अब में पाइबौ रे पाइबौ ब्रह्मगियान
सहज समाधें सुख मैं रहिबौ, कोटि कलप विश्राम ||टेक||
गुर कृपाल कृपा जब कीन्हीं, हिरदै कंवल बिगासा ।
भागा भ्रम दसौं दिसि सूझ्या परम जोति प्रकासा ||
मृतक उठ्या धनक कर लीयै, काल अहेड़ी भागा ।
उदया सूर निस किया पयाना, सोवत थैं जब जागा ||
अविगत अकल अनूपम देख्या, कहता कह्या न जाई ।
सैन करै मनहीं मन रहसै, गूँगै जानि मिठाई ||
पहुप बिना एक तरवर फलियाँ, बिन कर तूर बजाया ।
नारी बिना नीर घट भरिया, सहज रुप सो पाया ||
देखत काच भया तन कंचन, बिन बानी मन माना ।
उठ्या बिहगम खोज न पाया, ज्यूं जल जलहि समाना ||
पूज्या देव बहुरि नहीं पूजौ, न्हाये उदिक न नाउँ ।
भागा भ्रम ये कही कहंता, आये बहुरि न आऊं ||
आपै मै तब आपा निरप्या, अपन पैं आपा सूझ्या ।
आपै कहत सुनत पुनि अपना, अपन पैं आपा बूझ्या ||
अपनै परचै लागी तारी, अपन पैं आप समाना ।
कहै कबीर जे आप विचारै, मिटि गया आवन जाना ||

इहि यत राम जपहु रे प्रानी, बूझौ अकथ कहाणी ।
हरि कर भाव होइ जा ऊपरि, जागति रैनि बिहानी टेक ॥
डाइन डारै सुनहा डोरै, स्यघ रहैं बन घेरै ।
पंच कुटुम्ब मिलि झूझन लागे, बाजत सबद संघेरै ॥
रोहै मृग ससा बन घेरै, पारधी बाण न मेलै ।
सायर जलै सकल बन दाझै, मंछ अहेरा खेलै ॥
सोई पडित सो तत ग्याता, जो इहि पदहि बिचारै ।
कहै कबीर सोइ गुर मेरा, आप तिरै मोहिं तारै ॥

एक अचभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंह चरावै गाई ॥टेक॥
पहलै पूत पीछैं भई माइ, चेला कै गुर लागै पाइ ॥
जल की मछरी तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई ।
बैलहि डारि गूनि घरि आई, कुत्ता कू लै गई बिलाई ॥
तलि करि साखा ऊपरि करि मूल, बहुत भाति जड़ लागे फूल ।
कहै कबीर या तप कौ बूझै, ताकू तीन्यू त्रिभुवन सूझै ॥

संतौ भाई आई ग्यांन की आँधी रे ।
भ्रम की टाटी सबै उडाणीं, माया रहै न बाँधी ॥टेक॥
हित चत की द्वै थूनी गिरानी, मोह बलींडा तूटा ।
त्रिस्ना छानिं परी घर ऊपरि, कुबधि का भाडा फूटा ॥
जोग जुगति करि सतौ बाँधी, निरचू चुवै न पाणी ।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जाणी ॥
आधी पीछै जो जल बूठा, प्रेम हरी जन भीना ।
कहै कबीर भान के प्रगटे, उदित भया तम षीना ॥

हिंडोला तहा झूलै आतम राम ।
प्रेम भगति हिंडोलना, सब सतन कौ विश्राम ॥टेक॥
चद सूर दोइ खभवा, बक नालि की डोरि ।
झूलै पच पियारिया, तहा झूलै जीय मोर ॥
द्वादस गम के अतरा, तहा अमृत कौ ग्रास ।
जिनि यहु अमृत चापिया, सो ठाकुर हम दास ॥
सहज सुनि को नेंहरौ, गगन मंडल सिरि मौर ।
दोऊ कुल हम आगरी, जौ हम झूलैं हिंडोल ॥
अरध उरध की गंगा जमुना, मूल कवल कौ घाट ।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाट ॥

नाद व्यंद की नावरी, राम नाम कनिहार।
कहै कबीर गुण गाइ ले, गुर गमि उतरौ पार॥

मैं बुनि करि सिराना हो राम, नाल करम नहि ऊबरे॥टेक॥
दखिन कूट जब सुनहा भूंका, तब हम सगुन विचारा।
लरके परके सब जागत हैं, हम घरि चोर पसारा हो राम॥
ताना लीन्हा बाना लीन्हा, लीन्हें गोड के पऊवा।
इत उत चितवत कठवन लीन्हा मांड चलवना डऊवा हो राम॥
एक पग दोइ पग त्रेपग, संधे सधि मिलाई।
करि परपच मोट बधि आयो, किल किल सबै मिटाई हो राम॥
ताना तपन करि बाना बुनि करि, छाक परी मोहि ध्यान।
कहै कबीर मैं बुनि सिराना, जानत है भगवाना हो राम॥

मन रे जागत रहिये भाई।
गाफिल होइ बसत मति खोवै, चोर मुसै घर जाई॥टेक॥
षट चक्र की कनक कोठरी, बस्त भाव है सोई।
ताला कूँची कुलफ के लागे, उघड़त बार न होई॥
पंच पहरवा सोइ गए हैं, बसतैं जागण लागी।
जुरा मरण व्यापै कुछ नाहीं, गगन मडल लै लागी॥
करत विचार मन ही मन उपजी, ना कहीं गया न आया।
कहै कबीर ससा सब छूटा, राम रतन धन पाया॥

चलन चलन सब को कहत हैं, ना जानौं बैकुंठ कहां है॥ टेक॥
जोजन एक प्रमिति नहीं जानै, बातनि ही बैकुंठ बखानै।
जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लगि नहिं हरि चरन निवासा॥
कहें सुनें कैसे पतिअइए, जब लग तहां आप नहीं जइये।
कहै कबीर यहु कहिये काहि, साध सगति बैकुंठहि आहि॥

अपनै मैं रँगि आप तपौ जानूँ, जिहि रँगि जानि ताही कूं मानूं॥ टेक॥
अभि अतरि मन रग समाना, लोग कहैं कबीर बौराना।
रग न चीन्हैं मूरिख लोई, जिहि रँगि रँग रह्या सब कोई॥
जे रग कबहूं न आवै न जाई, कहै कबीर तिहिं रह्या समाई।

झगरा एक नबेरौ राम, जे तुम्ह अपनै जन सूँ काम॥ टेक॥
ब्रह्मा बड़ा कि जिनि रु उपाया वेद बड़ा कि जहा थैं आया।
यहु मन बड़ा कि जहा मन मानैं, राम बड़ा कि रामहिं जानैं॥
कहै कबीर हूं खरा उदास, तीरथ बड़े कि हरि के दास।

दास रामहिं जानि है रे, और न जानैं कोइ ॥ टेक ॥
काजल देइ सबै कोई, चषि चाहन माहि बिनान ।
जिनि लोइनि मन मोहिया, ते लोइन परवान ॥
बहुत भगति भौ सागरा, नाना विधि नाना भाव ।
जिहि हिरदै श्री हरि भेटिया सो भेद कहूँ कहूँ ठाउं ॥
दरसन सीमा का कीजिए, जौ गुन नहीं होत समान ।
सींधव नीर कबीर मिल्यौ है, फटक न मिलै पखान ॥

मै डोरै डोरै जाऊगा, तौ मै बहुरि न भौजलि आऊंगा ॥ टेक ॥
सूत बहुत कछु थोरा, ताथै लाइ लै कथा डोरा ।
कथा डोरा लागा, तब जुरा मरण भौ भागा ॥
जहा सूत कपास न पूनी, तहा बसै इक मूनीं ।
उस मूनीं सूं चित लाऊगा, तौ मै बहुरि न भौजलि आऊंगा ॥
मेर डड इक छाजा, तहा बसै इक राजा ।
तिस राजा सूँ चित लाऊ गा, तौ मै बहुरि न भौजलि आऊगा ॥
जहा बहु हीरा धन मोती तहा तत लाइ लै जोती ।
तिस जोतिहि जोति मिलाऊंगा, तौ मै बहुरि न भौजलि आऊंगा ॥
जहा ऊगै सूर न चदा, तहा देष्या एक अनदा ।
उस आनद सू चित लाऊगा, तौ मै बहुरि न भौजलि आऊगा ॥
मूल बधु इक पावा तहा सिद्ध गणेस्वर रावा ।
तिस मूलहिं मूल मिलाऊंगा तौ मै बहुरि न भौजलि आऊंगा ॥
कबीर तालिब तोरा तहा गोपत हरी गुर मोरा ।
तहां हेत हरी चित लाऊगा तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊंगा ॥

भाई रे बिरले दोस्त कबीर के यहु तत बार बार कासों कहिए ।
भानण घड़ण संवारण सम्रथ ज्यूं राषै त्यूं रहिए ॥ टेक ॥
आलम दूनी सबै फिरि खोजी हरि बिन सकल अयाना ।
छह दरसन छ्यानवै पाषड आकुल किनहूँ न जाना ॥
जप तप सजम पूजा अरचा जोतिग जग बौराना ।
कागद लिखि लिखि जगत भुलाना मनही मन न समाना ॥
कहै कबीर जोगी अरु जंगम ए सब झूठी आसा ।
गुरु प्रसादि रटौ चात्रिग ज्यूं निहचै भगति निवासा ॥

कितेक सिव संकर गए ऊठि,
राम समाधि अजहूँ नहीं छूटि ॥ टेक ॥
प्रलै काल कहूँ कितेक भाष गये इंद्र से अगणित लाष।
ब्रह्मा खोजि पर्‌यौ गहि नाल कहै कबीर वै राम निराल ॥

सो कछू बिचारहु पंडित लोई,
जाके रूप न रेष बरण नहीं कोई ॥ टेक ॥
उपलै प्यंड प्रान कहा थै आवै मूवा जीव जाइ कहा समावै।
इंद्री कहा करहि विश्रामा सो कत गया जो कहता रामा ॥
पंचतत तहा सबद न स्वाद अलष निरंजन विद्या न बाद।
कहै कबीर मन मनहि समाना तब आगम निगम झूठ करि जाना ॥

पंडित बात बदते झूठा,
राम कह्या दुनिया गति पावै षांड कह्या मुख मीठा ॥ टेक ॥
पावक कह्या पाव न दाझै जल कहि त्रिषा बुझाई।
भोजन कह्या भूख जे भाजै तौ सब कोइ तिरि जाई ॥
नरकै साथि सूवा हरि बोलै हरि परताप न जानै।
जो कबहूँ उड़ जाइ जंगल मैं बहुरि न सुरतै आनै ॥
साची प्रीति विषै माया सू हरि भगतनि सू हासी।
कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ बांध्यौ जमपुरि जासी ॥

जौ पै करता बरण बिचारै,
तौ जनमत तिनि डांडि किन सारै ॥ टेक ॥
उतपति ब्यंद कहा थै आया,
जोति धरी अरु लागी माया ॥
नहीं को ऊंचा नहीं को नीचा,
जाका प्यंड ताही का सींचा ॥
जे तू बांभन बभनी जाया,
तौ आन बाट ह्वै काहे न आया ॥
जे तूं तुरक तुरकनी जाया,
तौ भीतरि खतना क्यू न कराया ॥
कहै कबीर मधिम नही कोई,
सो मधिम जा मुखि राम न होई ॥

कथता बकता सुरता सोई आप बिचारै ग्यानी होई ॥ टेक ॥
जैसैं अगिन पवन का मेला चंचल चपल बुधि का खेला।
नव दरवाजे दसू दुवार बूझि रे ग्यानी ग्यान बिचार ॥

देही माटी बोलै पवना बूझि रे ग्यानी मूवा स कौना ।
मुई सुरति बाद अहंकार, वह न मूवा जो बोलनहार ॥
जिस कारनि तटि तीरथि जाहीं, रतन पदारथ घटहीं माही ।
पढ़ि पढ़ि पंडित बेद बखानौं, भीतरि हूती बसत न जाणै ॥
हूं न मूवा मेरी मुई बलाइ, सो न मुवा जो रह्या समाइ ।
कहै कबीर गुरु ब्रह्म दिखाया, मरता जाता नजरि न आया ॥

हम न मरैं मरिहैं संसारा, हम कूं मिल्या जियावनहारा ॥टेक॥
अब न मरौं मरनै मन माना, तेई मुए जिनि राम न जाना ।
साकत मरै संत जन जीवैं, भरि भरि राम रसाइन पीवैं ॥
हरि मरिहैं तौ हमहूं मरिहैं, हरि न मरै हम काहे कूं मरिहैं ।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भए सुख सागर पावा ॥

कौन मरै कौन जनमै आई, सरग नरक कौनै गति पाई ॥टेक॥
पंचतत अबिगत थै उतपना, एकैं किया निवासा ।
बिछुरे तत फिरि सहजि समाना, रेख रही नहीं आसा ॥
जल मैं कुंभ कुंभ मैं जल है, बाहरि भीतरि पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथौ गियानी ॥
आदैं गगना अंतैं गगनां, मधे गगना भाई ।
कहै कबीर करम किस लागै, झूठी संक उपाई ॥

कौन मरै कहु पंडित जना, सो समझाइ कहौ हम सना ॥टेक॥
माटी माटी रही समाई, पवनै पवन लिया सँगि लाई ।
कहै कबीर सुनि पंडित गुनी, रूप मूवा सब देखै दुनीं ॥

जे को मरै मरन है मीठा,
गुरु प्रसाद जिनही मरि दीठा ॥ टेक ॥
मूवा करता मुई ज करनी, मुई नारि सुरति बहु धरनी ॥
मूवा आपा मूवा मान, परपंच लेइ मूवा अभिमान ।
राम रमे रमि जे जन मूवा, कहै कबीर अबिनासी हूवा ॥

जस तू तस तोहिं कोई न जान ।
लोग कहैं सब आनहि आन ॥ टेक ॥
चार बेद चहुँ मत का बिचार, इहि भ्रमि भूलि पर्‌यौ संसार
सुरति सुमृति दोइ कौ बिसवास, बाझि पर्‌यौ सब आसा पास ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक सुर नर, मैं बपुरौ धू का मैं का कर ।
जिहि तुम्ह तारौ सोई पैं तिरई, कहै कबीर नातर बाध्यौ मरई ॥

लोका तुम्ह ज कहत हौ नद कौ नंदन नद कहौ धू काकौ रे।
धरनि अकास दोऊ नहिं होते तब यहु नद कहा थौ रे॥ टेक॥
जामैं मरै न संकुटि आवै नाव निरजन जाकौ रे।
अविनासी उपजै नहि बिनसै संत सुजस कहैं ताकौ रे॥
लख चौरासी जीव जत मैं भ्रमत भ्रमत नंद थाकौ रे।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसो भगति करै हरि ताकौ रे॥

निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई।
अविगति की गति लखी न जाई॥ टेक॥
चारि बेद जाकै सुमृत पुराना नौ व्याकरना मरम न जाना।
सेस नाग जाकै गरड़ समाना चरन कवल कवला नहिं जाना॥
कहै कबीर जाकै भेदै नाहीं निज जन बैठे हरि की छाँहीं॥

मै सबनि मै औरनि मैं हूँ सब।
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो,
कोई कहौ कबीर कोई कहौ राम राई हो॥ टेक॥
ना हम बार बूढ नाहीं हम ना हमरै चिलकाई हो।
पठए न जाऊं अरवा नहीं आऊं सहजि रहु हरि आई हो॥
बोढन हमरै एक पछेवरा लोक बोलैं इकताई हो।
जुलहै तनि बुनि पान न पावल फारि बुनी दस ठाँई हो॥
त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल तब हमारो नाउ राम राई हो।
जग मै देखौं जग न देखै मोहि इहि कबीर कछु पाई हो॥

लोका जानि न भूलौ भाई।
खालिक खलक खलक मै खलिक सब घट रह्यौ समाई॥ टेक॥
अला एकै नूर उपनाया ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थैं सब जग कीया कौन भला कौन मंदा॥
ता अला की गति नहीं जानी गुरि गुड़ दीया मीठा।
कहै कबीर मै पूरा पाया सब घटि साहिब दीठा॥

राम मोंहि तारि कहा लै जैहो।
सो बैकुंठ कहौ धू कैसा करि पसाव मोहि दैहो॥ टेक॥
जे मेरे जीव दोइ जानत हौ तौ मोहि मुकति बताओ।
एक मेक रमि रह्या सबनि मै तौ काहे भरमावौ॥
तारण तिरण जबै लग कहिए तब लग तत न जाना।
एक राम देख्या सबहिन मै कहै कबीर मन माना॥

सोहं हंसा एक समान, काया के गुण आनहि आन ॥ टेक ॥
माटी एक सकल संसारा, बहु विधि भांडे घड़ै कुंभारा ॥
पंच बरन दस दुहिये गाइ, एक दूध देखौ पतियाइ ॥
कहै कबीर संसा करि दूरि, त्रिभुवन नाथ रह्या भरपूर ॥

प्यारे राम मन ही मना ।
कासूं कहूँ कहन कौं नाहीं, दूसर और जना ॥ टेक ॥
ज्यूं दरपन प्रतिंब्यंब देखिए, आप दवासूं सोई ।
संसौ मिट्यौ एक कौ एकै, महा प्रबल जब होई ॥
जौ रिझऊं तौ महा कठिन है, बिन रिझयै थै सब खोटी ।
कहै कबीर तरक दोइ साधै ताकी, मति है मोटी ।

काजी कौन कतेब बषानैं ।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते, गति एकै नहीं जानैं ॥ टेक ॥
सकति से नेह पकरि करि सुनति, यहु नबदू रे भाई ।
जौर षुदाइ तुरक मोहि करता, तौ आपै कटि किन जाई ॥
हौं तौ तुरक किया करि सुनति, औरति सौं का कहिये ।
अरध सरीरी नारि न छूटै, आधा हिंदू रहिये ॥
छाडि कतेब राम कहि काजी, खून करत हौ भारी ।
पकरी टेक कबीर भगति की, काजी रहे झषमारी ॥

पढ़ि ले काजी बंग निवाजा ।
एक मसीति दसौं दरवाजा ॥ टेक ॥
मन करि मका कबिला करि देही, बोलनहार जगत गुरु ये ही ।
उहा न दोजग भिस्त मुकामा, इहा ही राम इहा रहिमाना ॥
बिसमल तामस भरम क दूरी, पचूं भषि ज्यूं होइ सबूरी ।
कहै कबीर मैं भया दिवाना, मनवा मुसि मुसि सहजि समाना ॥

मुला करि ल्यौ न्याव खुदाई ।
इहि बिधि जीव का भरम न जाई ॥ टेक ॥
सरजी आनैं देह बिनासै, माटी बिसमल कीता ।
जोति सरूपी हाथि न आया, कहौ हलाल क्या कीता ॥
बेद कतेब कहौ क्यूं झूठा, झूठा जोनि बिचारै ।
सब घटि एक एक जानै, भी दूजा करि मारै ॥
कुकड़ी मारै बकरी मारै, हक हक करि बोलै ।
सबै जीव साईं के प्यारे, उबरहुगे किस बोलै ॥

दिल नहीं पाक पाक नहीं चीन्हा, उसदा खोज न जाना।
कहै कबीर भिसति छिटकाई दो जग ही मन माना ॥

या करीम बलि हिकमत तेरी,
खाक एक सूरति बहु तेरी ॥ टेक ॥
अर्ध गगन मैं नीर जमाया, बहुत भाति करि नूरनि पाया ॥
अवलि आदम पीर मुलाना तेरी, सिफति करि भए दिवाना ॥
कहै कबीर यहु हेतु बिचारा, या रब या रब यार हमारा ॥

काहे री नलिनी तू कुमिलानी,
तेरी ही नालि सरोवर पानी ॥ टेक ॥
जल मैं उतपति जल मैं बास, जल मैं नलनी तोर निवास ॥
ना तलि तपति न ऊपर आगि, तोर हेत कहु कासनि लागि ॥
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मूए हमारे जान ॥

इब तूं हसि प्रभू मैं कछु नाहीं,
पडित पढ़ि अभिमान नसाही ॥ टेक ॥
मैं मैं मैं जब लग मैं कीन्हा तब लग मैं करता नही चीन्हा ॥
कहै कबीर सुनहु नर नाहा ना हम जीवत न मूवाले माहा ॥

अब का डरौं डर डरहि समाना,
जब थैं मोर तोर पहिचाना ॥ टेक ॥
जब लग मोर तोर करि लीन्हा, मै मै जनमि जनमि दुख दीन्हा ॥
आगम निगम एक करि जाना, ते मनवा मन माहि समाना ॥
जब लग ऊंच नीच करि जाना, ते पसुवा भूले भ्रम नाना ॥
कहै कबीर मै मेरी खोइ, तबहि राम अवर नही कोई ॥

अवधू जोगी जग मैं न्यारा।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न षंडै धारा ॥ टेक ॥
बसै गगन मैं दुनी न देखै, चेतनि चौकी बैठा।
चढ़ि अकास आसण नहीं छाड़ैं, पीवै महारस मीठा ॥
परगट कंथा माहै जोगी, दिल मैं दरपन जोवै।
सहस इकीस छ सै धागा, निहचल नाकै पोवै ॥
ब्रह्म अगनि मैं काया जारै, त्रिकुटी सगम जागै।
कहै कबीर सोई जोगेस्वर, सहज सुनि ल्यौ लागै ॥

अवधू गगन मंडल घर कीजै।
अमृत झरै सदा सुख उपजै, वक नालि रस पीवै ॥ टेक ॥
मूल बाधि सर गगन समाना, सुषमन यों तन लागी।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता, तहां जोगणी जागी ॥
मनवां जाइ दरीबै बैठा, मगन भया रसि लागा।
कहै कबीर जिय ससा नाही, सबद अनाहद बागा ॥

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ्या गगन रस पीवै, त्रिभवन भया उजियार ॥ टेक ॥
गुड़ करि ग्यान ध्यान करि महुवा, भव भाठी करि भारा।
सुषमन नारी सहजि समानीं, पीवै पीवन हारा ॥
दोउ पुड़ जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महारस भारी।
काम क्रोध दोइ किया बलीता, छूटि गई ससारी ॥
सुनि मडल मैं मदला बाजै, तहा मेरा मन नाचै।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमता काछै ॥

बोलौ भाई राम की दुहाई।
इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूँ न अघाई ॥ टेक ॥
इला प्यगुला भाठी कीन्ही, ब्रह्म अगिन पर जारी।
ससि हर सूर द्वार दस मूदे, लागी जोग जुग तारी ॥
मन मतिवाला पीवै राम रस, दूजा कछू न सुहाई।
उलटी गंग नीर बहि आया, अंमृत धार चुवाई ॥
पंच जने सो सग कर लीन्हें, चलत खुमारी लागी।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी ॥
सहज सुनि मैं जिन रस चाष्या, सतगुर थै सुधि पाई।
दास कबीर इहि रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई ॥

भाई रे चून बिलूटा खाई।
बाघनि सगि भई सबहिन कै, खसम न भेद लहाई ॥ टेक ॥
सब घर फोरि बिलूटा खायौ, कोई न जानै भेव।
खसम निपूतौ आगणि सूतौ, राड न देई लेव ॥
पाड़ोसनि पनि भई बिरानी, माहि हुई घर घालै।
पच सखी मिलि मंगल गावैं, यहु दुख याकौं सालै ॥
द्वै द्वै दीपक घरि घरि जोया, मदिर सदा अँधारा।
घर घेहर सब आप सवारथ, बाहरि किया पसारा ॥

होत उजाड़ सबै कोई जानै, सब काहू मन भावै।
कहै कबीर मिलै जे सतगुर, तौ यहु चून छुड़ावै॥

माया तजू तजी नही जाइ।
फिर फिर माया मोहि लपटाइ ॥टेक॥
माया आदर माया मान, माया नहीं तहा ब्रह्म गियान॥
माया रस माया कर जान, माया कारनि तजै परान॥
माया जप तप माया जोग, माया बाधे सबही लोग॥
माया जल थलि माया आकासि, माया व्यापि रही चहूँ पासि॥
माया माता माया पिता, अति माया अस्तरी सुता॥
माया मारि करै व्यौहार, कहै कबीर मेरे राम अधार॥

काहे रे मन दह दिसि धावै
विषिया संगि सतोष न पावै ॥टेक॥
जहां जहा कलपै तहा तहा बधना,
रतन कौ थाल कियौ तै रधना॥
जौ पै सुख पईयत इन माहीं,
तौ राज छाड़ि कत वन कौं जाहीं॥
आनद सहत तजौ विष नारी,
अब क्या झींषै पतित भिषारी॥
कहै कबीर यहु सुख दिन चारि,
तजि विषिया भजि चरन मुरारी॥

जियरा जाहि गौ मैं जाना
जो देख्या सो बहुरि न पेख्या माटी सू लपटाना॥ टेक॥
बाकुल बसतर किता पहरिबा, का तप बनखडि बासा।
कहा मुगधरे पाहन पूजे, काजल डारै गाता॥
कहै कबीर सुर मुनि उपदेसा, लोका पथि लगाई।
सुनौ सतौ सुमरौ भगत जन, हरि बिन जनम गवाई॥

साईं मेरे मन साजि दई एक बेखी,
हस्त लोक अरु मै तैं बोली॥ टेक॥
इक झझर सम सूत खटोला,
त्रिसनां बाव चहूँ दिसि डोला॥
पाच कहार का मरम न जाना,
एकै कह्या एक नहीं माना॥

भूभर घाम उहार न छावा,
नैहरि जाति वहुत दुख पावा ॥
कहै कबीर अर यह दुख सहिए,
राम प्रीति करि सगही रहिये ॥

झूठे तन कौ कहा खइए,
मरिये तौ पल भरि रहण न पइये ॥ टेक ॥
षीर षाड़ घृत प्यंड संवारा,
प्रान गये ले वाहरि जारा ॥
चोवा चंदन चरचत अंगा,
सो तन जरै काठ के संगा ॥
दास कबीर यहु कीन्ह विचारा,
इक दिन ह्वैहै हाल हमारा ॥

देखहु यहु तन जरता है,
घड़ी पहर विलवौ रे भाई जरता है ॥ टेक ॥
काहे कौ एता किया पसारा,
यहु तन जरि वरि ह्वैहै छारा ॥
नव तन द्वादस लागी आगी,
मुगध न चेतै नख सिख जागी ॥
काम क्रोध घट भरे विकारा,
आपहि आप जरै संसारा ॥
कहै कबीर हम मृतक समाना,
राम नाम छूटे अभिमाना ॥

तन राखनहारा को नाहीं,
तुम्ह सोचविचारि देखौ मन माही ॥ टेक ॥
जौर कुटंव अपनौ करि पारयौ,
मूंड ठोकि ले वाहरि जारयौ ॥
दगावाज लूटैं अरु रोवैं,
जारि गाड़ि पुर षोजहिं षोवैं ॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई,
हरि विन राखनहार न कोई ॥

राम थोरे दिन कौं का धन करना,
धंधा बहुत निहाइति मरना ॥ टेक ॥
कोटी धज साह हस्ती बंध राजा,
क्रिपन को धन कौनैं काजा ॥
धन कै गरब राम नहीं जाना,
नागा ह्वै जम पै गुदराना ॥
कहै कबीर चेतहु रे भाई,
हस गया कछु सग न जाई ॥

मेरी मेरी दुनिया करते, मोह मछर तन धरते ।
आगैं पीर मुकदम होते, वै भी गए यौं करते ॥ टेक ॥
किसकी ममा चचा पुनि किसका, किसका पगुड़ा जोई ।
यह ससार बजार मड्या है, जानैगा जन कोई ॥
मैं परदेसी काहि पुकारौं, इहाँ नहीं को मेरा ।
यहु ससार ढूंढि सब देखा, एक भरोसा तेरा ॥
खाहि हलाल हराम निवारैं, भिस्त तिनहु कौं होइ ।
पंच तत का मरम न जानै दोजगि पड़िहैं सोई ॥
कुटुंब कारणि पाप कमावै, तू जाणौ घर मेरा ।
ए सब मिले आप सवारथ, इहा नहीं को तेरा ॥
सायर उतरौ पथ सँवारौ, बुरा न किसी का करणा ।
कहै कबीर सुनहु रे सतौ, ज्वाब खसम कू भरणा ॥

रे या मैं क्या मेरा क्या तेरा,
लाज न मरहि कहत घर मेरा ॥ टेक ॥
चारि पहर निस भोरा, जैसै तरवर पंषि बसेरा ।
जैसे बनियें हाट पसारा, सब जग का सो सिरजनहारा ॥
ये ले जारे वै ले गाड़े, इनि दुखिइनि दोऊ घर छाड़े ।
कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम्ह बिनसि रहैगा सोई ॥

नर जाणैं अमर मेरी काया, घर घर बात दुपहरी छाया ॥ टेक ॥
मारग छाड़ि कुमारग जावै, आपण मरै और कूं रोवैं ।
कछू एक किया कछू एक करणा, मुगध न चेतै निहचै मरणा ॥
ज्यूँ जल बूंद तैसा ससारा, उपजत बिनसत लगै न बारा ।
पंच पषुरिया एक ससीरा, कृष्ण कवल दल भवर कबीरा ॥

मन रे अहरषि वाद न कीजै, अपना सुकृत भरिभरि लीजै ॥ टेक ॥
कुँभरा एक कमाई माटी, बहु विधि जुगति बणाई।
एकनि मैं मुकताहलि मोती, एकन व्याधि लगाई ॥
एकनि दीना पाट पटंबर, एकनि सेज निवारा।
एकनि दीनी गरै गूदरी, एकनि सेज पयारा ॥
साची रही सूँम की संपति, मुगध कहै यहु मेरी।
अंत काल जब आइ पहूंता, छिन मैं कीन्ह न बेरी ॥
कहत कबीर सुनौ रे संतौ, मेरी मेरी सब झूठी।
चड़ा चीथड़ा चूहड़ा ले गया, तणीं तणगती टूटी ॥

हड़ हड़ हड़ हड़ हंसती है, दीवानपना क्या करती है ॥
आडी तिरछी फिरतो है, क्या च्यौं च्यौं म्यौं म्यौ करती है ॥ टेक ॥
क्या तू रंगी क्या तू चंगी, क्या सुख लोड़ै कीन्हा।
मीर मुकदम सेर दिवानी, जंगल केर षजीना ॥
भूले भरमि कहा तुम्ह राते, क्या मदुमाते माया।
राम रंगि सदा मतिवाले, काया होइ निकाया ॥
कहत कबीर सुहाग सुंदरी, हरि भजि है निस्तारा।
सारा खलक खराब किया है, मानस कहा विचारा ॥

हरि जननी मैं बालिक तेरा,
काहे न औगुण बकसहु मेरा ॥ टेक ॥
सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहैं न तेते ॥
कर गहि केस करै जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता।
कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥

मैं गुलाम मोहिं बेचि गुसाईं,
तन मन धन मेरा रामजी कै ताईं ॥ टेक ॥
आनि कबीरा हाटि उतारा।
सोई गाहक सोई बेचनहारा ॥
बेचै राम तो राखै कौन।
राखै राम तों बेचै कौन ॥
कहै कबीर मैं तन मन जारया।
साहिब अपना छिन न बिसारया ॥

हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव।
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ॥ टेक ॥
हरि मेरा पीव मै. हरि की बहुरिया।
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया ॥
किया सृगार मिलन कै ताईं।
काहे न मिलौ राजा राम गुसाईं ॥
अब की बेर मिलन जो पाऊं।
कहै कबीर भौजलि नहिं आऊं ॥

राम बिन तन की ताप न जाई।
जल मै अगनि उठी अधिकाई ॥ टेक ॥
तुम्ह जलनिधि मैं जल कर मीना।
जल मैं रहौ जलहि बिन षींना ॥
तुम्ह पिंजरा मैं सुवना तोरा।
दरसन देहु भाग बड़ मोरा ॥
तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला।
कहैं कबीर रांम रंमू अकेला ॥

मन रे हरि भजि हरि भजि हरि भजि भाई।
जा दिन तेरो कोई नाही ता दिन राम सहाई ॥टेक॥
तंत न जानू मत न जानूं जानूं, सुन्दर काया।
मीर मलिक छत्रपति राजा, ते भी खाये माया ॥
वेद न जानू भेद न जानू, जानू एकहि रामा।
पडित दिसि पछिवारा कीन्हा, मुख कीन्हौं जित नामा ॥
राजा अंबरीक कै कारणि, चक्र सुदरसन जारै।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसौ, भगत की सरन ऊबारै ॥

डगमग छाड़ि दे मन बौरा।
अब तौ जरें बरें बनि आवै, लीन्हों हाथ सिंधौरा ॥टेक॥
होइ निसक मगन है नाचौ, लोभ मोह भ्रम छाड़ौ।
सूरौ कहा मरन थैं डरपै, सती न सचैं भाड़ौ ॥
लोक वेद कुल की मरजादा, इहै गलै मै पासी।
आधा चलि करि पीछा फिरिहै, ह्वैहै जग मैं हासी ॥
यहु ससार सकल है मैला, राम कहैं ते सूचा।
कहै कबीर नाव नही छाड़ौ, गिरत परत चढ़ि ऊचा ॥

का सिधि साधि करौं कुछ नाहीं,
राम रसाइन मेरी रसना माहीं ॥ टेक ॥
नहीं कुछ ग्यान ध्यान सिधि जोग, ताथैं उपजै नाना रोग ।
का बन मै बसि भये उदास, जे मन नहीं छाड़ै आसा पास ॥
सब कृत काच हरी हित सार, कहै कबीर तजि जग ब्यौहार ।

चलौ बिचारी रहौ सँभारी, कहता हूँ ज पुकारी ।
राम नाम अंतर गति नाहीं तौ जनम जुवा ज्यूं हारी ॥ टेक ॥
मूंड़ मुड़ाइ फूलि का बैठे, काननि पहरि मंजूसा ।
बाहरि देह षेह लपटानी, भीतरि तौ घर मूसा ॥
गालिब नगरी गाव बसाया, हाम काम अहंकारी ।
घालि रसरिया जब जम खैंचै, तब का पति रहै तुम्हारी ॥
छाड़ि कपूर गाठि विष बाध्यौ, मूल हुवा न लाहा ।
मेरे राम की अभय पद नगरी, कहै कबीर जुलाहा ॥

ते हरि के आवैहि किहि कामा ।
जे नहीं चीन्हैं आतमरामा ॥ टेक ॥
थोरी भगति बहुत अहंकारी ।
ऐसे भगता मिलै अपारा ॥
भाव न चीन्हैं हरि गोपाला ।
जानि न अरहट कै गलि माला ॥
कहै कबीर जिनि गया अभिमाना ।
सो भगता भगवत समाना ॥

कहा भयौ रचि स्वाग बनायौ ।
अंतरिजामी निकटि न आयौ ॥ टेक ॥
बिषई बिषै ढिठावै गावै ।
राम नाम मनि कबहूँ न भावै ॥
पापी परलै जाहि अभागे ।
अमृत छाड़ि बिषै रसि लागे ॥
कहै कबीर हरि भगति न साधै ।
भग मुषि लागि मूये अपराधी ॥

सब दुनीं सयानीं मैं बौरा ।
हम बिगरे बिगरौ जिनि औरा ॥ टेक ॥
मैं नाहीं बौरा रांम कियौ बौरा ।
सतगुर जारि गयौ भ्रम मोरा ॥

विद्या न पढ़ूं वाद नहीं जानूं।
हरि गुन कथत सुनत बौरानू ॥
काम क्रोध दोऊ भये विकारा।
आपहिं आप जरै संसारा ॥
मीठी कहा जाहि जो भावै।
दास कबीर राम गुन गावै ॥

अब मैं राम सकल सिधि पाई।
आन कहूँ तौ रांम दुहाई ॥ टेक ॥
इहि चिति चाषि सबै रस दीठा।
रांम नाम सा और न मीठा ॥
औरै रसि ह्वै है कफ गाता।
हरि रस अधिक अधिक सुखदाता ॥
दूजा वणिज नहीं कछू वाषर।
राम नाम दोऊ तत आषर ॥
कहै कबीर जे हरि रस भोगी।
ताकू मिल्या निरंजन जोगी ॥

रे मन जाहि जहा तोहि भावै।
अब न कोई तेरै अंकुस लावै ॥ टेक ॥
जहा जहा जाइ तहा तहा रामां।
हरि पद चीन्हि कियौ विश्रामा ॥
तन रंजित तब देखियत दोई।
प्रगट्यौ ग्यांन जहा तहा सोई ॥
लीन निरंतर वपु विसराया।
कहै कबीर सुख सागर पाया ॥

बहुरि हम काहे कू आवहिंगे।
बिछुरे पंचतत की रचना, तब हम रांमहिं पावहिंगे ॥ टेक ॥
पृथी का गुण पाणीं सोष्या, पानी तेज मिलावहिंगे।
तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि, सहज समाधि लगावहिंगे ॥
जैसे बहु कंचन के भूषन, ये कहि गालि तवावहिंगे।
ऐसै हम लोक वेद के बिछुरे, सुनिहिं माहि समावहिंगे ॥
जैसे जलहि तरग तरंगनीं एसै हम दिखलावहिंगे।
कहै कबीर स्वामी सुखसागर, हंसहि हंस मिलावहिंगे ॥

अवधू काम धेन गहि बाधी रे।
भाडा भजन करे सबहिन का कछू न सूझै आधी रे ॥ टेक ॥
जौ ब्यावै तौ दूध न देई, ग्याभण अमृत सरवै।
कौली घाल्या बीडरि चालै, ज्यूं घेरौं त्यू दरवै ॥
तिहिं धेन थैं इछ्या पूगी, पाकडि खूटै बाधी रे।
ग्वाड़ा माहैं आनंद उपनौं, खूटै दोऊ वाधी रे ॥
साई माइ सासु पुनि साई, साई याकी नारी।
कहै कबीर परम पद पाया, संतौ लेहु बिचारी ॥

ऐसा ग्यान बिचारि लै लै लाइ लै घ्याना।
सुनि मडल मैं घर किया, जैसे रहै सिचाना ॥टेक॥
उलट पवन कहां राखिये, कोई भरम बिचारै।
साधै तीर पताल कूं, फिरि गगनहि मारै ॥
कंसा नाद बजाव ले, धुनि निमसि ले कसा।
कंसा फूटा पडिता, धुंनि कहा निवासा ॥
प्यंड परे जीव कहा रहै, कोई मरम लखावै।
जीवत जिस घरि जाइये, उधै मुषि नहीं आवै ॥
सतगुर मिलै त पाईये, ऐसी अकथ कहाणी।
कहै कबीर संसा गया, मिले सारंग पाणी ॥
अकथ कहाणी प्रेम की कछू कही न जाई।
गूगे केरी सरकरा बैठे मुसकाई ॥ टेक ॥
भीमि बिना अरु बीज बिन तरवर एक भाइ।
अनत फल प्रकासिया गुर दिया बताई ॥
मन थिर बैसि बिचारिया रामहि ल्यौ लाई।
झूठी अन मै बिस्तरी सब थोथी बाई ॥
कहै कबीर सकति कछुनाहीं गुर भया सहाई।
आवण जाणी मिटि गई, मन मनहि समाई ॥

जाइ पूछौ गोविंद पढिया पडिता, तेरा कौन गुरू कौन चेला।
अपणें रुप कौं आपहि जाणौं, आपै रहैं अकेला ॥ टेक ॥
बाझ का पूत बाप बिना जाया, बिन पाऊं तरवरि चढ़िया।
अस बिन पाषर गज बिन गुड़िया, बिन षडै सगाम जुडिया ॥
बीज बिन अंकूर पेड़ बिन तरवर, बिन साषा तरवर फलिया।
रुप बिन नारी पुहप बिन परमल, बिन नीरै सरवर भरिया ॥

देव बिन देहुरा पत्र बिन पूजा, बिन पाषा भवर बिलबिया ।
सूरा होइ सो परम पद पावै, कीट पतग होइ सब जरिया ॥
दीपक बिन जोति जोति बिन दीपक, हद बिन अनाहद सबद वागा ।
चेतना होइ सु चेति लीज्यौ, कबीर हरि के अगि लागा ॥

ऐसा अदभुत् मेरे गुरि कथ्या मै रह्या उभेषै ।
मूसा हस्ती सौ लडै कोई बिरला पेषै ॥ टेक ॥
मूसा पैठा बाबि मै, लारै सापणि धाई ।
उलटि मूसै सापणि गिली, यहु अचिरज भाई ॥
चीटी परबत ऊषण्या ले राख्यौ चौडै ।
मुर्गा मिनकी सू लडै, झल पाड़ी दौड़ै ॥
सुरहीं चूषै बछतलि, बछा दूध उतारै ।
ऐसा नवल गुणी भया, सारदूलहि मारै ॥
भील लुक्या बन बीझ मै, ससा सर मारै ।
कहै कबीर ताहि गुर करौं, जो या पदहि बिचारै ॥

अवधू जागत नींद न कीजै ।
काल न खाइ कलप नही ब्यापै, देही जुरा न छीजै ॥टेंक ॥
उलटी गगा समुद्रहिं सोखै, ससिहर सूर गरासै ।
नव ग्रिह मारि रोगिया बैठे, जल मैं ब्यब प्रकास ॥
डाल गह्या थैं मूल न सूझै, मूल गह्या फल पावा ।
बबई उलटि शरप कौ लागी, धरणि महा रस खावा ॥
बैठि गुफा मैं सब जग देख्या, बाहरि कछू न सूझै ।
उलटै धनकि पारधी मारयो, यहु अचरज कोइ बूझै ॥
औधा घड़ा न जल मै डूबै, सूधा सूभर भरिया ।
जाकौं यहु जग घिणा करि चालै, ता प्रसाद निस्तरिया ॥
अबर बरसै धरती भीजै, यहु जाणै सब कोई ।
धरती बरसै अबर भीजै, बूझै बिरला कोई ॥
गावणहारा कदे न गावै अणबोल्या नित गावै ।
नटवर पेषि पेषना पेषै अनहद बेन बजावै ॥
कहणी रहणीं निज तत जाणैं, यहु सब अकथ कहाणीं ।
धरती उलटि अकासहि ग्रासै, यहु पुरिसा की बाणीं ॥
बाझ पियालै अमृत सोख्या, नदी नीर भरि राख्या ।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाख्या ॥

राम गुन बेलड़ी रे, अवधू गोरखनाथ जाणी।
नाति सरूप न छाया जाकै, बिरध करै बिन पाणी ॥ टेक ॥
बेलड़िया द्वै अणी पहूती गगन पहूंती सैली।
सहज वेलि जब फूलणि लागी, डाली कूपल मेल्ही ॥
मन कुंजर जाइ बाड़ी बिलंम्या, सतगुर बाही बेली।
पंच सखी मिलि पवन पयप्या बाड़ी पाणी मेल्ही ॥
काटत बेली कूपले मेल्ही सींचताड़ी कुमिलाणीं।
कहै कबीर ते बिरला जोगी सहज निरतर जाणीं ॥

राम राइ अबिगत बिगति न जानं।
कहि किम तोहि रूप बषानं ॥ टेक ॥
प्रथमे गगन कि पुहमि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पवन कि पाणी।
प्रथमे चद कि सूर प्रथमे, प्रभू प्रथमे कौन बिनाणीं ॥
प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे, प्रभू प्रथमे रकत कि रेत।
प्रथमे पुरिष कि नारि प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज कि खेतं ॥
प्रथमे दिवस कि रैंणि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप किं पुन्य।
कहै कबीर जहाँ बसहु निरंजन, तहाँ कुछ आहि कि सुन्यं ॥

अवधू सों जोंगी गुर मेरा, जों या पद का करै नवेरा ॥ टेक ॥
तरवर एक पेड़ बिन ठाढा, बिन फूलां फल लागा।
साखा पत्र कछु नहीं वाकै, अष्ट गगन मुख बागा ॥
पैर बिन निरति करा बिन बाजै, जिभ्या हीणा गावै।
गावणहारे कै रूप न रेखा, सतगुर होइ लखावै ॥
पषी का खोज मींन का मारग, कहै कबीर बिचारी।
अपंरपार पार परसोतम, वा मूरति की बलिहारी ॥

अब मै जांणिबौ रे केवल राइ की कहाणीं।
मंझा जोती राम प्रकासै, गुर गमि बाणीं ॥ टेक ॥
तरवर एक अनत मूरति, सुरता लेहु पिछांणीं।
साखा पेड़ फूल फल नांही, ताकी अमृत बाणीं ॥
पुहप बास भवरा एक राता, बारा ले डर धरिया।
सोलह मझै पवन झकोरै, आकासे फल फलिया ॥
सहज समाधि बिरष यहु सींच्या, धरती जल हर सोंष्या।
कहै कबीर तास मैं चेला, जिनि यहु तरबर पेष्या ॥

रे मन बैठि किते जिनि जासी,
हिरदै सरोवर है अबिनासी ॥ टेक ॥
काथा मधे कोटि तीरथ, काथा मधे कासी।
काथा मधे कवलापति, काया मधे बैकुंठवासी ॥
उलटि पवन षटचक्र निवासी, तीरथराज गंग तट बासी।
गगन मंडल रवि ससि दोइ तारा, उलटी कूची लागि किवारा ॥
कहै कबीर भई उजियारा, पंच मारि एक रह्यौ निनारा।

चितावनी

होली

आई गवनवाँ की सारी, उमिरि अबहीं मोरी बारी ॥ टेक ॥
साज समाज पिया लै आये, और कहरिया चारी।
बम्हना बेदरदी अचरा पकरि कै, जोरत गठिया हमारी।
सखी सब पारत गारी
बिधि गति बाम कछु समझ परत ना, बैरी भई महतारी।
रोय रोय अँखियाँ मोर पोंछत, घरवाँ से देत निकारी।
भई सब को हम भारी
गवन कराय पिया लै चाले, इत उत बाट निहारी।
छूटत गाँव नगर से नाता, छूटै महल अटारी।

करम गति टारे नाहीं टरै।
नदिया किनारे बलम मोर रसिया, दीन्ह घुघट पट टारी।
थरथराय तन काँपन लागे, काहू न देख हमारी।
पिया लै आये गोहारी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद लेहु बिचारी।
अब के गौना बहुरि नहिं औना, करिले भेंट अंकवारी।
एक बेर मिलि ले प्यारी।

यही घड़ी यह बेला साधो (टेक,
लाख खरच फिर हाथ न आवै, मानुष जनम सुहेला।
ना कोई सगी ना कोई साथी, जाता हंस अकेला ॥
क्यों सोया उठि जागु सबेरे, काल मरेंदा सेला।
कहत कबीर गुरू गुन गावो, झूठा है सब मेला ॥

करम गति टारे नाहिं टरी।
मुनि बसिस्ट से पंडित ज्ञानी, सोधि के लगन धरी।
सीता हरन मरन दसरथ को, बन में बिपति परी ॥

कहँ वह फद कहाँ वह पारधि, कह वह मिरग चरी।
सीता को हरि लेग्यो रावन, सोने की लक जरी॥
नीच हाथ हरिचद बिकाने, बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग, गिरगिट जोनि परी॥
पाँडव जिनके आपु सारथी, तिन पर विपति परी।
दुर्जोधन को गर्ब घटायो, जदु कुल नास करी॥
राहु केतु औ भानु चद्रमा, बिधि से जाग परी।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, होनी हो के रही॥

बीती बहुत रही थोरी सी॥ टेक॥
खाट पड़े नर झीखन लागे, निकसि प्रान गयो चोरी सी।
भाई बद कुटुब अब आये, फूक दियो मानों होरी सी॥
कहै कबीर सुनो भई साधो, सिर पर देत हैं भौरी सी

गुरुदेव

चल सतगुरु की हाट, ज्ञान बुधि लाइये।
कीजे साहिब से हेत, परम पद पाइये॥
सतगुरु सब कुछ दीन्ह, देत कछु ना रह्यो।
हमहिं अभागिनि नारि, सुख तजि दुख लह्यो॥
गई पिया के महल, पिया सँग ना रची।
हृदे कपट रह्यो छाय, मान लज्जा भरी॥
जहवाँ गैल सिलहली, चढ़ौ गिरि गिरि पड़ौं।
उठौ सम्हारि सम्हारि, चरन आगे धरौ॥
जो पिय मिलन की चाह, कौन तेरे लाज हो।
अधर मिलो न जायँ, भला दिन आज हो॥
भला बना सजोग, प्रेम का चोलना।
तन मन अरपौ सीस, साहिब हँस. बोलना॥
जो गुरु रूठे होय, तो तुरत मनाइये।
हुइये दीन अधीन, चूक बकसाइये॥
जो गुरु होंय दयाल, दया दिल हेरि हैं।
कोटि करम कटि जायँ, पलक छिन फेरि हैं॥
कहै कबीर समुभाय, समुझ हिरदे धरो।
जुगन जुगन करो राज, ऐसी दुर्मति परिहरो॥

बिरह

१)

बालम आओ हमारे गेह रे, तुम बिन दुखिया देह रे। टेक।
सब कोइ कहै तुम्हारी नारी, मो को यह सन्देह रे।
एक मेक ह्वै सेज न सोवै, तब लगि कैसो सनेह रे॥
अन्न न भावै नींद न आवै गृह बन धरै न धीर रे।
ज्यों कामी को कामिनि प्यारी, ज्यों प्यासे को नीर रे॥
है कोई ऐसा परउपकारी, पिय से कहै सुनाय रे।
अब तो बेहाल कबीर भयो है, बिन देखे जिव जाय रे॥

होली

ये अँखियाँ अलसानी हो, पिय सेज चलो। टेक।
खंभ पकरि पतंग अस डोलै, बोलै मधुरी बानी।
फुलन सेज बिछाय जो राख्यो, पिया बिना कुम्हिलानी॥
धीरे पाँव धरौ पलँगा पर, जागत ननद जिठानी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, लोक लाज बिलछानी॥

प्रीति लगी तुम नाम की, पल बिसरै नाहीं।
नजर करो अब मिहर की, मोंहि मिलौ गुसाईं॥
बिरह सतावै मोहि को, जिव तड़पै मेरा।
तुम देखन की चाव है, प्रभु मिला सवेरा॥
नैना तरसै दरस को, पल पलक ना लगै।
दर्दवंद दीदार का, निसि बासर जागै॥
जो अब कें प्रीतम मिलैं, करु निमिख न न्यारा।
अब कबीर गुरु पाइया, मिला प्रान पियारा॥

प्रेम

मन लागो मेरो यार फकीरी में॥ टेक॥
जो सुख पावो नाम भजन में, सो सुख नाहि अमीरीमें।
भला बुरा सब को सुनि लीजै, कर गुजरान गरीबी में॥
प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनि आई सबूरी में।
हाथ में कूड़ी बगल में सोंटा, चारो दिसि जागीरी में॥
आखिर यह तन खाक मिलौगा, कहा फिरत मगरूरी में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहिब मिलै सबूरी में॥

घूंघट का पट खोल रे, तो कं पीव मिलैंगे ॥ टेक ॥
घट घट में वहि साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे (तोको)
धन जोबन का गर्ब न कीजै, झूठा पचरँग चोल रे (तोको)
सुन्न महल में दियना बारि ले, आसा से मत डोल रे (तोको)
जोग जुगत से रग महल में, पिय पाये अनमोल रे (तोको)
कह कबीर आनंद भयो है, बजत अनहद ढोल रे (तोको)

हमन है इस्क मस्ताना, हमन को होसियारी क्या।
रहैं आजाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या॥
जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर बदर फिरते।
हमारा यार है हम में, हमन को इतजारी क्या॥
खलक सब नाम अपने को, बहुत कर सिर पटकता है।
हमन गुरु नाम साचा है, हमन दुनिया से यारी क्या॥
न पल बिछुड़े पिया हमसे, न हम बिछुड़ैं पियारे से।
उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेकरारी क्या॥
कबीरा इस्क का माता, दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या॥

नानक

गुरु नानक का जन्म लाहौर जिले के तलवंडी नामक गाँव मे हुआ था। इनकी जन्म तिथि बैशाख सुदी तृतीया स०१५२६ मानी गई है। बड़े प्रातःकाल सूर्योदय से कुछ पहले शुभ ब्राह्म मुहूर्त मे ही इनका जन्म हुआ था, किंतु सुविधा के लिये इनके अनुयायी सिख लोग इनका जन्मोत्सव कार्तिक पूर्णमासी को ही मानते हैं। इनके पिता का नाम कालू था और यह अपने यहाँ के सूबेदार बुलार पठान के यहाँ कारिंदे का काम करते थे। यह लोग जाति के वेदी खत्री थे। इनकी माता का नाम तृप्ता था।

शैशव काल से ही नानक की प्रवृत्ति पुण्य कार्यों और साधु सेवा की ओर थी। विचारशीलता और भावुकता का परिचय भी यह बाल्यकाल से ही देने लगे थे। इनका विद्यारंभ सात वर्ष की अवस्था में हुआ था। पहले इनको उर्दू और फ़ारसी को ही शिक्षा मिली थी। १९ वर्ष की अवस्था में (सं० १५४५) मे इनका विवाह गुरदासपुर की सुलक्षणी नाम की कन्या से हो गया और इससे इनके श्रीचंद और लक्ष्मी चंद नाम के दो पुत्र भी हुए। विवाह के बाद इन की शिक्षा भी एक प्रकार से समाप्त हो गई और इनके पिता को इन्हे किसी काम काज मे लगा देने की चिंता हुई। पर इनकी चित्त-वृत्ति आरंभ से ही ऐहलौकिक कार्यों से उदासीन थी। जीविकोपार्जन संबंधी किसी काम मे इन्होंने कभी दिलचस्पी नही ली। आत्मीयो के अधिक दबाव डालने पर इन्होंने कुछ दिन के लिये उस प्रदेश के तत्कालीन शासक दौलत खाँ के यहाँ मालखाने की अफसरी स्वीकार कर ली थी। उस समय की दृष्टि से यह काफी महत्त्वपूर्ण पद था पर वास्तव मे एक दिन भी इस काम में इनका जी न लगा और अंत मे विरक्त हो कर इन्होंने इस काम को छोड़ ही दिया और फिर कुटुम्बियो तथा आत्मीय स्वजनों के बहुत कुछ समझाने बुझाने पर भी इन्होंने किसी सांसारिक व्यवसाय मे हाथ नहीं डाला। आध्यात्मिक विषयो की ओर इनकी नैसर्गिक प्रवृत्ति तो थी ही, क्रमशः वह उत्तरोत्तर विकसित ही होती गई यहाँ तक कि वह संसार के महान् धर्मयाजकों मे इनका एक स्थान बना कर के ही शांत हुई। सिख संप्रदाय के प्रवर्त्तक होने का श्रेय इन्ही को प्राप्त है।

इनके उर्वर मस्तिष्क तथा धर्मबुद्धि के विकास में इनकी सुदूरव्यापिनी तथा बहुसंख्यक यात्राएँ बहुत कुछ सहायक हुईं। इनका प्रारंभ यों हुआ। सुयोग या दैवयोग से इनको एक अपनी ही सी मनोवृत्ति वाला अनुचर भी मिल गया था। इसका नाम मर्दन था। भृत्य और स्वामी दोनों ही ईशगुणगान और संगीत मे बड़ी अभिरुचि रखते थे। भजनानंदी वीतराग साधुओ की गोष्ठी में बैठ हरिभजन मे

कालयापन की अपेक्षा इन्हें कोई काम न भाता था। अंत में जीविका संबधी कार्य तथा पारिवारिक संसर्ग से आध्यात्मिक अनुसंधान में विशेष विघ्न पड़ता देख नानक जी विवाह के ठीक ग्यारह वर्ष उपरांत (स० १५५६) ज्ञान के अन्वेषण के लिये चल पड़े। इस यात्रा में इन्होंने आगरे से लेकर बिहार, बंगाल आदि देशो में घूमते हुए वर्मा तक के सब पूर्वी प्रदेशों के सैर की। कहा जाता है इस यात्रा में इन्हे ११ वर्ष लगे। इसी यात्रा मे उनका कबीर से साक्षात्कार हुआ होगा। कबीर की अवस्था उस समय सौ वर्ष से ऊपर रही होगी। इनकी दूसरी यात्रा का आरंभ स० १५६७ से होता है। इस बार वह दक्षिण की ओर गए और लंका तक के साधुओं का सत्संग किया। इनकी तीसरी और अंतिम यात्रा सब से बड़ी हुई। इसमे ये पश्चिमोत्तर प्रदेशों मे भ्रमण कराते हुए बलख़, बुखारा, बग़दाद, रूम और मक्के मदीने तक पहुँचे। इनकी क़ाबा यात्रा के संबंध मे एक रोचक घटना प्रसिद्ध है। काबा के उपासनागृह मे यह काबा की मूर्ति की ओर ही पैर करके सोए हुए थे। पास मे कुछ मुसलमान भी पड़े हुए थे। उनमे से एक ने इन्हे पैर से ठुकराते हुए डपट कर पूँछा कि 'तू क़ाबे शरीफ की ओर पैर करके क्यो पड़ा हुआ है।' इस पर इन्होंने हँस कर कहा 'जिधर खुदा न हो उधर मेरा पैर फेर दे' इस पर उसने घसीट कर इनका पॉव दूसरी ओर कर दिया। इसी समय एक विचित्र घटना हुई। सारा मदिर घूम गया और काबे की मूर्ति फिर इनके पैरों के सामने दिखाई पड़ने लगी। सब लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही। बारी बारी उन लोगो ने सब दिशाओ की ओर इन का पॉव घुमाया, पर इनके पाँव के साथ साथ क़ाबा भी घूमतो गया। इस पर लोगों ने इन्हे कोई दैवी शक्ति सम्पन्न महापुरुष समझा और इनका बड़ा आदर सम्मान किया। अस्तु

इसी यात्रा में इन्होने नैपाल, भूटान, कश्मीर आदि प्रदेशों की प्रदक्षिणा भी की थी। इनकी यह अंतिम यात्रा स० १५७९ में समाप्त हुई। इस के बाद वह कर्त्तारपुर मे आकर रहने और धर्मोपदेश करने लगे। और वहीं सं० १५९५ मे इनका स्वर्गवास हुआ। उस समय इन की अवस्था ७० वर्ष के लगभग थी। कबीर को मरे इस समय २० वर्ष हो चुके थे।

इनके आध्यात्मिक तथा सामाजिक विचार कबीर से बहुत मिलते जुलते हैं। अंतर यदि किसी बात में है तो केवल इतना ही कि नानक के समय से एकेश्वरवाद, तथा निराकारोपासना संबंधी सिद्धांत व्यावहारिक दृष्टि से शिथिल हो चला। कबीर के अनुयायियों में ही मूर्तिपूजा और कर्मकांड के ढकोसलों का प्रवेश शनैः शनैः घुसने लगा।

नानक के पदों का सग्रह सिखों के छठवें गुरु अर्जुन ने सं० १६६१ में तैयार कराया। यही 'आदिग्रंथ' अथवा 'ग्रंथ साहब' के नाम से प्रसिद्ध है। सिख लोग इसी ग्रथ को ही ईश्वर मान कर बड़े समारोह से पूजते हैं।

नानक जी का सब से सुन्दर भजन 'जपजी' है जो कि प्रस्तुत संग्रह में दिया गया है। इनके अन्य प्राप्त ग्रंथ 'सुखमनी', 'अष्टांग जोग', और नानक जी की 'साखी' है। 'प्राण संगली' नाम से स्थानीय बेलवेडियर प्रेस ने इनकी रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित किया है जिससे प्रस्तुत संग्रह मे पर्याप्त सहायता मिली है।

नानक की कविता के सबंध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। यह तो स्पष्ट ही है कि इनकी शिक्षा बहुत साधारण थी, और जो कुछ थी वह भी फारसी और पंजाबी (गुरुमुखी) की। ऐसी अवस्था में इनसे प्रथम श्रेणी की हिंदी कविता की आशा करना व्यर्थ है। केवल काव्यकला की दृष्टि स संत कवि शायद हिंदी साहित्य के अन्य सभी शाखाओं के कवियों से पिछड़े हुए हैं। यहां पर यह स्मरण रहे कि रामशाखा, कृष्णशाखा, तथा जायसी आदि प्रेमगाथाओं के कवियों को मैंने कबीर आदि संत कवियो से अलग रक्खा है। यों तो ये सभी एक प्रकार से भक्त या सत कवि कहे जा सकते हैं। अस्तु, नानक दादू, भीखा, आदि की कविता केवल कला की दृष्टि से उच्च कोटि की नहीं हुई अवश्य, पर कोई भो हिंदी काव्य का विशद संग्रह इनकी कविता के विना केवल इसलिये अपूर्ण समझा जायगा, कि जैसो भी हो इनकी कविता की विशेषता है इनका स्वाभाविक और सहज संदर रूप से ईश्वर और समाज संबंधी एक नवीन सदेश। यह बात और किसी स्कूल मे नहीं पाई जाती। नानक जी की कविता में भी, पंजाबी और फ़ारसीपने का आधिक्य होते हुए भी यह विशेषता वर्तमान है। एक बात जो इनके पदों में सबसे निराली है, वह है संगीत का प्राचुर्य। यह पहुँचे हुए सगीतज्ञ थे, और ऐसी अवस्था में इनकी पंक्तियों में संगीत की मात्रा का अधिकार स्वाभाविक ही है।

गुरु नानक

नाम

साचा नामु अराधिया, जम लै भन्ना जाहि।
नानक करनी सार है, गुरमुख घड़िया राहि॥
क्या लीता धनवंतिया, क्या छोड़्या निर्धनियाँ।
नानक सच्चे नाम बिनु, अग्गे दोवे सक्खणियाँ॥
इक सूही दूजी सोहणी, तीजी सो भावती नारि।
सुइने रुप्पे पच्चरी, नानक बिनु नावैं कुड़यार॥
अट्ठे पहर मचदड़ा, कच्चै कूड़े कम।
नाम अराधन ना मिले, नानक हीन करम॥
सहस स्याणप नाम बिनु, करि देखै सभि बाद।
सोई स्याणप नानका, हिरदे जिनके याद॥
भूषण पहिरे भोजन खाये फूल बहे नर अधु।
नानक नामु न चेतनी, लागि रहे दुर्गंधु॥

शूर

सूरा एह न आखियन, जो लड़नि दलाँ में जाय।
सूरे सोई नानका, जो मनगु हुकम रजाय॥
हिरदे जिनके हरि बसै, सो जन कहियहि सूर।
कही न जाई नानका, पूरि रह्या भरपूर॥

अहंकार

कूड़े करहिं तकब्बरी, हिन्दू मूसलमान।
लहन सजाई नानका, बिनु नावैं सुलतानु॥
मन को दुबिधा ना मिटै, मुक्ति कहा ते होय।
कउड़ी बदले नानका, जन्म चल्या नर खोइ॥

चितावनी

कलियां थी धउले भये, धउलियों भये सुपैदु।
नानक मता मतों दिया, उज्जरि गइया खेडु॥
जागो रे जिन जागना, अब जागनि की बारि।
फेरि कि जागो नानका, जब सोवउ पाँउ पसारि॥
जित मुह मिलनि मुबारखाँ, लक्खाँ मिलै असीस।
ते मुँह फेर तपाइ यहि, तन मन सहे कसीस॥

इक दज्झहि इक साड़ियहि, इक दिचनि ढंड लुड़ाइ।
गई मुमारख नानका, है है पहुती आय॥
मित्रॉं दोस्तॉं माल धन, छड्डि चले अति भाइ।
संगि न कोई नानका, उह हंस इकेला जाइ॥

भक्ति

मैं धरि तेरी साहिबा, और नहीं परवाहि।
जगत पधाणूं पघ सिर, गिणवें लेंदा साहि॥
जेही पिरीति लगदिया, तोड़ निबाहू होइ।
नानक दरगह जॉदियॉं, ठक न सक्कै कोइ॥
सै सै वारी कट्टियै, जे सीस कीचै कुरबान।
नानक कीमति ना पवै, परिया दूर मकान॥

उपदेश

जित वेले अमृत वसे, जीयॉं होवे दाति।
तित वेले तू उठि बहु, त्रिह पहरे पिछली राति॥
खत्री ब्राह्मण शूद्र वैस, जातीं पूछि न देई दाति।
नानक भागे पाइयै, त्रिह पहिरे पिछली राति॥
सवद न जानउ गुरू का, पार परउ कित बाट।
ते नर डूबे नानका, जिनका वड़ वड़ ठाट॥
घर अंबर विच वेलड़ी, तॅह लाल सुगंधा बूल।
अक्खर इक नॉं आयो, नानक नहीं कबूल॥

मिश्रित

रॅडियॉं एह न आखियन, जिनके चलन भतार।
रॅडियॉं सेई नानका, जिन विसरिया करतार॥
देखि अजाड़ॉं जट्टियॉं, पसंगु मुहुरणु किराड़।
तत्ते तावड़ ताइयहि, मुहि मिलनीयॉं अँगियार॥
देखि कै सूड़ी झोंपड़ी, चोरी करदे चोर।
वसि पये धर्मराय दै, कड्ढि लये सभ खोर॥
वरतु नेमु तीरथु भ्रमें, बहुतेरा बोलणि कूड़।
अतरि तीरथु नानका, सोधन नाहीं मूड़॥
लै फ़ुरमान दिवान दा, खसि प्यादे खाहिं।
बाहीं वद्धे मारियहि, मारें दे कुरलाहिं॥
पॉंधे मिस्सर अंधुले, काजी मुल्ला कोर।
(नानक) तिनों पास न भिटोयै, जो सबदे दे चोर॥

पद

साधो रचना राम बनाई ।
इक बिनसै इक इस्थि मानै, अचरज लख्यौ न जाई ।
काम क्रोध मोह बस प्रानी, हरि मूरति बिसराई ॥
झूठा तन साचा करि मान्यो, ज्यों सुपना रैनाई ।
जो दीसै सो सकल बिनासै, ज्यों बादर की छाँई ॥
जन नानक जग जानौ मिथ्या, रहौ राम सरनाई ।

यह मन नेक न कह्यो करै ।
सीख सिखाय रह्यो अपनी सी, दुरमति तें न टरै ।
मद माया बस भयो बावरो, हरिजस नहिं उचरै ॥
करि परपच जगत के डहकै, अपनो उदर भरै ।
स्वान पूँछ ज्यों होय न सूधो, कह्यौ न कान धरै ॥
कहु नानक भजु राम नाम नित, जा तें काज सरै ।

मन की मनहीं माँहि रही ।
ना हरि भजे न तीरथ सेवे, चोटी काल गही ।
दारा मीत पूत रथ संपति, धन जन पूर्न मही ॥
और सकल मिथ्या यह जानो, भजन राम सही ।
फिरत फिरत बहुते जुग हारयो, मानस देह लही ॥
नानक कहत मिलन की बिरिया, सुमिरत कहा नहीं ।

रे मन कौन गति होइ है तेरी ।
एहि जग में राम नाम, सो तो नहिं सुन्यो कान ।
विषयन सों अति लुभान, मति नाहिन फेरी ॥
मानस को जनम लीन्ह, सिमरन नहिं निमिष कीन्ह ।
दारा सुत भयो दीन पगहुं परी बेरी ॥
नानक जन कह पुकार, सुपने ज्यों जग पसार ।
सिमरत नहिं क्यों मुरार, माया जा की चेरी ॥

माई मैं मन को मान न त्यागो।
माया के मद जनम सिरायो, राम भजन नहिं लाग्यो।
जम को दंड पर्‌यो सिर ऊपर, तब सोवत तें जाग्यो॥
कहा होत अब के पछिताये, छूटत नाहिन भाग्यो।
यह चिंता उपजी घट में जब, गुरु चरनन अनुराग्यो॥
सुफल जनम नानक तब हूआ, जो प्रभु जस में पाग्यो।

साधो मन का मान तियागो।
काम क्रोध संगत दुर्जन की, ता तें अहि निसि भागो।
सुख दुख दोनों सम कर जानै, और मान अपमाना॥
हर्ष सोक तें रहै अतीता, तिन जग तत्व पिछाना।
अस्तुति निंदा दोऊ त्यागै, खोजै पद निरबाना॥
जन नानक यह खेल कठिन है, किनहूं गुरमुख जाना।

जा में भजन राम को नाहीं।
तेहि नर जनम अकारथ खोयो, यह राखो मन माहीं।
तीरथ करै व्रत पुनि राखै, नहिं मनुवाँ बस जाको॥
निफल धर्म ताहि तुम मानो, साच कहत मैं याको।
जैसे पाहन जल में राख्यो, भेदै नहिं तेहि पानी॥
तैसे ही तुम ताहि पिछानो, भगति हीन जो प्रानी।
कलि में मुक्ति नाम तें पावत, गुरु यह भेद बतावै॥
कहु नानक सोई नर गरुवा, जो प्रभु के गुन गावै।

साध महिमा

जो नर दुख में दुख नहिं मानै॥
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके, कंचन माटी जानै।
नहि निंदा नहिं अस्तुति जाके, लोभ मोह अभिमाना॥
हर्ष सोक तें रहै नियारो, नाहिं मान अपमाना।
आसा मनसा सकल त्यागि कै, जग तें रहै निरासा॥
काम क्रोध जेहिं परसै नाहिन, तेहिं घट ब्रह्म निवासा।
गुरु किरपा जेहिं नर पै कीन्हीं, तिन यह जुगति पिछानी॥
नानक लीन भयो गोबिंद सो, ज्यों पानी सँग पानी।

था जग मीत न देख्यो कोई ।
सकल जगत अपने सुख लाग्यों, दुख में संग न होई ।
दारा मीत पूत संबंधी, सगरे धन सों लागे ॥
जबहीं निरधन देख्यो नर को, सग छाड़ि सब भागे ।
कहा कहूँ या मन बौरे को, इन सों नेह लगाया ॥
दीनानाथ सकल भयभंजन, जस ताको बिसराया ॥
स्वान पूँछ ज्यों भयो न सूधो बहुत जतन मैं कीन्हो ।
नानक लाज बिरद की राखो, नाम तिहारो लीन्हो ॥

मुरसिद मेरा महरमी, जिन मरम बताया ।
दिल अंदर दीदार है, खोजा तिन पाया ॥
तसबी एक अजूब हैं, जा में हरदम दाना ।
कुंज किनारे बैठि के, फेरा तिन्ह जाना ॥
क्या बकरी क्या गाय है क्या अपनो जाया ।
सब को लोहू एक है, साहिब फरमाया ॥
पीर पैगबर औलिया, सब मरने आया ।
नाहक जीव न मारिये, पोषन को काया ॥
हिरिस हिये हैवान है, बसि करिले भाई ।
दाद इलाही नानका, जिसे देवे खुदाई ॥

हरि जू राख लेहु पत मेरो ।
काल को त्रास भयो उर अंतर, सरन गह्यो प्रब तेरो ।
भय करने को बिसरत नाहीं, तेहिं चिंता तन जारो ॥
किये उपाय मुक्ति के कारन, दह दिसि को उठि धाया ।
घट ही भीतर बसैं निरतर, ता को मर्म न पाया ॥
नाहीं गुन नाहीं कछु जप तप, कौन करम अब कीजै ।
नानक हार पर्‌यौ सरनागत, अभय दान प्रब दीजै ॥

काहे रे बन खोजन जाई ।
सर्ब निवासी सदा अलेपा, तोही सग समाई ।
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकर माहिं जस छाई ॥
तैसे ही हरि बसै निरतर, घट ही खोजो माई ।
बाहर भीतर एकै जानो, यह गुरु ज्ञान बताई ॥
जन नानक बिन आपा चीन्हे, मिटै न भ्रम की काई ।

अब मैं कौन उपाय करूँ।
जेहि विधि मन को संसय छूटै, भव निधि पार परूँ।
जनम पाय कछु भलो न कीन्हो, ता तें अधिक डरूँ॥
गुरु मत सुन कछु ज्ञान न उपज्यो, पसुवत उदर भरूँ।
कहु नानक प्रभु बिरद पिछानो, तब हौ पतित तरूँ॥

अब मेरे प्रीतम प्रान पियारे।
प्रेम भक्ति निज नाम दीजिये, दयाल अनुग्रह धारे।
सुमिरौं चरन तिहारे प्रीतम, रिदे तिहारी आसा॥
सत जनों पै करौ बेनती, मन दरसन को प्यासा।
बिछुरत मरन जीवन हरि मिलते, जन को दरसन दीजै॥
नाम अधार जीवन धन नानक, प्रब मेरे किरपा कीजै।

अब जी यही मनोरथ मेरा।
कृपा निधान दयाल मोहिं दीजै, करि संतन का चेरा।
प्रात काल लागों जन चरनी, निसि बासर दरसन पावों॥
तन मन अरप करों जन सेवा, रसना हरि गुन गावों।
साँस साँस सुमिरों प्रभु अपना, संत संग नित रहिये॥
एक अधार नाम धन मेरा, आनद नानक यह लहिये।

भाई मैं केहि विधि लखों गुसाईं।
महा मोह अज्ञान तिमिर में, मन रहियो उरझाई।
सकल जनम भ्रम ही भ्रम खोयो, नहिँ इस्थिर मति पाई॥
बिषयासक्त रह्यो निसि बासर, नहिँ छूटी अधमाई।
साधु संग कबहूं नहिं कीन्हा, नहिँ कीरति प्रब गाई॥
जन नानक में नाहीं कोउ गुन, राखि लेहु सरनाई।

अब हम चली ठाकुर पहिँ हार।
जब हम सरन प्रभू की आईं, राख प्रभु भावे मार।
लोगन की चतुराई उपमा, ते बैसंदर जार॥
कोई भला कहु भावे बुरा कहु, हम तन दियो है ढार।
जो आवत सरन ठाकुर प्रभु तुम्हरी, तिस राखो किरपाधार॥
जन नानक सरन तुम्हारी हरिजी, राखो लाज मुरार।

राम सुमिर राम सुमिर एही तेरो काज है।
माया को संग त्याग, हरि जू की सरन लाग।
जगत सुख मान मिथ्या, झूठो सब साज है॥

सुपने ज्यों धन पिछान, काहे पर करत मान।
बारू की भीत तैसे, बसुधा को राज है॥
नानक जन कहत बात, बिनसि जैहै तेरो गात।
छिन छिन करि गयो काल्ह, तैसे जात आज है॥

चेतना है तो चेत ले निसि दिन में प्रानी।
छिन छिन अवधि बिहात है, फूटै घट ज्यों पानी।
हरि गुन काहे न गावही, मूरख अज्ञाना॥
झूठे लालच लागि के, नहिं मर्म पिछाना।
अजहूँ कछु बिगर्‌यो नहीं, जो प्रभु गुन गावै॥
कहु नानक तेहिं भजन तें, निरभय पद पावै।

सब कछु जीवत को ब्यौहार।
मात पिता भाई सुत बाँधव, अरु पुनि गृह की नार।
तन तें प्रान होत जब न्यारे, टेरत प्रेत पुकार॥
आध घरी कोऊ नहिं राखै घर ते देत निकार।
मृग तृस्ना ज्यों जग स्पना यह, देखो हृदे बिचार॥
कहु नानक भजु राम नाम नित, जाते होत उधार।

इस दम दा मैनूँ की वे भरोसा।
आया आया न आया न आया॥
सोच बिचार करै मत मन में।
जिसने ढूँढा उसे न पाया॥
या संसार रैन दा सुपना।
कहिँ दीखा कहिँ नाहिँ दिखाया॥
नानक भक्तन के पद परसे।
निस दिन राम चरन चित लाया॥

साधो यह तन मिथ्या जानो।
या भीतर जो राम बसत हैं, साचो ताहि पिछानो।
यह जग है संपति सुपने की, देख कहा ऐंड़ानो॥
संग तिहारे कछू न चालै, ताहि कहा लपटानो।
अस्तुति निंदा दोऊ परिहरि, हरि कीरति उर आनो॥
जन नानक सबही में पूरन, एक पुरुष भगवानो।

प्रेम

प्रभु जी तूँ मेरे प्रान अधारे।
नमस्कार डंडौत बंदना, अनिक बार जाऊँ बलिहारे।
ऊठत बैठत सोवत जागत, इहु मन तुझे चितारे॥
सूख दूख इस मन की बिरथा, तुझ ही आगे सारे।
तूँ मेरी ओट बल बुधि धन तुमहीं, तुमहिँ मेरे परिवारे॥
जो तुम करो सोई भल हमरे, पेख नानक सुख चरना रे।

बिसरत नाहिँ मन ते हरी।
अब यह प्रीति महा प्रबल भई, आन बिषय जरी।
बूँद कहाँ तियागि चातक, मीन रहत न घरी॥
गुन गोपाल उचारत रसना, टेव यह परी।
महा नाद कुरंग मोह्यो, बेध तीच्छन सरी॥
प्रभु चरन कमल रसाल नानक, गाँठ बाँध परी।

हौं कुरबाने जाउँ पियारे, हौं कुरबाने जाउँ।
हौं कुरबाने जाउँ तिन्हाँ दे, लैन जो तेरा नाउँ।
लैन जो तेरा नाउँ तिन्हाँ दे, हौं सद कुरबाने जाउँ॥
काया रंगन जे थिये प्यारे, पाइये नाउँ मजीठ।
रंगन वाला जे रँगे साहिब, ऐसा रंग न डीठ॥
जिनके चोलड़े रतड़े प्यारे, कंत तिन्हाँ के पास।
धूड़ तिन्हाँ को जे मिले जी को, नानक की अरदास॥

गोबिंद जी तूँ मेरे प्रान अधार।
साजन मीत सहाई तुमहीं, तूँ मेरो परिवार।
कर बिसाल धार्‌यो मेरे माथे, साधु संग गुन गाये॥
तुम्हरी कृपा तें सब फल पाये, रसिक नाम धियाये।
अबिचल नींव धराई सतगुरु, कबहूं डोलत नाहीं॥
गुर नानक जब भये दयाला, सर्व सुखों निधि पाहीं।

दादू

दादू का जन्म अहमदाबाद मे सं० १६०१ में फागुन सुदी अष्टमी के दिन हुआ था। इनके जन्म स्थान और वंश आदि के संबंध में बड़ा मतभेद है। इनके जीवन संबंधी इन प्रश्नों पर स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी और पं० चद्रिका प्रसाद त्रिपाठी ने अच्छा अनुसधान किया है। द्विवेदी जी ने दादू का संपादन नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से किया है, और त्रिपाठी जी ने भी दादू की रचनाओं का एक बड़ा प्रामाणिक संस्करण निकाला है। विल्सन नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने भी दादू के कुछ चुने हुए पदों का अनुवाद 'साम्स आफ दादू' नामक पुस्तक मे प्रकाशित किया है। प्रोफेसर विल्सन इनका रचना काल ईसा की सोलहवीं शताब्दी मे मानते हैं। उन्ही के अनुसार ये स्वामी रामानंद की शिष्य-परंपरा मे कबीर की छठवीं पीढ़ी मे थे और इनका जन्म गुजरात के एक जुलाहे के वंश में हुआ था। वेलवेडियर प्रेस के संस्करण के अनुसार इनका जन्म एक धुनियाँ के वश में कबीर की मृत्यु के २६ वर्ष बाद स० १६०१ में हुआ था। परंतु पं० चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी इन्हे ब्राह्मण कुलोत्पन्न मानते हैं। उन्ही के अनुसार इनका जन्म फाल्गुन शुक्ल अष्टमी सं० १६०१ मे माना जाता है। त्रिपाठी जी ने अपना मत बड़ी सतोषजनक रीति से अनुसंधान करने के बाद स्थिर किया और इसलिये जब तक इनके निष्कर्षों के विरुद्ध कोई प्रबल प्रमाण न मिलें तब तक इन्हें ही उत्तर पक्ष मानना पड़ेगा। इनके पिता का नाम लोदी राम प्रायः सभी अन्वेषक मानते हैं।

दादू जी के जीवन वृत्तांत के सबंध में एक सबसे अनोखी बात यह है कि इनके जीवन के प्रथम ३० वर्षों का इतिवृत्त अप्राप्य सा है। इनके जन्म के संबंध में भी कबीर ही की भाँति एक अनोखी कथा प्रसिद्ध है। दादूपंथियों के अनुसार यह सद्यः जात शिशु के रूप में साबरमती नदी मे बहते हुए लोदीराम नामक एक नागर ब्राह्मण द्वारा पाए गए थे। यद्यपि दादूपंथी और उन्ही के आधार पर पं० चद्रिका प्रसाद त्रिपाठी की भी यही धारणा है कि ये ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे, पर इनके अतिरिक्त अधिकतर समालोचको की धारणा यही है कि धुनियां, मोची, या जुलाहा या ऐसे ही किसी साधारण कुल मे इनकी उत्पत्ति हुई थी। जो हो, निश्चय रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। इनकी कविताओ से तो यही जान पड़ता है कि ये ब्राह्मण न रहे होंगे। जिस प्रकार कबीर ही की भाँति इन्होंने ऊँच नीच के भेद भाव के विरुद्ध उपदेश दिया है उस से तो यही अनुमान हो सकता है कि यह जात्याभिमानी ब्राह्मण तो शायद ही रहे हो। यद्यपि कबीर की भाँति इनकी कविता

में वेद, पुराण, वर्णाश्रमधर्म तथा कर्मकांड आदि की कटु और उद्दंड आलोचना नहीं मिलती तो भी कबीर के बताए हुए मार्ग से ही ये चले हैं और इनके उपदेशों में कबीर के सिद्धांतों का विरोध तो कहीं भी नहीं मिलता। इन सब बातों से इसी अनुमान की पुष्टि होती है कि इनकी उत्पत्ति अधिकतर संत कवियों की भाँति किसी अत्यंत साधारण कुल में ही हुई होगी।

ऊपर यह सूचित किया जा चुका है कि इनके जीवन के प्रथम ३० वर्षों का वृत्तांत प्रायः अज्ञात सा है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि १८ वर्ष की अवस्था तक यह अपने जन्म स्थान अहमदाबाद में ही रहे और फिर अगले ८ साल इन्होंने मध्यप्रांत के भिन्न प्रदेशों में घूमने में बिताया। लगभग २८ वर्ष की अवस्था में यह मारवाड़ प्रांत के साँभर (साँभर झील जहाँ का नमक प्रसिद्ध है) नामक स्थान पर पहुँचे (लगभग सं० १६३०) और फिर वहाँ से (सं० १६३६ से) जयपुर की राजधानी आमेर में स्थायी रूप से रहने लगे। यहाँ वह लगभग १५ वर्ष तक रहे। कहा जाता है सं० १६४२ में बड़े आग्रह से बुलाए जाने पर अकबर की तत्कालीन राजधानी फतेहपुर सीकरी भी गए थे और वहाँ बादशाह से इनका साक्षात्कार हुआ था। सं० १६५० में ये आमेर छोड़कर जयपुर में रहने लगे और अंत में लगभग ९ वर्ष वहाँ रह कर नराणे की एक पहाड़ी गुफा में रहने लगे और कुछ ही दिनों में वहीं जेठ बदी अष्टमी सं० १६६० में परलोक सिधारे। दादू-पंथियों की प्रधान गद्दी अब भी नराणे में ही है। वहाँ इनका एक स्मृति मंदिर भी है जिसमें दादूपंथी साधु निवास करते हैं।

इनका गुरु कौन था यह अभी तक निश्चय नहीं हो सका है। दादूपंथियों में इस संबंध में यह कथा प्रसिद्ध है कि स्वयं कृष्ण भगवान ने वृद्ध का रूप धारण कर इन्हें दीक्षा दी थी और इसी कारण इनके गुरु का नाम वृद्धानंद या 'बूढ़ण' भी कहा जाता है। इस संबंध में इनका यह दोहा भी ध्यान में रखने योग्य है।

> दादू गैब माँहि गुरुदेव मिला, पाया हम परसाद।
> मस्तक मेरे कर धरथा, दाया अगम अगाध॥

पं० सुधाकर द्विवेदी कबीर के पुत्र कमाल को दादू का गुरु मानते हैं, पर अपनी इस धारणा के पक्ष में वह कोई संतोषजनक प्रमाण नहीं दे सके हैं। पर जो कोई भी इनका दीक्षा गुरु रहा हो, इतना तो इनकी रचनाओं से स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने अपना आदर्श कबीर को ही बनाया होगा। कबीर का नाम बार बार इनकी रचनाओं में मिलता है और वह भी इस रूप में नहीं जिसमें कबीर ने शेखतकी (सुनहु तकी तुम सेख) का नाम लिया है। इनके दोहों, साखियों और पदों में कबीर के संदेश, उपदेश या विचार दोहराए हुए से मिलते हैं। इनकी उत्पत्ति तो कबीर की मृत्यु के २५ वर्ष के बाद हुई थी और इनके रचना काल का

आरंभ भी कबीर की मृत्यु के कम से कम ५० वर्ष बाद ही आरंभ हुआ होगा। क्योंकि सं० १६३० मे साँभर में स्थापित होने के बाद ही पथ प्रवर्तक के रूप मे यह प्रसिद्ध हुए। परंतु ५० या ६० वर्ष बाद भी कबीर की ज्ञानज्योति की चका-चौंध काफी रह गई होगी और यह कोई आश्चर्य नहीं कि किसी दिन अध्यात्मिक तंद्रावस्था मे इन्होंने अपने मानसिक नेत्रों के सामने कबीर का ही अंतिम दिनों का (१२० वर्ष की अवस्था वाले) विवृद्धवान रूप प्रत्यक्ष पाया हो और उस से मानसिक दीक्षा ग्रहण कर ली हो। क्योंकि यह तो कथा प्रसिद्ध है कि इनके गुरु कोई परम वृद्ध महापुरुष थे, वह और कोई नहीं इनके मानस पटल मे वृद्ध कबीर की ही छाया रही होगी, वृद्ध कबीर इसलिये कि मृत्य व्यक्ति के अंतिम दिनों की ही स्मृति बाद के लोगो के मन में स्पष्ट रह जाती है। भगवान कृष्ण का वृद्धरूप में दादू को दीक्षा देने आने की कथा बेतुकी या असंगत विशेष कर इसलिये जान पड़ती है कि महाभारत से लेकर आज तक कृष्ण संबंधी जितने कथानक ज्ञात हैं उनमें कृष्ण के वृद्ध या 'बूढण' रूप का चित्र कहीं नहीं खीचा गया है। और फिर महाकवि सूर या मीरा की भाँति कृष्ण इनके आराध्य देव भी नहीं थे जैसा कि इनकी रचनाओ से स्पष्ट है।

इनकी कविता की भाषा अवश्य कबीर की भाषा से बहुत कुछ भिन्न थी। पूरबी भाषा तो इन की रचना में कहीं भी नहीं मिलती। प्राधान्य मारवाड़ी और कहीं कहीं गुजराती मिश्रित पश्चिमी हिंदी का है। कहीं कहीं पंजाबीपन भी देखने मे आ जाता है पर कम। हाँ गुजराती और मारवाड़ी का मुँह करीब करीब बराबर है। कारण स्पष्ट है। इनके जीवन का उत्तरार्द्ध मारवाड़ मे बीता और यही इनका रचना काल रहा। बाल्य और कैशोर काल में गुजरात में रहना भी इनकी रचना पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता था। इनके कुछ पद ठेठ राजस्थानी और गुजराती में भी हैं। दो चार पद पंजाबी मे भी मिलते हैं। इनकी रचना में कबीर की वह जटिलता या रहस्यपूर्णता नहीं है जिनके कारण कुछ लोग इन्हें (कबीर को) प्रथम रहस्यवादी कवि कहते हैं। वह चमत्कार भी नहीं है। पर माधुर्य अवश्य कबीर से अधिक है। शिक्षा तो इनकी कुछ विशेष नहीं जान पड़ती। अन्य संत कवियों की भाँति भाषादोष से यह भी बरी नहीं है। इस समय की सामान्य काव्यभाषा में खड़ी बोली की क्रियायों का प्रयोग यह भी ख़ूब करते थे। विषय भी इनके वही हैं जिन्हें प्रायः सभी संतकवियों ने एकमत होकर अपनाया है और जिन्हे अन्य किसी शाखा के कवियों छुआ तक नहीं, जैसे—ईश्वर की व्यापकता, सतगुरु की महिमा, जातिपाँति, ऊँचनीच के भेदभाव का निरा-करण, हिंदू मुसल्मानों का अभेद, संसार की अनित्यता, आत्मबोध, चेतावनी, सूरमा इत्यादि।

———

दादू

गुरुदेव

(दादू) गैब माँहिं गुरुदेव मिल्या, पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धरया, देख्या अगम अगाध॥
(दादू) सतगुरु सू सहजै मिल्या, लीया कंठ लगाइ।
दाया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ॥
सतगुरु काढ़े केस गहि, डूबत इहि संसार।
दादू नाव चढ़ाइ करि, कीये पैली पार॥
दादू उस गुरुदेव की, मैं बलिहारी जाउँ।
जँह आसन अमर अलेख था, ले राखे उस ठाउँ॥
(दादू) सतगुरु मारे सबद सों, निरखि निरखि निज ठौर।
राम अकेला रहि गया, चीत न आवै और॥
सबद दूध घृत राम रस, कोइ साध बिलोवणहार।
दादू अमृत काढि ले, गुरुमुखि गहै बिचार॥
देवै किरका दरद का, टूटा जोड़ै तार।
दादू साधै सुरति को, सो गुरु पीर हमार॥
सतगुरु मिलै तो पाइये, भक्ति मुक्ति भंडार।
दादू सहजै देखिये, साहिब का दीदार॥
(दादू) सतगुरु माला मन दिया, पवन सुरति सूँ पोइ।
बिन हाथों निस दिन जपै, परम जाप यूँ होइ॥
(दादू) यहु मसीत यहु देहुरा, सतगुरु दिया दिखाइ।
भीतरि सेवा बंदगी, बाहरि काहे जाइ॥
मन ताजी चेतन चढ़ै, ल्यौ की करै लगान।
सबद गुरू का ताजना, कोइ पहुँचै साध सुजान॥

सुमिरन

दादू नीका नाँव है, हरि हिरदै न बिसारि।
मूरति मन माहैं बसै, साँसै साँस सँभारि॥
साँसै साँस सँभालता, इक दिन मिलिहै आइ।
सुमिरन पैंडा सहज का, सतगुरु दिया बताइ॥
दादू राम सँभालि ले, जब लग सुखी सरीर।
फिर पीछैं पछिताहिगा, जब तन मन धरै न धीर॥

मेरे संसा को नहीं, जीवन मरन का राम।
सुपनैं ही जनि बीसरै, मुख हिरदै हरि नाम॥
हरि भजि साफल जीवना, पर उपगार समाइ।
दादू मरण तहँ भला, जहँ पसु पँखी खाइ॥

(दादू) अगम बस्त पानैं पड़ी, राखी माझि छिपाइ।
छिन छिन सोई संभालिये, मति पै बीसरी जाइ॥

(दादू) राम नाम निज औषधी, काटै कोटि बिकार।
बिषम व्याधि ये ऊबरै, काया कंचन सार॥

(दादू) गह सुख सरग पयाल के, तोल तराजू बाहि।
हरि सुख एक पलक्क का, ता सम कह्या न जाय॥
कौन पटतर दीजिए, दूजा नाहीं कोइ।
राम सरीखा राम है, सुमिर्‍याँ ही सुख होइ॥
नाँव लिया तब जाणिये, जे तन मन रहै समाइ।
आदि अंत मध एक रस, कबहूं भूलि न जाइ॥

शब्द

(दादू) सबदै बंध्या सब रहै, सबदै सबही जाय।
सबदैं ही सब ऊपजै, सबदैं सबै समाय॥

(दादू) सबदैं ही सचु पाइये, सबदै ही संतोष।
सबदैं ही इस्थिर भया, सबदैं ही भागा सोक॥
(दादू) सबदैं ही सूषिम भाय, सबदैं सहज समान।
सबदैं ही निर्गुण मिलै, सबदैं निर्मल ग्यान॥

(दादू) सबदै ही मुक्ता भया, सबदै समझै प्राण।
सबदै ही सूझै सबै, सबदै सुरझै जाण॥
पहली किया आप थें उतपत्तो ओंकार।
ओंकार थैं ऊपजे, पंच तत्त आकार॥
पंच तत्त थैं घट भया, बहु बिधि सब बिस्तार।
दादू घट थैं ऊपजे, मैं तैं बरण बिचार॥
एक सबद सैं ऊनवै, वर्षन लागै आइ।
एक सबद सौं बीखरै, आप आप कौं जाइ॥

(दादू) सबद बाण गुर साध के, दूरि दिसंतर जाइ।
जेंहि लागे सो ऊबरे, सूते लिये जगाइ॥
सबद जरै सो मिलि रहै, एकै रस पूरा।
कायर भागे जीव ले, पग माँडै सूरा॥

सबद सरोवर सूभर भरया, हरि जल निर्मल नीर।
दादू पीवै प्रीत सौं, तिन के अखिल सरीर॥

विरह

मन चित चातक ज्यूं रटै, पिव पिव लागी प्यास।
दादू दरसन कारने, पुरवहु मेरी आस॥
(दादू) विरहिनि दुख कासनि कहै, कासनि देइ सँदेस।
पथ निहारत पीव का, बिरहिनि पलटे केस॥
ना वहु मिलै ना मैं सुखी, कहु क्यूं जीवन होइ।
जिन मुझको घायल किया, मेरी दारू सोइ॥
(दादू) मैं भिख्यारी मंगिता, दरसन देहु दयाल।
तुम दाता दुख भंजिता, मेरी करहु सँभाल॥
दीन दुनी सदकै करौ, टुक देखण दीदार।
तन मन भी छिन छिन करौं, भिस्त दोजग भीवार॥
बिरह अगिन तन जालिये, ज्ञान अगिनि दौ लाइ।
दादू नख सिख पर जलै, तब राम बुझावै आइ॥
अंदर पीड़ न ऊभरै, बाहर करै पुकार।
दादू सो क्यों करि लहै, साहिब का दीदार॥
(दादू) कर बन सर बिन कमान बिन, मारै खैंचि कसीस।
लागी चोट सरीर में, नख सिख सालै सीस॥
(दादू) बिरह जगावै दरद कौं, दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरति कौं, पच पुकारै पीव॥
(दादू) नैन हमारे ढीठ है, नाले नीर न जाहिं।
सूके सराँ सहेत वै, करँक भये गलि माँहि॥
(दादू) जब बिरहा आया दरद सौं, तब कड़वे लागे काम।
काया लागी काल है, मीठा लागा नाम॥
जे कबहूं बिरहिनि मरैं, तौ सुरति बिरहिनि होई।
दादू पिव पिव जीवतां, मुवा भी टेरै सोइ॥
मीयाँ मैंडा आव घर, वाँढी वत्ताँ लोइ।
दुखडे मुँहडे गये, मराँ विछोहे रोइ॥

भक्ति और लव

जोग समाधि सुख सुरति सौं, सहजैं सहजैं आव।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव॥
ल्यौ लागी तब जाणिये, जे कबहूं छूटि न जाइ।
जीवत यौं लागी रहै, मूवाँ मंझि समाई॥

मन ताजी चेतन चढ़े, ल्यौ की करै लगाम।
सबद गुरू का ताजना, कोइ पहुँचे साध सुजान॥
आदि अंत मधि एक रस, टूटै नहिं धागा।
दादू एकै रहि गया, जब जाणै जागा॥
अर्थ अनूपम आप है, और अनरथ भाई।
दादू ऐसी जानि करि, तासौं ल्यौ लाई॥
सुरति अपूठी फेरि करि, आतम माहैं आण।
लाहि रहै गुरुदेव सौं, दादू सोई सयाण॥
जहँ आतम तहँ राम है, सकल रह्या भरपूर।
अंतरगति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवग सूर॥
एक मना लागा रहै, अंत मिलैगा सोइ।
दादू जाके मन बसै, ताकौं दरसन होइ॥
दादू निबहै त्यूँ चलै, धरि धीरज मन माहिं।
परसैगा पिव एक दिन, दादू थाकै नाहिं॥

चितावनी

(दादू) जे साहिब कौं भावै नहीं, सो बाट न बूझी रे।
साईं सौं सन्मुख रही, इस मन सौं जूझी रे॥
दादू अचेत न होइये, चेतन सौं चित लाइ।
मनवाँ सोता नींद भरि, साईं संग जगाई॥
आया पर सब दूरि करि, राम नाम रस लागि।
दादू औसर जात है, जागि सकै तो जागि॥
दुख दरिया ससार है, सुख का सागर राम।
सुख सागर चलि जाइये, दादू तजि बेकाम॥

(दादू) भाँती पाये पसु पिरी, हाँणो लाइ न बेर।
साथ समोई हल्यौ, पोइ पसंदा केर॥
काल न सूझै कध पर मन चितवै बहु आस।
दादू जिव जाणै नहीं, कठिन काल की पास॥
जहँ जहँ दादू पग धरै, तहाँ काल का फंध।
सिर ऊपर साँधे खड़ा, अजहुँ न चेतै अंध॥
यहु बन हरिया देखि करि, फूल्यौ फिरै गँवार।
दादू यहु मन मिरगला, काल अहेड़ी लार॥
कहताँ सुनताँ देखताँ, लेताँ देताँ प्राण।
दादू सो कतहू गया, माटी धरी मसाण॥

पंथ दुहेला दूरि घर, सग न साथी कोय।
उस मारग हम जाहिंगे, दादू क्यौं सुख सोइ॥
काल झाल में जग जलै, भाजि न निकसै कोइ।
दादू सरणै साच कै, अभय अमर पद होइ॥
ये सज्जन दुर्जन भये, अंति काल की बार।
दादू इनमें को नहीं, बिपति बटावणहार॥
काल हमारा कर गहे, दिन दिन खैंचत जाइ।
अजहुं जीव जागै नहीं, सोवत गई बिहाइ॥
धरती करते एक डग, दरिया करते फाल।
हाँकौं परबत फाड़ते, सो भी खाये काल॥

निज करता का निर्णय

जाती नूर अलाह का, सिफाती अरवाह।
सिफाती सिजदा करै, जाती बे परवाह॥
वार पार नहिं नूर का, दादू तेज अनत।
कीमति नहिँ करतार की, ऐसा है भगवत॥
जियें तेल तिलन्नि में, जीयें गंधि फुलन्नि।
जीयें माखण षीर में, ईयें रब रूहन्नि॥

दुबिधा

जब हम ऊजड़ चालते, तब कहते मारग माहिं।
दादू पहुंचे पथ चलि, कहैं यहु मारग नाहिँ॥
द्वै पष उपजी परिहरै, निर्पष अनभै सार।
एक राम दूजा नही, दादू लेहु बिचार॥
दादू ससा आरसी, देखत दूजा होई।
भरम गया दुभिध्या मिटी, तब दूसर नाही कोइ॥

बेहद

देखि दिवाने है गये, दादू खरे सयान।
वार पार कोइ ना लहै, दादू है हैरान॥
पार न देवै आपणा, गोप बूझ मन माहिं।
दादू कोई ना लहै, केतै आवैं जाहिं॥

समरथ

समरथ सब बिधि साइयाँ, ताकी मैं बलि जाउँ।
अतर एक जु सो बसै, औरा चित्त न लाउँ॥

ज्यूं राखैं त्यूं रहैंगे, अपणे बल नाहीं।
सबै तुम्हारे हाथि है, भाजि कत जाहीं॥
दादू दूजा क्यूं कहै, सिर परि साहिब एक।
सो हम कूं क्यूं बीसरै, जे जुग जाँहिं अनेक॥
कर्म फिरावै जीव कौं, कर्मों कौं करतार।
करतार कौं कोई नहीं, दादू फेरनहार॥
आप अकेला सब करै, औरूँ के सिर देइ।
दादू सोभा दास कूं, अपना नाम न लेइ॥

विनय

तिल तिल का अपराधी तेरा, रती रती का चोर।
पल पल का मैं गुनही तेरा, बक्सौ औगुण मोर॥
गुनहगार अपराधी तेरा, भाजि कहाँ हम जाहिं।
दादू देख्या सोधि सब, तुम बिन कहिं न समाहिं॥
आदि अंत लौं आई करि, सुकिरत कछू न कीन्ह।
माया मोह मद मंछुरा, स्वाद सबै चित दीन्ह॥
दादू बंदीवान है, तू बंदी छोड़ दिवान।
अब जनि राखौ बंदि में, मीराँ मेहरबान॥
दिन दिन नौतम भगति दे, दिन दिन नौतम नाँव।
दिन दिन नौतम नेह दे, मैं बलिहारी जाँव॥
साईं सत संतोष दे, भाव भगति बेसास।
सिदक सबूरी साँच दे, मागै दादूदास॥
पलक माँहिं प्रगटै सही, जे जन करै पुकार।
दीन दुखी तब देखि करि, अति आतुर तिहिं बार॥
आगें पीछैं संगि रहै, आप उठाये भार।
साध दुखी तब हरि दुखी, ऐसे सिरजन हार॥
अंतरजामी एक तूं, आतम के आधार।
जे तुम छाड़हु हाथ थैं, तौ कौण संबाहणहार॥
तुम हौ तैसी कीजिये, तौ छूटैंगे जीव।
हम हैं ऐसी जनि करौ, मैं सदिकै जाँऊ पीव॥
साहिब दर दादू खड़ा, निसि दिन करै पुकार।
मीराँ मेरा मिहर करि, साहिब दे दीदार॥
तुम कूं हम से बहुत हैं, हम कूं तुम से नाहिं।
दादू कूं जनि परिहरौ, तूं रहु नैनहुं माहिं॥

विश्वास

(दादू) सहजैं सहज होइगा, जे कुछ रजिया राम।
काहे कौं कलपै मरै, दुखी होत बेकाम ॥
(दादू) मनसा बाचा कर्मना, साहिब का बेसास।
सेवग सिरजनहार का, करै कौन की आस ॥
(दादू) च्यंता कीयाँ कुछ नहीं, च्यता जिव कूँ खाय।
हूणा था सो है रह्या, जाणा है सो जाइ ॥
(दादू) राजिक रिजक लिये खड़ा, तेवै हाथौं हाथ।
पूरिक पूरा पासि है, सदा हमारे साथ ॥

विचार

कोटि अचारी एक बिचारी, तऊ न सर भरि होइ।
आचारी सब जग मर्‍या, बिचारी विरला कोइ ॥
सहज विचार सुख में रहै, दादू बड़ा बमेक।
मन इंद्री पसरैं नहीं, अंतरि राखै एक ॥
(दादू) सोचि करै सो सूरमा, करि सोचै सो कूर।
करि सोच्याँ मुख स्याम है, सोच कर्‍याँ मुख नूर ॥
जो मति पीछैं ऊपजै, सो मति पहिलो होइ।
कबहुँ न होवै जी दुखी, दादू सुखिया सोइ ॥

साँच

साँचा नाँव अलाह का, सोई सति करि जाणि।
निहचल करि ले बंदगी, दादू सो परवाणि ॥
दुइ दरोग लोग कौं भावै, साईं साच पियारा।
कौण पथ हम चलैं कहौ धौं, साधौ करौ बिचारा ॥
औषद खाइ न पछि रहै, बिषम व्याधि क्यों जाइ।
दादू रोगी बावरा, दोस बैद कौं लाइ ॥
जे हम जाण्या एक करि, तौ काहे लोक रिसाइ।
मेरा था सो मैं लिया, लोगौं का क्या जाइ ॥
दादू पैंडे पाप के, कदे न दीजै पाव।
जिहिं पैंडे मेरा पिव मिलै, तिहि पैंडे का चाव ॥
ऊपरि आलम सब करै, साधू जन घट माहिं।
दादू एता अतरा, ताथैं बनती नाहि ॥
झूठा साचा करि लिया, बिष अमृत जाना।
दुख कौं सुख सब के कहै, ऐसा जगत दिवाना ॥

सॉचे का साहिब धणी, समरथ सिरजनहार।
पाखड की यहु पिर्थमी, परपँच का संसार॥
(दादू) पाखँड पीव न पाइये, जे अतरि साच न होइ।
ऊपरि थैं क्यौहीं रहौ, भीतर के मल धोइ॥
जे पहुँचे ते कहि गये, तिनकी एकै बाति।
सबै सयाने एक मति, उनकी एकै जाति॥

मौन

(दादू) मनहीं मॉहे समझि करि, मनहीं माहि समाइ।
मन हीं माहैं राखिये, बाहरि कहि न जनाइ॥
जरणा जोगी जुगि जुगि जीवै, झरना मरि मरि जाय।
दादू जोगी गुरमुखी, सहजैं रहै समाइ॥

जीवत मृतक

जीवत माटी है रहै, साईं सनमुख होइ।
दादू पहिली मरि रहै, पीछैं तौं सब कोइ॥
आपा गर्ब गुमान तजि, मद मछर हकार।
गहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजन हार॥
(दादू) मेरा बैरी मैं मुवा, मुझै न मारै कोउ।
मैं हीं मुझ कौं मारता, मैं मरजीवा होइ॥
मेरे आगे मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाइ।
दादू परगट पीव है, जे यहु आपा जाइ॥
दादू आप छिपाइये, जहॉ न देखै कोइ।
पिव कौं देखि दिखाइये, त्यौं त्यौं आनद होइ॥
(दादू) साईं कारण मॉस का, लोही पानी होइ।
सूकै आटा अस्थि का, दादू पावै सोइ॥

पतिव्रता

(दादू) मेरे हिरदे हरि बसै, दूजा नाहीं और।
कहौ कहॉ धौं राखिये, नहीं आन कौं ठौर॥
(दादू) पीव न देख्या नैन भरि, कंठि न लागी धाइ।
सूती नहि गल बॉहि दे, बिच हीं गई बिलाइ।
प्रेम प्रीति इसनेह बिन, सब झूठे सिंगार॥
दादू आतम रत नहीं, क्यों मानै भरतार।
(दादू) हूँ सुख सूती नींद भरि, जागै मेरा पीव॥
क्यों करि मेला होइगा, जागै नाहीं जीव।

सुंदरि कबहूँ कत का, मुख सौं नाव न लेइ ॥
अपणे पिव के कारणे, दादू तन मन देइ।
तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा प्यंड परान।
सब कुछ तेरा तू है मेरा, यहु दादू का ज्ञान ॥
(दादू) नीच ऊँच कुल सुदरी, सेवा सारी होइ।
सोई सोहागनि कीजिये, रूप न पीजै धोइ ॥

माँस अहार

माँस अहारी मद पिवै, बिषै विकारी सोइ।
दादू आतम राम बिन, दया कहा थैं होइ ॥
आपन कौ मारै नहीं, पर कौं मारन जाहि।
दादू आपा मारै बिना, कैसे मिलै खुदाय ॥

दया

काल जाल थैं काढ़ि कारि, आतम अगि लगाइ।
जीव दया यहु पालिये, दादू अमृत खाइ ॥
भवहीणा जे पिरथमी, दया बिहूणा देस।
भगति नहीं भगवंत की, तहँ कैसा परवेस॥
काला मुँह करि करद का, दिल थैं दूरि निवार।
सब सूरति सुबहान की, मुल्लॉ गुग्ध न मोरि ॥

दुर्जन

निगुणा गुण मानै नहीं, कोटि करै जे कोइ।
दादू सब कुछ सौंपिये, सो फिर बैरी होइ ॥
दादू सगुणा लीजिये, निगुणा दीजै डारि।
सगुणा सन्मुख राखिये, निर्गुण नेह निवारि ॥
दादू दूध पिलाइये, बिषहर बिष करि लेइं।
गुण का अवगुण करि लिया, ताही कौं दुख देइ ॥
मूसा जलता देख करि, दादू हंस-दयाल।
मानसरोवर ले चल्या, पंखा काटै काल ॥

मध्य

सहज रूप मन का भया, जब द्वै द्वै मिटी तरंग।
ताता सीला सम भया, तब दादू एकै अंग ॥
कुछ न कहावै आप कौं, काहू संगि न जाइ।
दादू निर्पष ह्वै रहै, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥

ना हम छाड़ै ना गहैं, ऐसा ज्ञान विचार।
मद्धि भाइ सेवैं सदा, दादू मुकति दुवार॥
बैरागी मन मे बसै, घरबारी घर माहिं।
राम निराला रहि गया, दादू इनमै नाहिं॥

सतसंग दुर्जन को

सतगुर चंदन बावना, लागे रहै भुवंग।
दादू विष छाड़ै नहीं, कहा करै सतसग॥
कोटि बरस लौ राखिये, बसा चदन पास।
दादू गुण लीये रहै, कदै न लागै बास॥
कोटि बरस लौं राखिये, लोहा पारस संग।
दादू रोम का अंतरा, पलटै नाहीं अंग॥
कोटि बरस लौं राखिये, पत्थर पानी माँहिं।
दादू आड़ा अग है, भीतर भेदै नाहिं॥

घटमठ

(दादू) जा कारन जग ढूँढ़िया, सो तौ घट ही माहिं।
मैं तैं पड़दा भरम का, ता थै जानत नाहिं॥
सब घटि माहैं रमि रह्या, विरला बूझै कोइ।
सोई बूझै राम को, जो राम सनेही होइ॥

साध

साधू जन संसार में, पारस परगट पाइ।
दादू केते ऊधरे, जेते परसे आइ॥
साधू जन संसार मे, सीतल चंदन वास।
दादू केते ऊधरे, जे आये उन पास॥
जहँ अरंड अरु आक थे, तँह चदन ऊग्या माहिं।
दादू चंदन करि लिया, आक कहै को नाहिं॥
साध मिलै तब ऊपजै, हिरदे हरि का हेत।
दादू संगति साध की, कृपा करै तब देत॥
जब दखौ तब दीजियौ, तुम पैं माँगौं येहु।
दिन प्रति दरसन साध का, प्रेम भगति दिढ़ देहु॥
दादू चदन करि रह्या, अपणाँ प्रेम प्रकास।
दस दिसि परगट ह्वै रह्या, सीतल गंध सुवास॥
पर उपगारो संत सब आये यहि कलि माँहि।
पिवैं पिलावैं राम रस, आप सुवारथ नाहिं॥

साध सबद सुख बरखि है, सीतल होइ सरीर।
दादू अंतर आतमा, पीवै हरि जल नीर॥
औगुण छाड़ै गुण गहै, सोई सिरोमणि साध।
गुण औगुण थैं रहति है, सो निज ब्रह्म अगाध॥
बिष का अमृत करि लिया, पावक का पाणी।
बाँका सूधा करि लिया, सो साध बिनाणी॥

सार गहनी

पहिली न्यारा मन करै, पीछै सहज सरीर।
दादू हंस बिचार सौं, न्यारा कीया नीर॥
मन हस मोती चुणै, ककर दीया डारि।
सतगुरु कहि समझाइया, पाया भेद बिचारि॥
दादू हसा परेखिये, उत्तिम करणी चाल।
बगुला वैसे ध्यान धरि, परतषि कहिये काल॥
गऊ बच्छ का ग्यान गहि, दूध रहै ल्यौ लाइ।
सींग पूछ पग परिहरै, अस्थन लागै धाइ॥

सेवक

सेवग सेवा करि डरै, हम थैं कछू न होइ।
तूँ है तैसी बंदगी, करि नहिं जानै कोय॥
फल कारण सेवा करै, याचै त्रिभुवन राव।
दादू सो सेवग नहीं, खेलै अपना डाव॥
सूरज सन्मुख आरसी, पावक किया प्रकास।
दादू साँई साध बिच, सहजैं निपजै दास॥

भेष

ज्ञानी पडित बहुत हैं, दाता सूर अनेक।
दादू भेष अनत हैं, लागि रह्या सो एक॥
कनक कलस बिष सूँ भरया, सो किस आवै काम।
सो धनि कूटा चाम का, जा में अमृत राम॥
स्वाँग साध बहु अतरा, जेता धरनि अकास।
साधू राता राम सूँ, स्वाँग जगत की आस॥
(दादू) स्वाँगी सब ससार है, साधू कोई एक।
हीरा दूरि दिसतरा, ककर और अनेक॥
दादू एकै आतमा, साहिब है सब माहिं।
साहिब के नाते मिलै, भेष पथ के नाहिं॥

(दादू) जग दिखलावै बावरी, षोड़स करै सिंगार।
तहँ न सँवारै आप कूँ, जहँ भीतर भरतार॥

प्रेम

प्रम भगति जब ऊपजै, निहचल सहज समाध।
दादू पीवे प्रेम रस, सतगुर के परसाद॥
दादू राता राम का, पीवै प्रेम अघाइ।
मतवाला दीदार का, मागै मुक्ति बलाइ॥
ज्यूँ अमली के चित अमल है, सूरे के संग्राम।
निरधन के चित धन बसै, यों दादू के राम॥
जो कुछु दिया हम कौं, सो सब तुमहीं लेहु।
तुम बिन मानै नहीं, दरस आपड़ा देहु॥
भोरे भोरे तन करै, वडै करि कुरबाण।
मीठा कौड़ा ना लगै, दादू तोहू साण॥
जब लग सीस न सौंपिये, तब लग इसक न होइ।
आसिक मरणै ना डरै, पिया पियाला सोइ॥
इसका मुहब्बत मस्तमन, तालिब दर दीदार।
दोस्त दिल हरदम हजूर, यादगार हुसियार॥
दादू इसक अलाह का, जे कबहूँ प्रगटै आय।
(तौ) तन मन दिल अरवाह का, सब पड़दा जलि जाय॥
दादू पाती प्रेम की, बिरला बाचै कोइ।
बेद पुरान पुस्तक पढ़ैं, प्रेम बिना क्या होइ॥
प्रीती जो मेरे पीव की, पैठी पिंजर माहिं।
रोम रोम पिव पिव करै, दादू दूसर नाहिँ॥
आसिक मासूक है गया, इसक कहावै सोइ।
दादू उस मासूक का, अल्लहि आसिक होइ॥
इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
इसक अहल औजूद है, इसक अलह का रंग॥

बिभिचारिन

नारी सेवग तब लगैं, जब लग साईं पास।
दादू परसै आन को, ताकी कैसी आस॥
कीया मन का भावतों, मेटी आज्ञा कार।
क्या मुख ले दिखलाइये, दादू उस भरतार॥
पतिब्रता के एक है, बिभिचारणि के दोइ।
पतिब्रता बिभिचारणी, मेला क्यों करि होइ॥

पुरिष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग।
जे जे जैसी ताहि सौं, खेलै तिस ही रंग॥

करनी और कथनी

दादू कथड़ी और कुछ, करणी करै कुछ और।
तिन थैं मेरा जिव डरै, जिनके ठीक न ठौर॥

मान

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार।
निरवैरी सब जीव सौं, दादू यहु मति सार॥
किस सौं वैरी है रह्या, दूजा कोई नाहिं।
जिसके अग थैं ऊपज्या, सोई है सब माहिं॥
जहाँ राम तहँ मैं नहीं, मैं तहँ नाहीं राम।
दादू महल बरीक है, दुइ को नाहीं ठाम॥

उपदेश

पहिली था सो अब भया, अब सो आगै होइ।
दादू तीनौं ठौर को, बूझै विरला कोइ॥
जे मन वेधे प्रीति सौं, ते जन सदा सजीव।
उलटि सामने आप में, अंतर नाहीं पीव॥
देह रहै संसार में, जीव राम के पास।
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुख त्रास॥
दादू छूटै जीवतों, मूओं छूटै नाहिँ।
मूओं पीछैं छूटिये, तौ सब आये उस माहिँ॥
संगी सोई कीजिये, जे इस्थिर इहि ससार।
ना वहु खिरै न हम खपैं, ऐसा लेहु विचार॥
संगी सोई कीजिये, सुख दुख का साथी।
दादू जीवण मरण का, सो सदा संगाती॥
कबहूँ न विहड़ै सो भला, साधू दिढ़ मति होइ।
दादू हीरा एक रस, बाधि गाठड़ी सोइ॥

मिश्रित

आपा उरझैं उरझिया, दीसै सब संसार।
आपा सुरझैं सुरझिया, यहु गुर ग्यान विचार॥
सब गुण सब ही जीव के, दादू व्यापैं आइ।
घर माहैं जामै मरै, कोइ न जाणै ताहि॥

दादू बेली आत्मा, सहज फूल फल होइ।
सहज सहज सतगुर कहै, बूझै बिरला कोइ॥
हरि तरवर तत आतमा, बेली करि बिस्तार।
दादू लागै अमर फल, कोइ साधू सीचणहार॥
दया धर्म का रूखड़ा, सत सौं बधता जाइ।
संतोष सौं फूलै फलै, दादू ऊमर फल खाइ॥
माया बिहड़ै देखतौं, काया सग न जाइ।
कृत्तम बिहड़ै बावरे, अजरावर ल्यौ लाइ॥
जेते गुड़ ब्यापैं जीवकौं, तेते तैं तजै रे मन।
साहिब अपड़े कारणे, भलो निबाह्यो पन॥

पारख

(दादू) जैसे माहैं जिव रहै, तैसी आवै बास।
मुख बोलै कब जाणिये, अंतर का परकास॥
मति बुधि बिवेक बिचार बिन, माणस पसू समान।
समझाया समझै नहीं, दादू परम गियान॥
काचा उछलै ऊफड़ै, काया हाँडी माहिं।
दादू पाका मिलि रहै, जीव ब्रह्म द्वै नाहिं॥
अंधे हीरा परखिया, कीया कौड़ी मोल।
दादू साधू जौहरी, हीरे मोल न तोल॥
(दादू) साहिब कसै सेवग खरा, सेवग कौं सुख होइ।
साहिब करै सो सब भला, बुरा न कहिये कोइ॥

माया

साहिब है पर हम नहीं, सब जग आवै जाइ।
दादू सुपिना देखिये, जागत गया बिलाइ॥
(दादू) माया का सुख पच दिन, गर्ब्यौ कहा गँवार।
सुपिनैं पायो राज धन, जात न लागै बार॥
कालरि खेत न नीपजै, जे बाहै सौ बार।
दादू हाना बीज का, क्या परि मरै गँवार॥
राहु गिलै ज्यौं चंद कौं, गहन गिलै ज्यौं सूर।
कर्म गिलै यौ जीव कौं, नखसिख लागै पूर॥
कर्म कुहाडा अंग बन, काटत बारंबार।
अपने हाथौं आप कौं, काटत है संसार॥
(दादू) सब को बंड़ि जै खार खलि, हीरा कोइ न लेइ।
हीरा लेगा जौहरी, जो माँगे सो देइ॥

सुर नर मुनियर बसि किये, ब्रह्मा बिस्नु महेस।
सकल लोक के गिर खड़ी, साधू के पग हेठ॥
(दादू) पहिली आप उपाई करि, न्यारा पद निर्बाण।
ब्रह्मा बिस्नु महेस मिलि बध्या सकल बधाण॥
दादू बाधे बेद बिधि, भरम करम उरझाइ।
मरजादा माहैं रहै, सुमिरण किया न जाइ॥
(दादू) माया मीठी बोलणी, नै नै लागै पाँइ॥
दादू पैसे पेट में, काढ़ि कलेजा खाइ॥
भँवरा लुब्धी बास का, कँवल बँधाना आइ।
दिन दस माहैं देखता, दून्यू गये बिलाइ॥

परिचय

(दादू) निरंतर पिउ पाइया, तीन लोक भरिपूर।
सब सेजौं साईं बसैं, लोग बतावै दूरि॥
दादू देखौं निज पीव कौं, दूसर देखौं नाहिं।
सबै दिसा सौं सोधि करि, पाया घट ही माहि॥
झुहुप प्रेम बरिषैं सदा, हरि जन खेलैं फाग।
ऐसा कौतिग देखिये, दादू मोटे भाग॥
(दादू) देही माहे दोइ दिल, इक खाकी इक नूर।
खाकी दिल सूझै नहीं, नूरी मझि हजूर॥
(दादू) जब दिल मिला दयाल सौं, तब अंतर कुछ नाहिं।
ज्यों पाला पानी कौं मिल्या, त्यौं हरि जन हरि माहिं॥

मन

साईं सूर जे मन गहै, निमखि न चलने देइ।
जब हीं दादू पग भरै, तब हीं पाकडि लेइ॥
जब लगि यहु मन थिर नहीं, तब लगि परस न होइ।
दादू मनवाँ थिर भया, सहजि मिलैगा सोइ॥
यहु मन कागज की गुड़ी, उडि चढी आकास।
दादू भीगै प्रेम जल, तब आइ रहै हम पास॥
सो कुछ हम थैं ना भया, जा पर रीझै राम।
दादू इस संसार में, हम आए बेकाम॥
इंद्री स्वारथ सब किया, मन माँगै सो दीन्ह।
जा कारण जग सिरजिया, सो दादू कछू न कीन्ह॥
(दादू) ध्यान धरें का होत है, जे मन नहिं निर्मल होइ।
तौ बग सबहीं ऊधरैं, जे यहि बिधि सीझै कोइ॥

(दादू) जिसका दर्पण ऊजला, सो दर्पण देखै माहिँ ।
जिसकी मैली आरसी, सो मुख देखै नाहिँ ॥
जागत जहँ जहँ मन रहै, सोवत तहं तहं जाइ ।
दादू जे जे कन बसै, सोइ सोइ देखै आइ ॥
जहँ मन राखै जीवताँ, मरताँ तिस घरि जाइ ।
दादू बासा प्राण का, जहं पहली रह्या समाइ ॥
जीवन लूटै जगत सब, मिरकत लूटैं देव ।
दादू कहाँ पुकारिये करि करि मूए सेव ॥

निंदा

(दादू) जिहि घर निंद्या साध की, सो घर गये समूल ।
तिनको नीव न पाइये, नाँव न ठाँव न धूल ॥
(दादू) निंद्या नाँव न लीजिये, सुपनै हीं जिनि होय ।
ना हम कहैं न तुम सुणौ, हम जिनि भाखै कोइ ॥
अणदेख्या अनरथ कहैं, कलि प्रथमी का पाप ।
धरती अंबर जब लगैं, तब लग करैं कलाप ॥
(दादू) निंदक बपुरा जिन मरै, पर उपकारी सोइ ।
हम कूँ करता ऊजला, आपण मैला होइ ॥

सूरमा

(दादू) जे मुझ होते लाख सिर, तौ लाखौं देती वारि ।
रह मुम दीया एक सिर, सोई सौंपे नारि ॥
सूरा चढ़ि संग्राम कौं, पाछा पग क्यों देइ ।
साहिब लाजै भाजताँ, धृग जीवन दादू तेइ ॥
काइर काम न आवई, यहु सूरे का खेत !
तन मन सौंपै राम कौ, दादू सीस सहेत ॥
जब लग लालच जीवका, 'तब लग) निर्भय हुआ न जाइ ।
काया माया तन तजै, तब चैड़े रहै बजाइ ॥
काया कबज कमान करि, सार सबद करि तीर ।
दादू यहु सर साँधि करि, मारै मोटे मीर ॥
(दादू) तन मन काम करीम के, आवै तौ नीका ।
जिस का तिस कौ सौंपिये सोच क्या जी का ॥
दादू पाखर पहरि करि, सब कों झूझण जाइ ।
अंगि उघाड़ै सूरिवाँ, चोट मुँहै मुँह खाइ ॥
(दादू कहै) जे तू राखै साइयाँ, तौ मारि न सक्कै कोइ ।
बाल न बंका करि सकै, जे जग बैरी होइ ॥

सर्व समरथ

जिनि सत छाड़ै बावरे, पूरिक है पूरा।
सिरजे की सब चिंत है, देवे कौं सूरा॥ टेक॥
गर्भ वास जिन राखिया, पावक थैं न्यारा।
जुगति जतन करि सींचिया, दे प्राण अधारा॥
कुंज कहाँ धरि संचरै, तहँ को रखवारा।
हेम हरत जिन राखिया, सो खसम हमारा॥
जल थल जीव जिते रहैं, सो सब कौं पूरै।
संपट सिला में देत है, काहें नर झूरै॥
जिन यहु भार उठाइया, निरबाहै सोई।
दादू छिन न बिसारिये, ता थैं जीवन होई॥

नाम और सुमिरन

मनाँ भजि राम नाम लीजे।
साध संगति सुमिरि सुमिरि, रसना रस पीजे।
साधू जन सुमिरण करि, केते जपि जागै॥
अगम निगम अमर किये, काल कोइ न लागे।
नीच ऊंच चिंतन करि, सरणागति लीये॥
भगति मुकति अपणी गति, ऐसें जन कीये।
केते तिरि तीर लागे, बंधन भव छूटे॥
कलिमल विष जुग जुग के, राम नाम खूटे॥
भरम करम सब निवारि, जीवन जपि सोई।
दादू दुख दूर करण, दूजा नहिं कोई॥

नाँउ रे नाँउ रे सकल सिरोमणि नाँउ रे,
मैं बलिहारी जाँउ रे॥ टेक॥
दूतर तारै पारि उतारै, नरक निवारै नाँउ रे।
तारणहार भौजल पारा, निर्मल सारा नाँउ रे॥

नूर दिखावै तेज मिलावै, जोति जगावै नाँउ रे।
सब सुख दाता अमृत राता, दादू माना नाँउ रे॥

चितावनी

काया रे करंक परि बोलै।
खाइ मास अरु लगहीं डोलै॥ टेक॥
जा तन कौं रचि अधिक सँवारा।
सो तन ले माटी में डारा॥
जा तन देखि अधिक नर फूले।
सो तन छांड़ि चल्या रे भूले॥
जात न देखि मन मे गरबाना।
मिलि गया माटी तजि अभिमाना॥
दादू तन की कहा बड़ाई।
निमख माहीं माटी मिलि जाई॥

सजनी रजनी घटनी जाइ।
पल पल छीजै अवधि दिन आवै, अपनौं लाल मनाइ॥ टेक॥
अति गति नींद कहा सुख सोवै, यहु औसर चलि जाइ।
यहु तन बिछुरें बहुरि कहँ पावै, पीछैं ही पछिताइ॥
प्राण पति जागै सुंदरि क्यो सोवै, उठि आतुर गहि पाइ।
कोमल बचन करुणा करि आगैं, नख सिख रहु लपटाइ॥
सखी सुहाग सेज सुख पावै, प्रीतम प्रेम बढाइ।
दादू भाग बड़ें पिव पावै, सकल सिरोमणि राइ॥

मन रे राम बिना तन छीजै।
जब यहु जाइ मिलै माटी में, तब कहु कैसें कीजै॥ टेक॥
पारस परसि कंचन करि लीजै, सहज सुरति सुखदाई।
माया बेलि बिषै फल लागे, तापर भूलि न भाई॥
जब लग प्राण प्यंड है नीका, तब लग ताहि जिनि भूलै।
यहु संसार सेंवल कै सुख ज्यूं, ता पर तू जिनि फूलै॥
औरं येह जानि जग जीवन, समझि देखि सचु पावै।
अग अनेक आन मति भूलै, दादू जिनि डहकावै॥

प्रेम

बाला सेज हमारी रे, तूँ आव हौं वारी रे।
हौं दासी तुम्हारी रे ॥ टेक ॥
तेरा पंथ निहारूँ रे, सुँदर सेज सँवारूँ रे।
जियरा तुम पर वारूँ रे ॥
तेरा अँगना पेखौं रे, तेरा मुखड़ा देखौं रे।
जब जीवन लेखौ रे ॥
मिलि सुखड़ा दीजै रे, यह लाहड़ा लीजै रे।
तुम देखैं जीजै रे ॥
तेरे प्रेम की माती रे, तेरे रगड़े राती रे।
दादू वारणैं जाती रे ॥

तेरे नाउ की बलि जाऊँ, जहा रहौं जिस ठाऊँ ॥ टेक ॥
तेरे बैनौं की बलिहारी, तेरे नैनहुँ ऊपरि वारी।
तेरी मूरति की बलि कीती, वारि वारि है दीती ॥
सोभित नूर तुम्हारा, सुदर जोति उजारा।
मीठा प्राण पियारा, तूँ है पीव हमारा ॥
तेज तुम्हारा कहिये, निर्मल काहे न लहिये।
दादू बलि बलि तेरे, आव पिया तूँ मेरे ॥

हरि रस माते मगन भये।
सुमिरि सुमिरि भये मतवाले, जामण मरण सब भूलि गये ॥
निर्मल भगति प्रेम रस पीवैं, आन न दूजा भाव धरै।
सहजैं सदा राम रँगि राते, मुकति बैकुंठै कहा करैं ॥
गाइ गाइ रसलीन भये हैं, कछू न माँगैं संत जनाँ।
और अनेक देहु दत आगै, आन न भावै राम विनाँ ॥
इकटग ध्यान रहै ल्यौ लागे, छाकि परे हरि रस पीवैं।
दादू मगन रहैं रसमाते, ऐसै हरि के जन जीवैं ॥

विरह

अजहुँ न निकसै प्राण कठोर ॥ टेक ॥
दरसन विना बहुत दिन बीते, सुदर प्रीतम मोर।
चारि पहर चारौ जुग बीते, रैनि गँवाई मोर ॥

अवधि गई अजहूँ नहिं आए, कतहुँ रहे चित चोर।
कबहूँ नैन निरखि नहिँ देखे मारग चितवत तोर॥
दादू ऐसे आतुर बिरहणि, जैसे चद चकोर।

आवौ राम दया करि मेरे, बार बार बलिहारी तेरे॥ टेक॥
बिरहनि आतुर पंथ निहारै, राम राम कहि पीव पुकारै।
पथी बूझै मारग जोवै, नैन नीर जल भरि भरि रोवै॥
निस दिन तलफै रहै उदास, आतम राम तुम्हारे पास।
बप बिसरै तन की सुधि नाहीं, दादू बिरहनि मिरतक माहीं॥

कतहूं रहे हो बिदेस, हरि नहिँ आये हो।
जनम सिरानौ जाइ, पिव नहि पाये हो॥
बिपति हमारी जाइ, हरि सौं को कहै हो।
तुम्ह बिन नाथ अनाथ, बिरहनि क्यूँ रहै हो॥
पिव के बिरह बियोग, तन की सुधि नहिँ हो।
तलफि तलफि जिव जाइ, मिरतक ह्वै रही हो॥
दुखित भई हम नारि, कब हरि आवैं हो।
तुम्ह बिन प्राण अधार, जिव दुख पावै हो॥
प्रगटहु दीनदयाल, बिलम न कीजै हो।
दादू दुखी बेहाल, दरसन दीजै हो॥

कौण बिधि पाइये रे, मीत हमारा सोइ॥ टेक॥
पास पीव परदेस है रे, जब लग प्रगटै नाहिँ।
बिन देखे दुख पाइये, यहु सालै मन माहिँ॥
जब लग नैन न देखिये, परगट मिलै न आइ।
एक सेज संगहि रहै, यहु दुख सह्या न जाइ॥
तब लग नेड़े दूरि है, जब लग मिलै न मोहिँ।
नैन निकट नहिँ देखिये, संगि रहे क्या होइ॥
कहा करौं कैसे मिलै रे, तलफै मेरा जीव।
दादू आतुर बिरहनी, कारण अपने पीव॥

विनय

हमरे तुमहीं हौ रखपाल।
तुम बिन और नहीं कोउ मेरे, भौ दुख मेटणहार॥

बैरी पंच निमष नहिँ न्यारे, रोकि रहे जम काल।
हा जगदीस दास दुख पावै, स्वामी करो सँभाल॥
तुम बिन राम दहैं ये दुंदर, दसौ दिसा सब साल।
देखत दीन दुखी क्यों कीजे, तुम हौ दीनदयाल॥
निर्भय नाँव हेत हरि दीजे, दरसन परसन लाल।
दादू दीन लीन करि लीजे, मेटहु सबै जँजाल॥

क्यौं बिसरै मेरा पीव पियारा।
जीव कि जीवन प्राण हमारा॥ टेक॥
क्यौं कर जीवै मीन जल बिछुरे, तुम बिन प्राण सनेही।
च्यंतामणि जब कर थैं छूटै, तब दुख पावै देही॥
माता बालक दूध न देवै, सो कैसें करि पीवै।
निर्धन का धन अनत भुलाना, सो कैसैं करि जीवै॥
परखहु राम सदा सुख अमृत, नीझर निर्मल धारा।
प्रेम पियाला भरि भरि दीजे, दादू दास तुम्हारा॥

घट मठ

भाई रे घर ही में घर पाया॥
सहजि समाइ रह्या ता माहीं, सतगुरु खोज बताया॥
ता घर काज सबै फिरि आया आपै आप लखाया।
खोलि कपाट महल के दीन्हे, थिर अस्थान दिखाया॥
भय औ भेद भरम सब भागा, साच सोई मन लाया।
प्यंड परे जहा जिव जावै, ता में सहज समाया॥
निहचल सदा चलै नहिँ कबहूं, देख्या सब में सोई।
ताही सू मेरा मन लागा, और न दूजा कोई॥
आदि अंत सोई घर पाया, इब मन अनत न जाई।
दादू एक रँगै रंग लागा, तामें रह्या समाई॥

मन

मेरे तुमहीं राखणहार, दूजा को नहीं।
ये चंचल चहुँ दिसि जाइ, काल तहीं तहीं॥ टेक॥
मैं केते किये उपाइ, निहचल ना रहै।
जहँ बरजौं तहँ जाइ, मदमातौ बहै॥

जहँ जाणै तहँ जाइ, तुम थ ना डरै।।
ता स्यौं कह्या बसाइ, भावै त्यू करै ।।
सकल पुकारैं साध, मैं केता कह्या ।
गुर अंकुस मानै नाहिँ, निरभै है रह्या ।।
तुम बिन और न कोइ, इस मन को गहै ।
तूँ राखै राखणहार, दादू तौ रहै ।।

करम धरम

मूल सींचि बधै ज्यूँ बेला सो तत तरवर रहै अकेला ।। टेक ।।
देवी देखत फिरैं ज्यूँ भूले खाइ हलाहल बिष कौं फूले ।
सुख कौं चाहै पड़ै गल पासी, देखत हीरा हाथ थैं जासी ।।
केइ पूजा रचि ध्यान लगावै, देवल देखैं खबरि न पावैं ।
तोरैं पाती जुगति न जानी, इहि भ्रमि रहे भूलि अभिमानी ।।
तीरथ बरत न पूजै आसा, बनखडि जाहीं रहैं उदासा ।
यूँ तप करि करि देह जलावैं, भरमत डोलैं जनम गवावैं ।।
सतगुर मिलै न संसा जाई, ये बंधन सब देइ छुड़ाई ।
तब दादू परम गति पावै, सो निज मूरति माहिँ लखावै ।।

जगत मिथ्या

मन रे तूँ देखै सो नाहीं, है सो अगम अगोचर माहीं ।। टेक ।।
निस अँधियारी कछू न सूझै, ससै सरप दिखावा ।
ऐसैं अंध जगत नहि जानै, जीव जेवड़ी खावा ।।
मृग-जल देखि तहाँ मन धावै, दिन दिन झूठी आसा ।
जहँ जहँ जाइ तहाँ जल नाहीं, निहचै मरै पियासा ।।
भरम बिलास बहुत बिधि कीन्हा, ज्यौं सुपिनैं सुख पावै ।
जागत झूठ तहाँ कुछ नाहीं, फिरि पीछैं पछितावै ।।
जब लग सूता तब लग देखै, जागत भरम बिलाना ।
दादू अत इहाँ कुछ नाहीं, है सो सोधि सयाना ।।

निंदक

न्यंदक बाबा बीर हमारा, बिनहीं कौड़े बहै बिचारा ।
कर्म कोटि के कुसमल काटै, काज सवारै बिनहीं साटै ।
आपण डूबै और कौं तारै, ऐसा प्रीतम पार उतारै ।।
जुगि जुगि जीवौ न्यदक मोरा, राम देव तुम करौ निहोरा ।
न्यंदक बपुरा पर-उपगारी, दादू न्यद्या करै हमारी ।।

कपट भक्ति

हम पाया हम पाया रे भाई।
भेष बनाइ ऐसी मनि आई ॥ टेक ॥
भीतर का यहु भेद न जानै।
कहै सुहागनि क्यूँ मन मानै ॥
अंतर पीव सौं परचा नाही।
भई सुहागनि लोगन माही ॥
साईं सुपिनै कबहु न आवै।
कहिबा ऐसैं महल बुलावै ॥
इन बातन मोहिं अचिरज आवै।
पटम किये पिव कैसैं पावै ॥
दादू सुहागनि ऐसैं कोई।
आपा मेटि राम रत होई ॥

सुंदरदास

सुंदरदास

कहा जाता है कि बाबा दादू दयाल के ५२ शिष्य थे और उनमें से एक प्रधान शिष्य सुंदरदास जी भी थे। इनका जन्म द्योसा (जयपूर राज्य) में चैत्र शुक्ला नवमी सं० १६५३ में हुआ था। इनके पिता का नाम परमानंद और माता का सती देवी था। यह लोग बूसर गोत्र के खंडेलवाल वैश्य थे। इनकी माता का जन्म एक सोंकिया गोत्र के खंडेलवाल महाजन के यहां हुआ था। इनकी उत्पत्ति के संबध में भी एक अलौकिक सी कथा प्रसिद्ध है। पहले साधुओं में यह प्रथा थी कि जब कपड़े की आवश्यकता पड़ती थी तो लोगों के यहां से सूत मांग लिया करते थे। जग्गा नाम का दादू का एक शिष्य एक दिन सूत इकट्ठा करने के अभिप्राय से संयोग से सती देवी के द्वार पर उपस्थित हुआ और फ़क़ीरों की सधुकड़ी बोली में सवाल किया—

'दे माई सूत ले माई पूत'

सयोग से कुमारी सती देवी उस समय बैठी चरखा कात रही थी। उसने बालिकोचित सरल भाव से अपने कते हुए सूत से थोड़ा सा निकाल कर जग्गा को देते हुए कहा—'लो बाबाजी सूत'। बाबाजी के मुंह से भी निकल पड़ा—'ले माई पूत'। लौट कर जग्गा ने यह वृत्तांत अपने गुरु दादू को सुनाया। उन्होंने ध्यान से जब इस विषय पर विचारा तो बड़े सकट में पड़े। कहने लगे जग्गा तूने यह क्या वचन दे डाला, उस लड़की के भाग्य मे तो पुत्रवती होना लिखा ही नहीं है, पर अब तेरे बचन की रक्षा तो होनी ही चाहिए। अब यही एक उपाय है कि तू ही जाकर सती के गर्भ में बास कर। जग्गाजी ने उदास होकर कहा जो आज्ञा पर अपने चरण से अलग न करियेगा। दादू ने उसे ढाढ़स देते हुए कहा कि कोई चिंता नहीं, तू जाकर सती के माता पिता से यह कह आ कि सती के विवाह के समय वह उसके पति तथा सास ससुर को यह जता दें कि इस संबध से जो प्रथम पुत्र होगा वह परम भक्त होगा और ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही वैराग्य ले लेगा।

उपर्युक्त कथानक के सत्यासत्य पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, पर इतना तो तथ्य है कि सती का ब्याह जयपूर राज्यांतगत धौसा (जयपूर राज्य की पुरानी राजधानी) परमानंद नामक महाजन से हुई थी और दादू की मृत्यु के प्रायः ७ वर्ष पहले (सं० १६५३) सुंदर दास का जन्म हुआ और यह बालक सं० १६५९ में दादू के दर्शन के थोड़े दिन बाद ही घर बार छोड़ विरक्त हो

विद्याभ्यास के लिये काशी चल पड़ा था। इस वृत्तांत की पुष्टि भक्तमाल में आए हुए राघवदास के निम्नलिखित पद्य से होती है—

दिवसा है नग्र चोखा बूसर है साहूकार,
सुंदर जनम लियो ताहि घर आइ कै।
पुत्र की चाहि पति दई है जनाइ,
त्रिया कह्यो समुझाइ स्वामी कहौ सुखदाइ कै॥
स्वामी मुख कही सुत जनमैगो सही,
पै बिराग लैगो वही घर रहै नहीं माइ कै।
एकादस बरस में त्याग्यो घर माल सब,
वेदांत पुरान सुने बारानसी जाइ कै॥

कुछ विद्वानों की धारणा है कि सं० १६५९ में जब दादू जी द्यौसा गए थे उसी समय ये दादू के शिष्य हो गए और उन्हीं के साथ निकल पड़े और नराणा में उनके स्वर्गवास (सं० १६६०) तक बराबर उन्हीं के साथ रहे। कहते हैं कि पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार ही परमानंद (सुंदरदास के पिता) ने पुत्र को दादू के चरणों मे समर्पित कर दिया। दादू ने पुत्र को प्यार करते हुए कहा यह बालक तो बड़ा सुदर है। किसी किसी के अनुसार इनके प्रथम शब्द यह थे 'अरे सुंदर तू आगया' (अर्थात् जगा तू सुंदर के रूप मे अथवा सुदर रूप मे पुनः प्रगट हो गया) कहते हैं दादू के प्यार करते ही सुदर के शरीर की कांति सहस्रधा बढ़ गई और उसका मन भी परिवर्तित हो गया और उसने मरते दम तक दादू का साथ न छोड़ा। इनके सौम्य और सुश्री रूप की प्रशसा बहुत प्रबल है और जान पड़ता है वास्तव में यह 'सुदर' रहे होगे। इनका नाम 'सुंदर' दादू का रक्खा हुआ ही कहा जाता है।

कहते हैं दादू जी की मृत्यु के बाद उनके पुत्र और उत्तराधिकारी गरीबदासजी ने ईर्ष्यावश सुदर का कुछ अपमान किया था जिससे खिन्न हो यह कुछ दिन के लिये एक बार फिर अपने माता पिता के पास चले आए थे और प्रायः तीन या चार वर्ष घर में ही रहे पर हरिचर्चा के सिवाय इनका और कोई काम न था। अत मे सं० १६६४ में जब सुंदरदास जी लगभग ग्यारह वर्ष के रहे होंगे, यह जगजीवन नाम के एक सस्कृत के विद्वान् के सपर्क मे आए। उसने इन्हें काशी चलकर विद्याध्ययन की सलाह दी और ये तैयार भी हो गए। कहा जाता है तब से लेकर १९ वर्ष तक (स० १६८३ तक) इन्होंने काशी के प्रकांड पंडितों के यहां संस्कृत साहित्य का व्यापक और गभीर अध्ययन किया। साथ ही वहां के साधु-संतों का सतसंग भी खूब किया। सं० १६८३ के लगभग यह फिर राजपुताने लौटे और फतेहपुर के शेखावाटी नामक स्थान पर अपने एक पुराने गुरु भाई बाबा प्रागदास के साथ रहने लगे। वहां पर महाजनों का इनकी स्मृति मे बनवाया हुआ एक पक्का

मकान और एक कुँआ अब भी मौजूद है। यहाँ पर वह प्रायः १५ वर्ष तक रहे। सं० १६९९ में इनके प्रिय सुहृद् बाबा प्रागदास जी की मृत्यु हो गई और इसके बाद इनका जी शेखावाटी से उचट गया और फिर इन्होंने देशाटन और सत्संग में अपना जीवन बिताना आरंभ किया। उत्तरीय भारत, पंजाब और राजपुताने में ही इनके अधिक घूमने के प्रमाण मिलते हैं। गुजरात और काठियावाड़ प्रांतों में भी इनके घूमने के प्रमाण मिले हैं।

घूम फिर कर इन्होंने फिर कुछ दिन फतेहपुर में निवास किया था पर अंत में सं० १७४० मे यह साँगानेर (जयपुर से ८ मील दक्खिन) चले गए। वहाँ दादू के एक प्रधान शिष्य रज्जब जी रहते थे। यहीं पर उन्होंने अपने अंतिम दिन काटे। इस समय इनकी अवस्था ९० वर्ष के ऊपर थी। स० १७४६ में यह कुछ रोगग्रस्त हुए और बीमारी बढ़ती ही गई पर साथियों के बहुत आग्रह करने पर भी इन्होंने गुरु और ईश्वर गुण गान के अतिरिक्त किसी औषधि का सेवन नहीं किया और अंत में उसी साल कार्तिक सुदी अष्टमी वृहस्पतिवार के दिन परलोक सिधारे। इन्होंने अंत समय जो बचन कहे थे वह 'अंत समय की साखी' के नाम से प्रसिद्ध हैं और प्रस्तुत संग्रह में दिए गए हैं।

इनका रचनाकाल इनके काशी से लौटने के बाद आरंभ होता है। संत कवियों में यही एक ऐसे थे जिनकी शिक्षा और प्रतिभा दोनों ही विलक्षण थीं। इसके सिवा शास्त्रोक्त काव्यकला में भी यही एक प्रवीण थे। अन्य संत कवियों की भांति इन्होने केवल भजन के योग्य शब्द और पद ही नहीं कहे हैं। उच्चकोटि के प्रथम श्रेणी के कवियों के समकक्ष इन्होंने अनेक कवित्त सवैये भी रचे हैं। भाषा भी इनकी वही सधुक्कड़ी बोली नहीं बल्कि सुंदर मँजी हुई सुव्यवस्थित पर ईषत् राजस्थानी-रंजित व्रजभाषा है। सारांश यह कि भक्तिरस के साथ साथ उच्च कोटि की साहित्यिकता का परिचय देने वाले यही एक संत कवि हो गए हैं। इनके कवित्त सवैयों में, यमक, अनुप्रास, श्लेष आदि तथा विविध अर्थालंकारों की भी अच्छी बहार देखने में आती है। और सब तो केवल संत थे, पर ये संत तो थे ही, साथ ही प्रथम श्रेणी के कवि और विद्वान् भी थे। यही कारण था कि इनकी रचना में इस प्रकार देशकाल तथा समाज की रीति नीति तथा लोक मर्यादा की अवहेलना नहीं खटकती। इसके साथ ही शास्त्रसम्मत लोक, धर्म तथा वेद पुराण आदि की उत्तरदायित्व शून्य आलोचना भी इनके काव्य में नहीं है। अर्थशून्य अनूठी या इन उटपटाँग उक्तियों से इन्हें चिढ़ थी जिनका मुख्य उद्देश्य शायद अशिक्षित जनता पर प्रभाव डालना ही रहा होगा। इनके दार्शनिक सिद्धांतों, सृष्टितत्त्व तथा आत्मा परमात्मा आदि आध्यात्मिक विषयों से संबंध रखने वाले पदों में वैसी रहस्यपूर्ण या उटपटांग तथा समझ में न आनेवाली बातें नहीं कही गई हैं जैसी कि कबीर के पदों में मिलती हैं। इनके

वचन अधिकतर शास्त्रसम्मत हुए हैं। इनकी की कविता में हास्य और विनोद का भी अच्छा पुट देखने में आता है। भिन्न भिन्न देशों के रस्म रिवाज पर इनकी बड़ी मनोरंजक उक्तियां मिलती हैं।

इनके मुख्य ग्रंथ 'ज्ञान-समुद्र' और 'लघु-ग्रंथावली', 'साखी', 'पद' 'सुंदर-विलास' हैं। यों तो छोटे बड़े इनके २२ ग्रंथ मिलते हैं पर इनका प्रधान ग्रंथ 'सुंदर विलास' है। इसका का एक उत्तम संस्करण 'सुंदर-सार' नाम से काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने जयपुर के पुरोहित हरिनारायण जी बी० ए० द्वारा संपादित करा प्रकाशित किया है। प्रयाग के बेलवेडियर प्रेस ने भी 'सुंदर-विलास' प्रकाशित किया है। प्रस्तुत संग्रह में दोनों की सहायता ली गई है।

सूंदरदास

पतिव्रता

एक सही सब के उर अंतर, ता प्रभु कूँ कहु काहि न गावै ।
संकट माहिं सहाय करै पुनि, सो अपनो पति क्यूँ बिसरावै ॥
चार पदारथ और जहाँ लगि, आठहु सिद्धि नवौ निधि पावै ।
सुंदर छार परौ तिनके मुख, जो हरि कूँ तजि आन कूँ ध्यावै ॥

जल को सनेही मीन बिछुरत तजै प्रान ।
मणि बिनु अहि जैसे जीवत न लहिये ॥
स्वाति बुंद के सनेही, प्रगट जगत माँहि ।
एक सीप दूसरो सु, चातक हु कहिये ॥
रवि को सनेही पुनि, कमल सरोवर में ।
ससि को सनेही हू, चकोर जैसे रहिये ॥
तैसे ही सुंदर एक, प्रभु सूँ सनेह जोरि ।
और कछु देखि, काहू ओर नहिं बहिये ॥

गुरुदेव

गोबिंद के किये जीव, जात है रसातल को ।
गुरु उपदेसे से तो, छूटै जमफद तें ॥
गोबिंद के किये, जीव बस परे कर्मन के ।
गुरु के निवाजे से, फिरत है स्वछंद तें ॥
गोबिंद के किये, जीव बूड़त भवसागर में ।
सुंदर कहत गुरु काढ़ै दुख द्वंदे तें ॥
और हू कहाँ लौं कछू, मुख ते कहूँ बनाय ।
गुरु की तौ महिमा, अधिक है गोबिंद तें ॥

सो गुरुदेव लिपै न छिपै कछु,
सत्व रजो तम ताप निवारी ।

इंद्रिय देह मृषा करि जानत,
सीतलता समता उर धारी।
व्यापक ब्रह्म बिचार अखंडित,
द्वैत उपाधि सबै जिन टारी।
सबद सुनाय सँदेह मिटावत,
सुंदर वा गुरु की बलिहारी।

बिरह उराहना

हम कूँ तौ रैन दिन, संक मन माहिँ रहै।
उनकी तौ बातिन में, ठीकहु न पाइये॥
कबहूँ सँदेसा सुनि, अधिक उछाह होइ।
कबहूँक रोइ रोइ, आँसुन बहाइये॥
औरन के रस बस, होइ रहे प्यारे लाल।
आवन की कहि कहि, मह कूँ सुनाइये॥
सुंदर कहत ताहि, काटिये सु कौन भाँति।
जोइ तरु आपने सु, हाथ तें लगाइये॥

पीव को अंदेसो भारी, तो सूँ कहूँ सुन प्यारी।
यारी तोरि गये सों तौ, अजहूँ न आये है॥
मेरे तो जीवन प्राण, निसि दिन उहै ध्यान।
मुख सूँ न कहूँ आन, नैन उर लाये हैं॥
जब तें गये बिछोहि, कल न परत मोंहि।
ता ते हूँ पूछत तोहि, किन बिरमाये है॥
सुंदर बिरहिनी को, सोच सखी बार बार।
हम कूँ बिसार अब, कौन के कहाये हैं॥

अजपा जाप

स्वासों स्वास राति दिन सोह सोहं होइ जाप।
याही माला बारंबार दृढ़ कै धरतु हैं॥
देह परे इंद्री परे अंतःकरण परे।
एकही अखंड जाप ताप कूँ हरतु है॥
काठ की रुद्राच्छ की रु सूतहू की माला और।
इनके फिराये कछु कारज सरतु है॥

सुंदर कहत तातें आतमा चैतन्य रूप।
आप को भजन सो तो आपही करतु है॥

अद्वैत

जैसे ईख रस की मिठाई, भाँति भाँति भई।
फेरि करि गारे, ईख रस ही लहतु है॥
जैसे घृत थीज के, डरा सो बांधि जात पुनि।
फेर पिघले ते वह घृत ही रहतु है॥
जैसे पानी जमि के, पषाण हू सों देखियत।
सो पषाण फेरि, पानी होय के बहतु है॥
तैसे ही सुंदर यह, जगत है ब्रह्म मै।
ब्रह्म सो जगतमय, वेद सु कहतु है॥

ब्रह्म निरंतर व्यापक अग्नि, अरूप अखंडित है सब माहीं।
ईसुर पावक रासि प्रचंड जू, संग उपाधि लिये बताहीं॥
जीवत अनंत मसाल चिराग, सु दीप पतंग अनेक दिखाहीं।
सुंदर द्वैत उपाधि मिटै जब, ईसुर जीव जुदे कछु नाहीं॥

शूर

असन बसन बहु, भूषण सकल अंग।
संपति विविधि भाँति भर्‍यो सब घर है॥
स्रवण नगारो सुनि छिनक में छाड़ि जात।
ऐसे नहिं जानै कछु मेरो वहाँ मर है॥
मन में उछाह रण माहिं टूक टूक होइ।
निर्भय निसंक वा के रंचहू न डर है॥
सुंदर कहत कोउ, देह को ममत्व नाहिं।
सूरमा को देखियत, सीस बिनु घर है॥

पाँव रोपि रहै. रण माहिं रजपूत कोऊ।
हय गज गाजत जुरत जहाँ दल है॥
बाजत जुझाऊ सहनाई सिंधु राग पुनि।
सुनतहि कायर की, छूटि जात कल है॥
झलकत बरछी, तिरछी तरवार बहै।
मार मार करत परत खल भल है॥
ऐसे जुद्ध में अडिग्ग सुंदर सुभट सोइ।
घर माहि सूरमा, कहावत सकल है॥

बिचार

देह ओर देखिये तौ, देह पंचभूतन को।
ब्रह्मा करु कीट लग देह ही प्रधान है॥
प्राण ओर देखिये तौ, प्राण सबही के एक।
छुधा पुनि तृषा दोऊ, ब्यापत समान है॥
मन ओर देखिये तौ, मन को सुभाव एक।
संकल्प बिकल्प करै, सदा ही अज्ञान है॥
आतम बिचार किये, आतमा ही दीसै एक।
सुंदर कहत कोऊ दूसरो न आन है॥

एकहि कूप ते नीरहि सींचत, ईख अफीमहि अब अनारा।
होत उहै जल स्वाद अनेकनि, मिष्ट कटूक खटा अरु खारा॥
त्यूँही उपाधि संजोग तें आतम, दीसत आहि मिल्यो सबिकारा।
काढ़ि लिये सुबिबेक बिचार सु, सुंदर सुद्ध सरूपहि न्यारा॥

मन

घेरिये तौ घेरे हू, न आवत है मेरो पूत।
जोई परबोधिये सो कान न धरतु है॥
नीति न अनीति देखै, सुभ न असुभ पेखै।
पल ही में होती, अनहोती हू करतु है॥
गुरु की न साधु की न लोक बेदहू की सक।
काहू की न मानै न तौ काहू तैं डरतु है॥
सुंदर कहत ताहि, धीजिये सु कौन भाँति।
मन को सुभाव, कछु कह्यो न परतु है॥

पलही में मरि जाय, पलही में जीवतु है।
पलही में पर हाथ, देखत बिकानो है॥
पलही में फिरै, नवखंड हू ब्रह्मांड सब।
देख्यो अनदेख्यो सो तौ, या ते नहिँ छानो है॥
जातो नहिं जानियत, आवतो न दीसै कछु।
ऐसे सी बलाइ अब, तासूं पर्‌यो पानो है॥
सुंदर कहत याकी, गति हूँ न लखि परै।
मन की प्रतीत कोऊ, करै सो दिवानो है॥

तो सों न कपूत कोऊ, कितहूं न देखियत।
तो सों न सपूत कोऊ, देखियत और है ॥
तू ही आप भूलै महा, नीचहू ते नीच होइ।
तू ही आप जानै तौ, सकल सिर मौर है ॥
तू ही आप भ्रमै तब, जगत भ्रमत देखै।
तेरे स्थित भये सब, ठौर ही को ठौर है ॥
तू ही जीव रूप तू ही, ब्रह्म है अकासवत।
सुंदर कहत मन, तेरी सब दौर है ॥

बचन बिबेक

और तौ बचन ऐसे, बोलत है पसु जैसे।
तिन के तौ बोलिबे में, ढंगहूं न एक है ॥
कोऊ रात दिवस, बकत ही रहत ऐसे।
जैसी बिधि कूप में, बकत मानो भेक है ॥
बिबिधि प्रकार करि, बोलत जगत सब।
घट घट प्रतिमुख बचन अनेक है ॥
सुंदर कहत ताते बचन बिचारि लेहु।
बचन तो वहै जा में, पाइये बिवेक है ॥

बोलिये तौ तब जब, बोलिबे की सुधि होइ।
न तौ मुख मौन गहि, चुप होइ रहिये ॥
जोरिये तौ तब जब, जोरिबे की जानि परै।
तुक छंद अरथ अनूप जा में लहिये ॥
गाइये तौ तब जब, गाइवे को कंठ होइ।
स्रवण के सुनत ही मन जाइ गहिये ॥
तुक-भंग-छंद-भग, अरथ मिलै न कछु।
सुंदर कहत ऐसी, वाणी नहीं कहिये ॥

एकनि के बचन सुनत, अति सुख होइ।
फूल से झरत हैं, अधिक मनभावने ॥
एकनि के बचन तौ, असि मानौ बरसत।
स्रवण के सुनत, लगत अलखावने ॥

एकनि के बचन कटुक कहु बिष रूप ।
करत मरम छेद-दुक्ख उपजावने ॥
सुंदर कहत घट घट में बचन भेद ।
उत्तम मध्यम अरु अधम सुहावने ॥

निःसशय ज्ञानी

भावै देह छूटि जाहु कासी माहिँ गंगा तट ।
भावै देह छूटि जाहु, छेत्र मगहर में ॥
भावै देह छूटि जाहु, बिप्र के सदन मध्य ।
भावै देह छूटि जाहु, स्वपच के घर में ॥
भावै देह छूटि देस आरज अनारज मे ।
भावै देह छूटि जाहु बन में नगर में ॥
सुंदर ज्ञानी के कछु संसय रहत नहिं ।
सुरग नरक सब, भागि गयो नर में ॥

विश्वास

जगत में आइके, बिसार्‌यो है जगतपति ।
जगत कियो है सोई जगत भरतु है ॥
तेरे निसि दिन चिंता, औरहि परी है आइ ।
उद्यम अनेक, भाँति भाँति के करतु है ॥
इत उत जायके, कमाई करि लाऊँ कछु ।
नेक न अज्ञानी नर धीरज धरतु है ॥
सुंदर कहत एक प्रभु के, बिस्वास बिनु ।
बादहि कूँ वृथा सठ पचि के मरतु है ॥

धीरज धारि बिचार निरंतर, तेहि रच्यो सोइ आपुहि ऐहै ।
जेतिक भूक लगी घट प्राणहिं, तेतिक तू अन्यारहि पैहै ॥
जो मन में तृस्ना करि धावत, तौ तिहुँ लोक न खात अघैहै ।
सुंदर तू मत सोच करै कछु, चोँच दई जिन चूनहु दैहै ॥

प्रेम ज्ञानी

द्वंद बिना बिचरै बसुधा पर, जा घट आतम ज्ञान अपारो ।
काम न क्रोध न लोभ न मोह, न राग न द्वेष न म्हरु न थारो ॥
जोग न भोग न त्याग न संग्रह, देह दसा न ढँक्यो न उघारो ।
सुंदर कोउक जानि सकै यह, गोकुल गाँव को पैंडोहि न्यारो ॥

ज्ञानी

ज्ञानी कर्म करै नाना विधि, अंहकार या तन को खोवै।
कर्मन को फल कछू न जोवै, अतःकरण वासना धोवै॥
ज्यूँ कोऊ खेती कूँ जोतत, लेकरि बीज भूमि के बोवै।
सुंदर कहै सुनो दृष्टांतहि, नाँगि नहाई कहा निचोवै॥

विधि न निषेध कछु भेद न अभेद पुनि।
क्रिया सो करत दीसै यूँही नित प्रीत है॥
काहू कूँ निकट राखै, काहू कूं तौ दूर भाखै।
काहू सूँ नेरे न दूर ऐसी जाकी मति है॥
रागहू न द्वेष कोऊ, सोक न उछाह दोऊ।
ऐसी विधि रहै कहूँ रति न बिरति है॥
बाहिर ब्योहार ठानै, मन में सुपन जानै।
सुंदर ज्ञानी की कछु, अद्भुत गति है॥

तमोगुण बुद्धि सोतौ, तवा के समान जैसे।
ताके मध्य सूरज की, रचहू न जोत है॥
रजोगुण बुद्धि जैसे, आरसी की औधी ओर।
ताके मध्य सूरज की, कछुक अद्योत है॥
सत्त्वगुण बुद्धि जैसे, आरसी की सूधी ओर।
ताके मध्य प्रतिबिंब सूरज की पोत है॥
त्रिगुण अतीत जैसे प्रतिबिंब मिटि जात।
सुंदर कहत एक सूरज ही होत हैं॥

सख्या ज्ञान

देह के सँजोग ही तें, सीत लगै घाम लगै।
देह के सँजोग ही तें छुधा तृषा पौन कूँ॥
देहके सँजोग ही तें कटुक मधुर स्वाद।
देह के सँजोग कहै खाटो खारो लौन कूँ॥
देह के सँजोग कहै मुख तें अनेक बात।
देह के सँजोग ही, पकरि रहै मौन कूँ॥

सुंदर देह के सँजोग दुःख मानै सुख मानै ।
देह के सजोग गये, दुख सुख कौन कूँ ॥

छीर नीर मिले दोऊ, एकठे ही होइ रहे ।
नीर जैसे छाड़ि हंस, छीर कूं गहतु है ॥
कंचन में और धातु, मिलि करि बनि परयो ।
सुद्ध करि कचन सुनार ज्यू लहतु है ॥
पावक हूँ दारू मध्य, दारू हू सों होइ रह्यो ।
मथि करि काढै वह, दारू कूँ दहतु है ॥
तैसे ही सुदर मिल्यो, आतमा अनातमा जु ।
भिन्न भिन्न करै सो तो साख्य ही कहतु है ॥

साध के लक्षण

धूलि जैसो धन जाके, सूलि सो संसार सुख ।
भूलि जैसो भाग देखै अत कैसी यारी है ॥
पाप जैसी प्रभुताई, साप जैसो सनमान ।
बड़ाई बिच्छुन जैसी, नागिनी सी नारी है ॥
अग्नि जैसो इद्रलोक, विघ्नि जैसो विधि लोक ।
कीरति कलग जैसी, सिद्ध सी ठगारी है ॥
बासना न कोई बाकी ऐसी मति सदा जाकी ।
सुंदर कहत ताहि, वदना हमारी है ॥

आत्म अनुभव

है दिल में दिलदार सही, अँखियाँ उलटी करि ताहि चितैये ।
आब में खाक में बाद मे आतस, जानि में सुदर जानि जनैये ॥
नूर में नूर है तेज में तेजहि, ज्योति में ज्योति मिलै मिलि जैये ।
क्या कहिये कहते न बनै कछु, जो कहिये कहते हि लजैये ॥

काहू कूँ पूछत रक, धन कैसे पाइयत ।
कान देके सुनत, स्रवण सोई जानिये ॥
उन कह्यो धन हम, देख्यो है फलानी ठौर ।
मनन करत भयो, कब घर आनिये ॥
फेरि जब कह्यो धन गड़्यो तेरे घर माहिँ ।
खोदन लाग्यो है तब, निदिध्यास ठानिये ॥

धन निकस्यो है जब, दारिद गयो है तब।
सुंदर साच्छातकार, नृपति बखानिये ॥

।

न्याय सास्त्र कहत है, प्रगट ईसुरवाद।
मीमांसाहि सास्त्र माहिं कर्मवाद कह्यो है ॥
वैसेषिक सास्त्र पुनि, कालवादी है प्रसिद्ध।
पातंजलि सास्त्र माहिं, योगवाद लह्यो है ॥
सांख्य सास्त्र माहिं पुनि प्रकृति पुरुष वाद।
वेदांत जु सास्त्र तिन, ब्रह्मवाद गह्यो है ॥
सुंदर कहत षटसास्त्र, माहिं भयो वाद।
जाके अनुभव ज्ञान, वाद में न बह्यो है ॥

वाचक ज्ञान

ज्ञानी की सी बात कहै, मन तौ मलिन रहै।
वासना अनेक भरि, नेक न निवारी है ॥
जैसे कोऊ आभूषण, अधिक बनाई राखै।
कलई ऊपरि करि, भीतर भगारी है ॥
ज्यूंही मन आवै त्यूंही, खेलत निसंक होइ।
ज्ञान सुनि सीखिलियो, ग्रंथ न विचारी है ॥
सुंदर कहत वाके, अटक ना कोऊ आहि।
जोई वा सूं मिलै जाइ, तीही कू बिगारी है ॥

देह सूं ममत्व पुनि गेह सूं ममत्व।
सुत दारा सूं ममत्त, मन माया में रहतु है ॥
थिरता न लहै जैसे, कदुग चौगान माहिं।
कर्मनि के बस मारयो, धका कूं बहुत है ॥
अंतःकरण सदा, जगत सूं रचि रह्यो।
मुख सूं बनाय बात ब्रह्म की कहतु है ॥
सुंदर अधिक मोहिं, याही तें अचंभो आहि।
भूमि पर परयो कोऊ चंद कूं गहतु है ॥

सतसंग

जो कोइ जाइ मिलै उन सूँ नर, होत पवित्र लगै हरि रंगा।
दोष कलक सबै मिटि जाइसु, नीचहु जाई सु होत उतगा ॥
ज्यूं जल और मलीन महा अति, गंग मिल्या हुइ जातहि गगा।
सुंदर सुद्ध करै ततकाल सु, है जग माहिं बड़ो सतसगा ॥

प्रीति प्रचंड लगै पर ब्रह्महिं, और सबै कछु लागत फीको।
सुद्ध हृदय मन होइ सु निर्मल, द्वैत प्रभाव मिटै सब जी को ॥
गोष्टि रु ज्ञान अनत चलै जहँ, सुदर जैसो प्रवाह नदी को।
ताहिते जानि करौ निसि बासर, साधु को सग सदा अति नीको ॥

दुष्ट

अपने न दोष देखे, और के औगुण पेखे।
दुष्ट को सुभाव, उठि निदा ही करतु है ॥
जैसे कोई महल संवारि राख्यो नीके करि।
कीरी तहाँ जाय छिद्र ढूढत फिरतु है ॥
भोरही तें साँझ लग, साँझही ते भोर लग।
सुंदर कहत दिन ऐसे ही भरतु है ॥
पाँव के तरे की नहीं सूझै आग मूरख कूं।
और सूँ कहत तेरे, सिर पै बरतु है ॥

सर्प डसै सु नही कछु तालुक, बीछू लगै सु भले करि मानौ।
सिंहहु खाय तु नाहिं कछू डर, जो गज मारत तौ नहिं हानौ ॥
आगि जरौ जल बूड़ि मरौ, गिरि जाइ गिरौ कछु भै मत आनौ।
सुंदर और भले सबही यह, दुर्जन संग भलो जिनि जानौ ॥

आपनु काज सँवारन के हित, और कु काज बिगारत जाई।
आपनु कारज होउ न होउ, बुरो करि और कुँ डारत माई ॥
आपहु खोवत औरहु खोवत खोइ दुनों घर देत बहाई।
सुंदर देखत ही बनि आवत, दुष्ट करै नहिं कौन बुराई ॥

तृष्णा

किधौ पेट चूल्हो कीधौं, भाठि किधौ भाड़ आहि।
जोइ कछु झोंकिये, सो सब जरि जातु है॥
किधौं पेट थल किधौं, बापि किधौ सागर है।
जेतो जल परै ते तो, सकल समातु है॥
किधो पेट दैत किधौं, भूत प्रेत राच्छस है।
खाउं खाउ करै कछु, नेक न अघातु है॥
सुदर कहत प्रभु, कौन पाप लायो पेट।
जब ही जनम भयो, तब ही को खातु है॥

जो दस बीस पचास भये सत।
होइ हजार तु लाख मँगैगी॥
कोटि अरब्ब खरब्ब असख्य।
पृथ्वीपति होन कि चाह जगैगी॥
स्वर्ग पताल को राज करौं।
तृष्ना अधिकी अति आग लगैगी॥
सुंदर एक संतोष बिना सठ।
तेरी तो भूख कभी न भगैगी॥

करम धरम

गेह तज्यो पुनि नेह तज्यो, पुनि खेह लगाइ के देह सँवारी।
मेघ सहै सिर सीत सहै तन, धूप समय जु पचागिनि बारी॥
भूख सहैं रहि रूख तरे सुंदरदास सहै दुख भारी।
डासन छाड़ि के कासन ऊपर, आसनि मारि पै आस न मारी॥

मेघ सहै सीत सहै सीस पर घाम सहै।
कठिन तपस्या करि कद मूल खात है॥
जोग करै जज्ञ करै, तीरथ रु ब्रत करै।
पुन्य नाना विधि करै मन मे सुहात है॥
और देवी देवता उपासना अनेक करै।
आँबन की हौस कैसे आक डांड़े जात है॥
सुदर कहत एक रवि के प्रकास बिनु।
जेंगना की जोति कहा रजनी बिलात है॥

कामिनी

रसिक प्रिया रस मंजरी, और सिंगारहि जान।
चतुराई करि बहुत विधि, विषय बनाई आन॥
विषय बनाई आन, लगत विषयिन कूं प्यारी।
जागे मदन प्रचंड सराहै नखसिख नारी॥
ज्यूं रोगी मिष्ठान खाइ, रोगहि बिस्तारै।
सुंदर ये गति होइ, रसिक जो रस प्रिया धारै॥

कामिनी की तनु मानु कहिये सघन बन।
वहाँ कोऊ जाय सो तौ भूले ही परतु है॥
कुंजर है गति कटि केहरी को भय जा में।
बेनी कालो नागिनीऊ फन कू धरतु है॥
कुच हैं पहार जहाँ काम चोर रहै तहाँ।
साधि के कटाच्छ बान प्रान कूं हरतु है॥
सुंदर कहत एक और डर जा में अति।
राच्छसी बदन खाँउ खाँउ ही करतु है॥

चितावनी

मातु पिता युवती सुत बाँधव।
लागत है सब कूं अति प्यारो॥
लोक कुटुंब खरो हित राखत।
होइ नहीं हम तें कहुँ न्यारो॥
देह सनेह तहाँ लग जानहु।
बोलत है मुख सबद उचारो॥
सुंदर चेतन सक्ति गई जब।
बेगि कहै घरबार निकारो॥

तू कछु और विचारत है नर।
तेरो बिचार धर्‍यो ही रहैगो॥
कोटि उपाय करै धन के हित।
भाग लिख्यो तितनोहि लहैगो॥
भोर कि साँझ घरी पल माँझ सु।
काल अचानक आइ गहैगो॥

राम भज्यो न कियो कछु सुकिरत।
सुदर यूँ पछताइ रहैगो ॥

उपदेश

सोवत सोवत सोइ गयो सठ, रोवत रोवत कै बेर रोयो।
गोवत गोवत गोइ धर्‍यो धन, खोवत खोवत तैं सब खोयो ॥
जोवत जोवत बीति गये दिन, बोवत बोवत लै विष बोयो।
सुंदर सुदर राम भज्यो नहिं, ढोवत ढोवत बोझहिँ ढोयो ॥

कार उहै अविकार रहै नित, सार उहै जु असारहि नाखै।
प्रीति उहै जु प्रतीति धरै उर, नीति उहै जु अनीतिन भाखै ॥
तत उहै लगि अत न टूटत, संत उहै अपनो सत राखै।
नाद उहै सुनि बाद तजै सब, स्वाद उहै रस सुंदर चाखै ॥

मिश्रित

प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और।
चित्त सों न चंदन सनेह सों न सेहरा ॥
हृदय सों न आसन सहज सों न सिंहासन।
भाव सी न सेज और सून्य सों न गेहरा ॥
सील सों न स्नान अरु ध्यान सों न धूप और।
ज्ञान सों न दीपक अज्ञान तम केहरा ॥
मन सी न माला कोऊ सोहं सो न जाप और।
आतम सों देव नाहिं देह सों न देहरा ॥

जा सरीर माहिँ तू अनेक सुख मानि रह्यो।
ताहि तू विचार या में कौन बात भलो है ॥
मेद मजा माँस रग रग में रकत भर्‍यो।
पेटहू पिटारी सी में ठौर ठौर मली है ॥
हाड़न सूँ भर्‍यो मुख हाड़न के नैन नाक।
हाथ पाउ सोऊ सब हाड़न की नली है ॥
सुंदर कहत याहि देखि जनि भूलै कोई।
भीतर भँगार भरी ऊपर तौ कली है ॥

पतिव्रत

सुंदर और न ध्याइये, एक बिना जगदीस।
सो सिर ऊपर राखिये, मन क्रम बिसवाबीस॥
सुंदर पतिव्रत राम सों, सदा रहै इक तार।
सुख देवै तो अति सुखी, दुख तो सुखी अपार॥
जो पिय को व्रत लै रहै, कत पियारी सोइ।
अंजन मजन दूरि करि, सुंदर सनमुख होइ॥
प्रीतम मेरा एक तू, सुदर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारने, काहि न परगट होइ॥

सुमिरन

सुंदर सतगुरु यों कह्या, सकल सिरोमनि नाम।
ता कौं निसु दिन सुमरिये, सुख सागर सुखधाम॥
हिरदे में हरि सुमिरिये, अंतरजामी राइ।
सुंदर नीके जतन सौं, अपनौं वित्त छिपाइ॥
रंक हाथ हीरा चढ़्यो, ता कौ मोल न तोल।
घर घर डोलै बेचतो, सुदर याही मोल॥
राम नाम मिसरी पिये, दूरि जाहिं सब रोग।
सुंदर औषध कटुक सब, जप तप साधन जोग॥
राम नाम जाके हिये, ताहि नवैं सब कोय।
ज्यों राजा की सक तें, सुदर अति डर होइ॥
सुंदर सब ही संत मिलि, सार लियौ हरि नाम।
तक्र तजी घृत काढि कै, और क्रिया किहिं काम॥
लीन भया बिचरत फिरै, छीन भया गुन देह।
दीन भई सब कल्पना, सुंदर सुमिरन येह॥
भजन करत भय भागिया, सुमिरन भागा सोच।
जाप करत जौंरा टल्या, सुदर साची लोच॥
सुदर भजिये राम को, तजिये माया मोह।
पारस के परसे बिना, दिन दिन छीजै लोह॥
प्रीति सहित जे हरि भजैं, तब हरि होहिं प्रसन्न।
सुंदर स्वाद न प्रीति बिन, भूख बिना ज्यौं अन्न॥
एक भजन तन सौं करै, एक भजन मन होइ।
सुंदर तन मन के परे, भजन अखंडित सोइ॥
जाही कौ सुमिरन करै, है ताही को रूप।
सुमिरन कीये ब्रह्म के, सुदर है चिद्रूप॥

बंदगी

सुंदर अंदर पैसि करि, दिल में गोता मारि।
तौ दिल ही में पाइये, साईं सिरजनहारि ॥
सखुन हमारा मानिये, मत खोजै कहुँ दूर।
साईं सीने बीच है, सुंदर सदा हजूर ॥
जो यह उसका ह्वै रहै, तो वह इसका होइ।
सुंदर बातौं ना मिलै, जब लग आप न खोइ ॥
सुंदर दिल की सेज पर, औरति है अरवाह।
इसको जाग्या चाहिये, साहिब बेपरवाह ॥
जो जागै तौ पिय लहै, सोयें लहिये नाहिं।
सुंदर करिये बंदगी, तो जाग्या दिल माहिं ॥

गुरुदेव

दादू सतगुरु बंदिये, सो मेरे सिर-मौर।
सुंदर बहिया जायथा, पकरि लगाया ठौर ॥
सुंदर सतगुरु बंदिये, सोई बंदन जोग।
औषध सबद दिवाइ करि, दूर कियो सब रोग ॥
परमेसुर अरु परम गुरु, दोनों एक समान।
सुंदर कहत बिसेष यह, गुरु तें पावै ज्ञान ॥
सुंदर सतगुरु आपु तें, किया अनुग्रह आइ।
मोह निसा में सोवतें, हमकौं लिया जगाइ ॥
सुंदर सतगुरु सारिखा, कोऊ नहीं उदार।
ज्ञान खजीना खोलिया, सदा अटूट भँडार ॥
समदृष्टी सीतल सदा, अद्भुत जाकी चाल।
ऐसा सतगुरु कीजिये, पलमें करै निहाल ॥
सुंदर सतगुरु मिहर करि, निकट बताया राम।
जहाँ तहाँ भटकत फिरैं, काहे को बेकाम ॥
गोरखधधा लोह मे, कड़ी लोह ता माहिं।
सुंदर जानै ब्रह्म में, ब्रह्म जगत ह्वै माहिं ॥
परमातम से आत्म, जुदे रहे बहुकाल।
सुंदर मेला करि दिया, सतगुरु मिले दयाल ॥
परमातम अरु आतमा, उपज्या यह अबिबेक।
सुदर भ्रमतें दोय थे, सतगुरु कीए एक ॥
सुंदर सूता जीय है, जाग्या ब्रह्म स्वरूप।
जागन सोवन तें परे, सतगुरु कह्या अनूप ॥

मूरख पावै अर्थ कों, पंडित पावै नाहिं।
सुंदर उलटी बात यह, है सतगुरु के माहिं॥
सुंदर सतगुरु ब्रह्ममय, पर सिष की चम दृष्टि।
सूधी ओर न देखई, देखै दर्पन पृष्ठ॥
सुंदर काटै सोध करि, सतगुरु सोना होइ।
सिष सुबरन निर्मल करै, टाँका रहै न कोइ॥
नभमनि चिंतामनि कहै, हीरामनि मनिलाल।
सकल सिरोमनि मुकटमनि, सतगुरु प्रगट दयाल॥
सुंदर सतगुरु आप तें, अतिही भये प्रसन्न।
दूरि किया संदेह सब, जीव ब्रह्म नहिं भिन्न॥
सुंदर सतगुरु हैं सही, सुंदर सिच्छा दीन्ह।
सुंदर बचन सुनाइ कै, सुंदर सुंदर कीन्ह॥

बिरह

मारग जोवै बिरहिनी, चितवै पिय की ओर।
सुंदर जियरे जक नहीं, कल न परत निस भोर॥
सुंदर बिरहिनि अधजरी, दुःख कहै मख रोइ।
जरि बरि कै भस्मी भइ, धुवाँ न निकसै कोइ॥
ज्यो ठगमूरी खाइ कै, मुखहिं न बोलै बैन॥
ढुगर ढुगर देख्या करै, सुंदर बिरहा औन॥
लालन मेरा लाडिला, रूप बहुत तुझ माँहि।
सुंदर राखै नैन में, पलक उघारै नाँहि॥
अब तुम प्रगटहु राम जी, हृदय हमारे आइ।
सुंदर मुख संतोष है, आनंद अंग नमाइ॥

धरनीदास

बाबा धरनीदास का नाम छपरा जिले के माँझी नामक गाँव में सं १७१३ में हुआ था। इनके पिता का नाम परसुराम और माता का विरमा देवी था। इन्होंने कई ककहरे लिखे हैं जिनमें एक मे पकार से आरंभ होने वाले पद्य में इन्होने अपनी उत्पत्ति का वर्णन कर दिया है। वह पद्य यों है—

परसुराम अरु विरमा आई
पुत्र जानि जग हेतु बड़ाई
प्रगटि धरनि इसुर करि दाया
पूरे भाग भक्ति हरि दाया

यह लोग जाति के श्रीवास्तव कायस्थ थे और इनके यहाँ कारिंदागिरी या मुनीमी काम तो पुश्तैनी था, साथ ही खेती बारी का काम भी होता था। इनकी शिक्षा भी पहले दीवानी या कारिंदागिरी के ही उपयुक्त हुई और इनके पिता परसुराम जी ने इन्हें माँझी के ज़मींदार के यहाँ दीवान रखवा भी दिया था। यद्यपि ये अपना काम बड़ी तत्परता और योग्यता से करते थे और मालिक ने इन पर पूरा भरोसा कर सारा कारबार इन्हीं को सौंप रक्खा था, तो भी इनका हृदय सदा आध्यात्मिक अनुशीलन में ही लीन रहा करता था पर इनके मालिक को इन बातों की कुछ ख़बर न थी। ये परमात्मचिंतन ऐसे समय और स्थान में और कुछ इस रीति से करते थे कि किसी को कुछ पता नहीं चलता था। उपदेश देने या दसबीस साधुओ और श्रोताओं को इकठ्ठा कर सार्वजनिक रूप से ईश गुणगान या सत्संग करने का इन्हे व्यसन न था। सारांश यह कि यह बड़े ही एकांतप्रिय थे और किसी भी रूप में आत्मविज्ञापन पसंद नहीं करते थे और इसी से लोगों को इनके पहुँचे हुए साधक या भक्तरूप का परिचय न मिल सका था। पर एक दिन अकस्मात् इनका वास्तविक रूप प्रगट हो गया। कथा यों है—एक दिन ये ज़मींदारी संबंधी क़ाग़ज़ पत्र फैलाए कुछ लिख रहे थे कि यकायक न जाने क्या सोच कर उठे और एक लोटा पानी उठाकर वहीं और बस्ते पर उड़ेल दिया। लोगो ने इन्हे पागल समझा और उनके बहुत कुछ पूछ ताछ करने पर बतलाया कि आरती के समय जगन्नाथ जी के वस्त्र में आग लग गई थी सो उसी को पानी उड़ेल कर मैंने बुझाया है। लोगों को दृढ़ विश्वास हो गया कि यह पागल हैं। इनके मालिक ने भी इन्हें पागल समझा। पर इस घटना के बाद ही यह नौकरी छोड़ कर चल खड़े हुए, उस समय की कही हुई इनकी ये पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं—

'लिखनी नाहिं करूं रे भाई।
मोहि राम नाम सुधि आई॥

बाद मे कहते हैं कि इनके मालिक के पता लगवाने पर जगन्नाथ जी के वस्त्र में आग लगने वाली कथा सच निकली और तब उसने बहुत तरह से क्षमा माँगते हुए इनसे फिर कार्यभार ग्रहण करने की प्रार्थना की पर सब व्यर्थ। इसी प्रकार इनके सबंध मे और भी कई अश्रुतपूर्व कथाएँ प्रसिद्ध हैं जिनमे सत्यता का अंश चाहे जितना भी हो पर इतना तो स्पष्ट है कि इनका पहला व्यवसाय लेखक का था पर साथ ही ये ईश्वरचिंतन का भी समय निकाल लेते थे और क्रमशः हरिपद मे इनकी लौ बढती ही गई। अंत मे एक दिन इन्होंने अपने हृदय में एक स्पष्ट पुकार सुनी। इन्हे विदित हो गया कि अब मेरा यह लौकिक कार्य समाप्त हुआ और अब मुझे केवल हरिभजन मे कालयापन करना चाहिए और इन्होंने किया भी ऐसा ही।

इनकी मृत्यु तिथि अज्ञात है। कहते हैं पूरी अवस्था पाकर इन्होने गंगा और सरयू के संगम स्थान मे समाधि ले ली थी।

इनके रचे हुए दो ग्रंथ प्राप्त हैं— (१) 'सत्यप्रकाश' (२) 'प्रेमप्रकाश' 'धरनीदास जी की बानी' नाम से इनके पद्यों का एक संग्रह बेलवेडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। यह संग्रह ६० पृष्ठों का है और इसमें कुल ३३० पद्य हैं।

इनकी भाषा पूर्वी हिंदी तो है ही पर कहीं कहीं उसमें खड़ी बोली के पद भी दिए गए हैं। स्मरण रहे कि यह बिहार प्रांत के रहने वाले थे और तत्कालीन साहित्यिक केंद्र आगरा मथुरा प्रांत में इनके घूमने या रहने के प्रमाण भी नहीं मिलते। ऐसी अवस्था मे इनकी भाषा में विशेष साहित्यिकता की आशा करना व्यर्थ है। पर इनके भाव अवश्य सुंदर और कोमल हैं। कोमलता तो इतनी अधिक कदाचित् किसी संत कवि की कविता में नहीं है, यहाँ तक कि कोई कोई समालोचक इनके भावो में स्त्रीत्व का प्राधान्य मानते है। इनके पदों की एक दूसरी विशेषता यह है कि उनमें एकांत निष्ठा की भावना बहुत स्पष्ट है। किसी भी कवि की कृति में उसके स्वभाव की छाप पड़े बिना नहीं रह सकती। धरनीदास जी आरंभ से ही कितने एकांतप्रिय थे यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है। सत कवियों मे यही एक ऐसे सज्जन हो गए हैं जिन्हें सामुहिक रूप से कोई कार्य करने से चिढ़ थी। यह सब से अलग रहना ही पसंद करते थ। इनके स्वभाव का यह अंग इनकी रचना पर भी अपना रंग लाए बिना नहीं रह सकता था।

प्रस्तुत सग्रह में चुने हुए पद 'धरनीदास जी की बानी' से लिए गए हैं।

धरनीदास

बिरह

अजहुँ मिलो मेरे प्रान - पियारे।
दीनदयाल कृपाल कृपानिधि ॥
करहु छिमा अपराध हमारे।
कल न परत अति विकल सकल तन ॥
नैन सकल जनु बहत पनारे।
माँस पचो अरु रक्त रहित भे ॥
हाड़ दिनहुँ दिन होत उघारे।
नासा नैन स्रवन रसना रस ॥
इंद्री स्वाद जुआ जनु हारे।
दिवस दसो दिसि पथ निहारत ॥
राति बिहात गनत जस तारे।
जो दुख सहत कहत न बनत मुख ॥
अंतरगत के हौ जानन हारे।
धरनी जिव झिलमलित दीप ज्यों ॥
होत अंधार करो उजियारे।

चितावनी

पानी से पैदा कियो सुनु रे मन बौरे,
ऐसा खसम खुदाय कहाई रे।
दाह भयो दस मास को सुनु रे मन बौरे,
तर सिर ऊपर पाँई रे ॥
आँच लगी जब आग की सुनु रे मन बौरे,
आजिज हैं अकुलाई रे।
कौल कियो मुख आपने सुनु रे मन बौरे,
नाहक अंक लिखाई रे ॥
अब की करिहो बंदगी सुनु रे मन बौरे,
जो पइहो मुकलाई रे।
जग आये जंगल परे सुनु रे मन बौरे,
भरम रहे अरुझाई रे ॥

पर को पीर न जानिया सुनु रे मन बौरे,
बहुरि ऐसहीं जाई रे।
सतगुरु कै उपदेस जे सुनु रे मन बौरे,
दोजख दरद मिटाई रे।
मानुष देह दुरलभ अहै सुनु रे मन बौरे,
धरनी कह समुझाई रे॥

उपदेश

कवित्त—जीव की दया जेहि जीव ब्यापै नही,
भूखे न अहार प्यासे न पानी।
साधु के सग नहिं सबद से रग नाहिं,
बोलि जानै न मुख मधुर बानी॥
एक जगदीस को सीस अरपै नाहीं,
पॉच पचीस बहु बात ठानी।
राम को नाम निज धाम बिस्राम नहीं,
धरनी कह धरनि सों धृग सो प्रानी॥

विनय

प्रभु जी अब जिनि मोहिं बिसारो।
असरन सरन अधम जन तारन, जुग जुग बिरद तिहारो॥
जहं जहॅ जनम करम बसि पायो, तहॅ अरुझे रस खारो।
पॉचहुॅ के परपच भुलानो, धरेउ न ध्यान अधारो॥
अध गर्भ दस मास निरतर, नखसिख सुरति सॅवारो।
मज्जा मुत्र अग्निमल क्रम जहँ, सहजै तहॅ प्रतिपारो॥
दीजै दरस दयाल दया करि, गुन ऐगुन न बिचारो।
धरनी भजि आयो सरनागति, तजि लज्जा कुल गारो॥

तुहि अवलब हमारे हो।
भावै पगु नॉगे करो, भावै तुरय सवारे हो॥
जनम अनेकन बादि गे, निजु नाम बिसारे हो।
अब सरनागत रावरी, जन करत पुकारे हो॥
भवसागर बेरा पारो, जल मॉझ मॅझारे हो।
संतत दीन दयाल ही, करि पार निकारे हो॥
धरनी मन बच कर्मना, तन मन धन वारे हो।
अपनो बिरद निबाहिये, नाहिं बनत बिचारे हो॥

मोसों प्रभु नाहिं दुखित, तुम सो सुखदाई ॥ टेक ॥
दीन बंधु बान तेरो, आइ करु सहाई ।
मोसों नहिं दीन और निरखो जगमाँई ॥
पतित पावन निगम कहत, रहत हौ कित गोई ।
मो सों नहिं पतित और, देखो जग टोई ॥
अधम के उधारन तुम, चारो जुग ओई ।
मो ते अब अधम आहि, कवन धौं बड़ोई ॥
धरनी मन मनिया, इक ताग मे परोई ।
आपन करि जानि लेहु, कर्म फद छोई ॥

प्रेम

हरि जन हरि के हाथ विकाने ।
भावै कहो जग धृग जीवन है, भावै कहो वौराने ॥
जाति गवाय अजाति कहाये, साधु सँगति ठहराने ।
मेटो दुख दारिद्र परानो, जूठन खाग अघाने ॥
पाँच जने परवन परपची, उलटि परे बंदिखाने ।
छूटी मजूरी भये हजूरी, साहिब के मन माने ॥
निरममता निरवैरे सभन तें, निरसका निरबाने ।
धरनी काम राम अपने तें, चरन कमल लपटाने ॥

पिया मोर बसैं गउरगढ, मैं बसौ प्रयाग हो ।
सहजहिं ला् सनेह, उपजु अनुराग हो ॥
असन बसन तन भूषन, भवन न भावै हो ।
पल पल समुझि सुरति मन गहबरि आवै हो ॥
पथिक न मिलहि सजन जन, जिनहिं जनावों हो ।
बिह्वल विकल विलखि चित, चहुँ दिसि धावों हो ॥
होय अस मोहिं ले जाय कि ताहि ले आवै हो ।
तेकरि होइबों लौडिया, जे रहिया बतावै हो ॥
तबहि त्रिया पत जाय, दोसर जब चाहै हो ।
एक पुरुष समरथ, धन न चाहै हो ॥

जहिया भइल गुरु उपदेस, अंग अंग के मिटल कलेस ।
सुनत सजग भयो जीव, जनु आगिनी परै घीव ॥

उर उपजल प्रभु प्रेम, छुटि के तब व्रत नेम।
जब घर भइल अजोर, तब मानल मन मोर ॥
देखे से कहल न जाय, कहले न जग पतियाय।
धरनी धनि तिन पाग, जेहिं उपजल अनुराग ॥

जग में कायथ जाति हमारी।
पायों है माला तिलक दुसाला, परमारथ ओहदा री ॥
कागद जंहलगि करम कमायो, कैंची ज्ञान रसा री।
गुरु के चरन अनद जाप करि, अनुभव वरक उतारो ॥
मन मसिहानी साँच की स्याही, सुरति सोफ भरि डारी।
भरम काटि करि कलम छुरी छबि, तकि तृस्ना खत मारी ॥
तबलक तत्त दया को दफदर, सत कचहरी भारी।
रैयत जगत सबद कै कोडी, दूजी मार न मारी ॥
नाम रतन को भरो खजाना, भरो सो हृदय कोठारी।
है कोइ परखनहार बिवेकी, बारबार पुकारी ॥
धरनी साल बसाल अमाली, जमाखरच यहि पारी।
प्रभु अपने कर कागज मेरो, लीजै समुझि सुधारी ॥

मन तुम यहि बिधि करो कैथाई।
सुख सपति कबहूं नहिं छीजै, दिन दिन बढ़त बड़ाई ॥
कसबा काया करु ओहदा री, चित चिट्ठा धरु साथी।
मोहासिब करि अस्थिर मनुवा, मूल मत्र अपराधी ॥
तत्त को तेरिज बेरिज बुधि की, ध्यान निरखि ठहराई।
हृदय हिसाब समुझि कै कीजै, दहियक देहु लगाई ॥
राम को नाम रटी रोजनामा, मुक्ति सों फरद बताई।
अजपा जाप अवरिजा करि के, सर्ब कर्म बिलगाई ॥
रैयत पाँच पचीस बुझाए, हरि हाकिम रहे राजी।
धरनी जमाखरच बिधि मिलि है, को करि सकै गमाजी ॥

भाई रे जीभ कहल नहिं जाई।
नाम रटन को करत निठुराई, कूदि चलै कुचराई ॥
चरन न चलै सुपथ पै पग दुइ, अपथ चलै अतुराई।
देत बार कर दीन्ह दूबरो, लेत करै हथियाई ॥
नैना रूप सरूप सनेही, नाद स्रवन लुबधाई।
नासा बहती बास बिषै की, इद्री नारि पराई ॥

संत चरन को सीस नवै नहिं, ऊपर अधिक तराई ।
जो मन घेरि वेन्द्रिये बाधौ, भाजै छाद तुराई ॥
का सों कहों कहै को मानै, अग अग अकुठाई ।
धरनीदास आस तब पूजै, जो हरि होहिं सहाई ॥

मन बसि लेहु अगम अटारी ॥ टेक ॥
नव नारिन को द्वारा निरखो, सहज सुखमना नारी ।
अजब अवाज नगारा बाजत गगन गरजि धुनि भारी ॥
तहं बरै बाती खिवस न राती, अलख पुरुष मठ धारी ।
धरनी कै मन कहा न मानै, तबहिं हनो है कटारी ॥

मन रे तू हरि भजु अवरि कुमति तजु ।
ह्वै रहु बिमल बिरागी अनुरागी लो ॥
देई देवा सो झूंठी. जैसे मरकट मूठी ।
अंत बहुरि बिलगाने पछिताने लो ॥
जठर अगिन जरै, भोजन भसम करै ।
तहं प्रभु पालल देंही नित तेही लो ॥
सुत हितु बंधु नारी, इन सग दिना चारी ।
जल संग परत पखाने, असमाने लो ॥
परिजन हाथी घोरा, इहब कहत मोरा ।
चित्र लिखल पट देखा, तस लेखा लो ॥
धरनी बिच्छुक बानी हम प्रभु अजमानी ।
मिलहु पट खोलो अनमोली लो ॥

मन तुम कस न करहु रजपूती ।
गगन नगारा बाजु गहागह, काहे रहो तुम सूती ॥
पॉच पचीस तीन दल ठाढ़े, इन संग सेन बहूती ।
अब तोहि घेरी मारन चाहत, जस पिंजरा मह तूती ॥
पइहौ राज समाज अमर पद ह्वै रहु बिमल बिभूती ।
धरनीदास विचार कहतु है दूसर नाहिं सपूती ॥

शब्द

कंत दरस बिनु बावरी ।
मो तन ब्यापै पीर प्रीतम की, मूरुख जानै आवरी ॥
पसरि गयो तरु प्रेम साखा सखि, बिसरि गयो चित चावरो ।

भोजन भवन सिँगार न भावै, कुल करतूति अभाव री ॥
खिन खिन उठि उठि पथ निहारो, बार बार पछिताव री।
नैनन अंजन नींद न लागै, लागै दिवस बिभावरी॥
देह दसा कछु कहत न आवै, जस जल ओछे नाव री।
धरनी धनी अजहुँ पिय पाओं, तौ सहजै अनँद बधाव री॥

हरि जन हरि के हाथ बिकाने।
भावै कहो जग धृग जीवन है, भावै कहो बौराने॥
जाति गँवाय अजाति कहाये, साधु सगति ठहराने।
मेटो दुख दारिद्र परानो, जूठन खाय अघाने॥
पाच जने परबल परपंची, उलटि परे बँदिखाने।
छुटी मजूरी भये हजूरी, साहब के मन माने॥
निरममता निरबैर समत ते, निरसका निरबाने।
धरनी काम राम अपने ते, चरन कमल लपटाने॥

हरि जन वा मद के मतवारे।
जो मद बिना काढि बिनु भाठी, बिनु अग्निहिं उदगारे॥
बास अकास घराघर भीतर, बुंद झरै झलका रे।
चमकत चद अनंद बढ़ो जिव, शब्द सघन निरुवारे॥
बिनु कर धरे बिना मुख चाखे, बिनहिं पियाले ढारे।
ताखन स्यार सिंह को पौरुख, जुत्थ गजद बिडारे॥
कोटि उपाय करै जो कोई, अमल न होत उतारे।
धरनी जो अलमस्त दिवाने, सोइ सिरताज हमारे॥

हित करि हरि नामहिं लाग रे।
घरी घरी घरियाल पुकारै, का सोवै उठि जाग रे॥
चोआ चदन चुपड़ तेलना, और अलबेली पाग रे।
सो तन जरे खड़े जग देखो, गूद निकारत काग रे॥
मात पिता परिवार सुता सुत, बधु त्रिया रस त्याग रे।
साधु के सगति सुमिर सेचित होइ जो फिर मोटे भाग रे॥
समब्रत जरै बरै नहिं जब लगि, तब लगि खेलहु फाग रे।
धरनीदास तासु बलिहारी, जहँ उपजै अनुराग रे॥

ऐसे राम भजन करु बाव रे।
बेद साखि जन कहत पुकारे, जो तेरे चित चाव रे ॥
काया दुवार हुवै निरखु निरतर, तहाँ ध्यान ठहराव रे।
तिरवेनी एक संगहि सगम, सुन्न सिखर कह धाव रे ॥
उदधि उलघि अनाहद निरखौ, अरध उरध मधि ठाँव रे।
राम नाम निसु दिन लव लागे, तबहिं परम पद पाव रे ॥
तह है गगन गुफा गढ गाढ़ो, जहाँ न पवन पहुाव रे।
धरनीदास तासु पद बदे, जो यह जुगति लखाव रे ॥

मेरो राम भलो व्योपार हो।
वा सों दूजा दृष्टि न आवे, जाहि करो रोजगार ॥
जो खेती तो उहै कियारी, बिनु बीज बैल हर फार हो।
रात दिवस उद्दम करै, गग जमुन के पार हो ॥
बनिज करो तो उहै परोहन, भरो बिबिधि परकार हो।
रात दिवस उद्दम करै, गग जमुन के पार हो ॥
बनिज करो तो उहै परोहन, भरो बिबिध परकार हो।
लाभ अनेक मिले सतसगति, सहजहिं भरत भडार हो ॥
जो जाचो तो वाहि को जाचो, फिरौ न दूजै दुवार हो।
धरनी मन बच क्रम मानो, केवल अधर अधार हो ॥

जुगजुग सतन की बलिहारी।
जो प्रभु अलख अमूरत अविगत तासु भजन निरवारी।
मन बच क्रम जगजीवन को व्रत, जीवन को उपकारी।
संतन साँच कही सबहिन ते, सुत पितु भूप भिखारी ॥
ढोलिया ढोल नगर जो मारै, गृह गृह कहत पुकारी।
गोधन जुत्थ पार करिबे को, पीटत पीठ पहारी ॥
एहि जग हरि भगता पतिबरता, अवर बसै बिभिचारी।
धरनी धृग जीवन है तिन्ह को, जिन्ह हरि नाम बिसारो ॥

जो जन भक्त बछल उपवासी।
ता को भवन भयो उजियारी, प्रगटी जोति दिवासी ॥
लोक लाज कुल कानि बिसारी, सार सब्द को गासी।
तिन्ह को सुजस दसो दिसि बाढो बवन सके करि हाँसी ॥

हरि ब्रत सकल भक्त जन गहि गहि, जम ते रहे मवासो।
देह धरी परमारथ कारन, अंत अमैपुर बासी॥
काम क्रोध तृस्ना मद मिथ्या, सहज भये बनबासी।
सतत दीन दयाल दयानिधि, धरनी जन सुखरासी॥

मोहि कछु नाहि बिसाय, कोउ केसहु कहि जाव री॥ टेक॥
झाकि झरोखे रावला, मन मोहन रूप देखाज री।
दृष्टि परे परबस पर्‌यो घर, घरहु न मोहिं सोहाय री॥
जस जल चर जल में चरे, मख चारो सहज समाय री।
निगलत तो वहि निर्भय, अब उगलत उगलि न जाय री॥
जस पछी बन बैठियो, अपनो तन मन ठहराय री।
नर को मेद न भेदियो, पर अवचक लागे आय री॥
दोहा—जाहि परो दुख आपनो, जो जाने पर पीर।
धरनी कहत सुन्यो नहि, बाझ की छाती छीर॥

एक अलाह के मै कुरबानी। दिल ओझनल मेरा दिलजानी॥
तू मेरा साहब मैं तेरा बंदा। तू मेरि सभी हवस पहिचदा॥
बार बार तुम कह सिर नावों। जानि जरूर तुम्हे गोहरावों॥
तुमहिं हमारे मक्का मदीना। तुमहीं रोजा रिजिक रोजीना॥
तुमहीं कोरान खतम खतमाना। तुम तसबी अरु दीन हमाना॥
मैं आसिक महबूब तू दरसा। बेगर तोहि जहान जहर सा॥
देहु दिदार दिलासा येही। नातर जाव बिनसि बरु देही॥
कादिर तुमहिं कदर को जाना। मै हिन्दू किधों मूसलमाना॥
धरनीदास खड़े दरवाजा। सब के तुमहि गरीब निवाजा॥

मै निरगुनिया गुन नहिं जाना। एक धनी के हाथ बिकाना॥
सोह प्रभु पक्का मैं अति कच्चा। मैं झूठा मेरा साहब सच्चा॥
मै ओछा मेरा साहब पूरा। मैं कायर मेरा साहब सूरा॥
मैं मूरख मेरा प्रभु ज्ञाता। मैं किरपिन मेरा साहब दाता॥
धरनी मन मानर इक ठाउँ। सो प्रभु जीवो मैं मरिजाउँ॥

जब लग प्रेम तनु नहिं जाने।
तब लग भरम भूत नहिं भाजे, करम कींच लपटाने॥
सहस नाम कहि कहा भयो मन, कोटि कहत न अघाने।
भूले भरम भागवत पढ़ि के, पूजत फिरत पखाने॥

का गिरि कंदर मंदर माहें, कंद मूरि खनि खाने।
कहा जो बरष हजार रह्यो तन, अंत बहुरि पछिताने ॥
दानि कबीसुर सरसुती, रंक होहु भा राने।
प्रेम प्रतीत अमिय परचे बिनु, मिले न पद निरबाने ॥
मन बच करम सदा निसिबासर, दूजो ज्ञान न ध्याने।
धरनी जन।सतगुरु सिर ऊपर, भक्त बछल भगवाने ॥

एक धनी धन मोरा हो ॥ टेक ॥
काहू के धन सोना रूपा, काहू के हाथी घोरा।
काहू के मनि मानिक मोती, एक धनी धन मोरा हो ॥
राज न हरै जरै न अगिन तें, कैसहु पाय न चोरा हो।
खरचत खात सिरात कबहि नहिं, भुइं घाट घाट नहि छोरा हो ॥
नहिं संदूक,नहिं भुइ खनि गाड़ी, नहिं पटि घालि मरोरा हो।
नैन के ओझल पलकन राखों, साझ दिवस निसि भोरा हो ॥
जब धन लै मनि बेचन चाहे, तीनि हाट टकटोरा हो।
कोई बस्तु नाहिं ओहि जोगे, जो मोलऊं सो थोरा हो ॥
जा धन तें जन भये धनी बहु, हिंदू तुरुक करोरा हो।
सो धन धरनी सहजहिं पायो, केवल सतगुरु के निहोरा हो ॥

राग टोडी

जब मेरो यार मिले दिलजानी, होइ लवलीन करौं मेहमानी।
हृदय कमल बिच आसन सारी, ले सरधा जल चरन खटारी ॥
हित के चंदन चरचि चढ़ायो, प्रीति के पंखा पवन डोलायो।
भाव के भोजन परसि जेंवायो, जो उबरा सो जूठन पायो ॥
धरनी इत उत फिरहि न मोरे, सन्मुख रहहि दोऊ को जोरे।

करता राम करै सोइ होय।
कल बल छल बुधि ज्ञान सयानप, कोटि करै जो कोय ॥
देई तदवा सेवा करिके, मरम भुकै नर लोय।
आवत जात मरत औ जनमत, करम काट अरुभोय ॥
काहे भवन तलि मेष बनायो, ममता मैल न धोय।
मन मवास चपरि नहिं तोडेउ, आस फास नहि छोय ॥
सतगुरु चरन सरन सब पायो, अपनी देंह बिलोय ॥
धरनी धरनि फिरत जेहि कारन, घरहिं मिले प्रभु सोय ॥

राग गौरी

सुमिरौ हरि नामहिं बौरे टेक ॥
चक्रहु चाहि चलै चित चचल, मूल मता गहि निस्चल कोरे ॥
पाचहु ते परिचै करु प्रानी, काहे के परत पचीस कै भौरे ।
जौं लगि निरगुन पथ न सूझै, काज कहा महि मंडल दौरे ॥
सब्द अनाहद लखि नहि आवै, चारो पन चलि ऐसहि गौरे ।
ज्यों तेली को बैल बिचारा, घरहिं मे कोस पचासक भौरे ॥
दया धरम नहिं साधु की सेवा, काहेसे सो जनमें घर चौरे ।
धरनीदास तासु बलिहारी, झूठ तजौ जिन्ह साचहिं धौरे ॥

राग कल्यान

जाके गुरुचरनन चित लागा ।
ताके मन की भरम भुलानो, धधा धोखा भागा ॥
सो जन सोवत अवचकही में, सिंह सरीखे जागा ।
धनि सुत जन धन भवन न भावत, धावत बन बैरागा ॥
हरखित हंस दसा चलि आयो, दुरिगयो दुरमत कागा ॥
पाचहुं को परपच न लागै, कोटि करै जौं दागा ॥
साच अमल तहं झूठ न झाके, दया दीनता पागा ।
सत्त सुकृत सतोष समानो, ज्यौं सूई मध धागा ॥
ले मन पवन उरध को धावै, उपचु सहज अनुरागा ।
धरनी प्रेम गगन जन कोई, सोइ जन सूर सुभागा ॥

राग केदार

अजहु न गुरुचरनन चित दैहौ ॥टेक ॥
नाना जोनि भटकि भ्रम आये, अब कब प्रेम तीरथहि न्हैहौ ॥
बड कुल बिभव भरम जनि भूलों, प्रभु पैहौ जब दास कहैहौ ।
एह संगति दिन दस की दसा है, कथि कथि पढ़ि पढि पार न पैहौ॥
करम भार सिर ते नहि उतरै, खड खड महि मडल धैहौ ।
बिनु सतगुरु सतलोक न सूझै, जनमि जनमि मरि मरि पछितैहौ ॥
धरनी ह्वैहौ तबही साचे, सतगुरु नाम हृदय ठहरैहौ ॥

राग बिहागरा

जग में सोई जीवन जीया ।
जाके उर अनुराग ऊपजो, प्रेम पियाला पीया ॥
कमल उलटो भर्म छूटो, अजप जप जपिया ।

जनु अंधारे भवन भीतर, बारि राखो दिया ॥
काम क्रोध समोदियो, जिन्ह घरहि में घो किया ।
माया के परिपंच जेते, सकल जानो छिया ॥
बहुत दिन के बहुत अरुभो, सहजहीं सुरुझिया ।
दास धरनी तासु बलि बलि, भूंजियो जिन्ह बिया ॥

राग पजर

तुहि अवलम्ब हमारे हो ।
भावै पगुनागे करो, भावै तुरय सवारे हो ॥
जनम अनेकन बादि गौ, निजु नाम बिसारे हो ।
अब सरनागत रावरी, जन करत पुकारे हो ॥
भवसागर बेरा परो, जल माझ मझारे हो ।
सतत दीनदयाल हो, करे पार निकारे हो ॥
धरनी मन बच कर्मना, तन मन धन वारे हो ।
अपनो बिरद निबाहिये, नहिं बनत बिचारे हो ॥

प्रभु तो बिनु के रखवारा ॥ टेक ॥
हौं अति दीन अधीन अकर्मी, बाउर बैल बिचारा ।
तू दयाल चारो जुग निस्चल, कोटिन्ह अधम उधारा ॥
अब के अजस अवर नहिं लागे, सरबस तोहि बड़ाई ।
कुल मरजाद लोक लजा तजि, गह्यो चरन सिर नाई ॥
मैं तन मन धन तो परवारो, मूरख जानत ख्याला ।
ब्याउर बेदन बांझ न बूझै, बिनु दागे नहिं छाला ॥
तुलसी भूषन भेष बनायो स्रवन सुन्यो मरजादा ।
धरनी चरन सरन सब पायो; छुटिहैं बाद बिवादा ॥

प्रभु तू मेरो प्रानि पियारा ॥ टेक ॥
परिहरि तोहि अवर जो जाचै, तेहि मुख छीया छारा ।
तो पर वारि सकल जग डारौ, जौ बसि होय हमारा ॥
हिंदू के राम अल्लाह तुरुके, बहु बिधि करत बखाना ।
दुहुँ को संगम एक जहा, तहवां मेरो मन माना ॥
रहत निरंतर अंतरजामी, सब घट सहज समाया ।
जोगी पंडित दानि दसो दिसि, खोजत अंत न पाया ॥
भीतर भवन भयो उजियारो, धरनी निरखि सोहाया ।
जा निति देस देसांतर धावो, सो घटहीं लखि पाया ॥

पलटू

पलटूदास के जीवन सम्बंधी ज्ञातव्य बातें बहुत कुछ खोज करने पर भी अभी तक नहीं जानी जा सकी हैं। इनके सगे भाई पलटूप्रसाद जी ने (जिनका संसारी नाम कुछ और ही था) अपनी 'भजनावली' नाम की पुस्तक में इनका कुछ वृतांत दिया है जिससे केवल इतना जाना जा सका है कि इनका जन्म फैजाबाद जिले के नागपुर-जलालपुर नामक गाँव में एक काँदू बनियाँ के कुल में हुआ था। इनके जीवनकाल के संबंध में केवल यही निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि ये अवध के नवाब शुजाउद्दौला के समय में (ईसा की उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे) विद्यमान थे। इनके गुरु एक बाबा जानकीदास जी थे जिनसे इन्होंने अपने पुरोहित गोविंद जी के साथ दीक्षा ली थी। लाला सीताराम जी का कहना है कि इन्होंने इन्हीं गोविंद जी से ही, जो कि भीखा साहिब शिष्य थे, दीक्षा ली थी।

पलटू जी ने अपने जीवन का अधिकांश अयोध्या में ही बिताया था और वहाँ इनका अखाड़ा अभी तक विद्यमान है। इनके अन्तकाल के सबंध में कहा जाता है कि अयोध्या के वैरागियो ने इनके उपदेशों से चिढ़ कर इन्हे जीता जला दिया था पर यह जगन्नाथ जी मे पुन: प्रगट हुए और वहाँ से कुछ समय बाद अंतर्धान हो गए। इस सिलसिले में नीचे दिया हुआ दोहा प्रसिद्ध है—

> अवध पुरी मे जरि मुए, दुष्टन दिया जराइ।
> जगन्नाथ की गोद में, पल्टू सूते जाइ॥

इनकी कविताओं का एक बड़ा संग्रह वेलवेडियर प्रेस से तीन भागों मे प्रकाशित हुआ है जिसमें ३५३ पृष्ठ और प्रायः १००० पद्य हैं। प्रस्तुत सग्रह उसी से किया गया है।

इनकी रचनाओं में सबसे प्रसिद्ध इनकी कुडलियाँ हैं। इनकी रचनाओं को ध्यान से रखने से स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने कबीर का भावापहरण बहुत किया है। इनके अनेक पदों मे कबीर के ही विचार और भाव कुछ विस्तार से कहे हुए जान

पड़ते हैं। और फिर पुनरुक्ति दोष इनकी कविता में बहुत आया है। अन्य संत कवियों से इनको विशेषता इस बात में है कि शांत के अतिरिक्त वीर और शृंगार रस की छटा भी यत्र तत्र इनकी कविता में दिखाई पड़ती है। वीर रस पर तो चरनदास जी ने भी कविता की है और ओज गुण लाने में कदाचित् यह पलटू से अधिक सफल भी हुए हैं पर शृंगारी कवियों का प्रभाव शायद इन्हें छोड़ कर अन्य किसी संत कवि पर नहीं पड़ा है। पौराणिक भक्ति की व्याख्या और नीति के उपदेश इनके भी उतने ही अच्छे और प्रभावशाली हुए हैं जितने चरनदास जी के।

इनकी भाषा बहुत परमार्जित और सुबोध है और अधिकतर संत कवियों की भांति ये भाषा तथा छंद आदि की कविता के वाह्य रूप के संबंध में असावधान नहीं थे।

पलटू

शब्द

फूटि गया असमान सब्द की धमक मे।
लगी गगन में आग सुरति की चमक मै॥
सेसनाग औ कमठ लगे सब काँपने।
अरे हाँ पलटू सहज समाधि कि दसा खबर नहिं आपने॥

अरिल

जो कोइ चाहे नाम तो अनाम है।
लिखन पढन में नहिं निअच्छर काम है॥
रूप कहौ अनरूप पवन अनरेख ते।
अरे हाँ पलटू गैब दृष्टि से सत नाम वह देखते॥

कुण्डलिया

खेलु सिताबी फाग तू बीती जात बहार।
बीती जात बहार सबत लगने पर आया॥
लीजै डफ्फ बजाय सुभग मानुष तन पाया।
खेलो घूघट खोलि लाज फागुन मे नाहीं॥
जे कोइ करिहै लाज काज ना सुपनेहुँ माहीं।
प्रेम की माट भराय सुरति की करु पिचकारी॥
ज्ञान अबीर बनाय नाम की दीजै गारी।
पलटू रहना है नहीं सुपना यह संसार।
खेलु सिताबी फाग तू बीती जात बहार॥

कमठ दृष्टि जो लावई सो ध्यानी परमान।
सो ध्यानी परमान सुरत से अडा सेवै॥
आपु रहै जल माहिं सूखे में अडा देवै।
जस पनिहारी कलस भरे मारग में आवै॥
कर छोड़े मुख बचन चित्त कलसा में लावै।
फनि मनि धरै उतरि आप चरने को जावै॥
वह गाफिल ना पड़ै सुरत मनि माहिं रहावै।

पलटू सब कारज करै सुरत रहै अलगान ॥
कमठ दृष्टि जो लावई सो ध्यानी परमान ॥

माया की चक्की चलै पीसि गया ससार।
पीसि गया ससार बचै ना लाख बचावे ॥
दोऊ पट के बीच कोऊ ना साबित जावै।
काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे।
तिरगुन डारै झीक पकरि के सबै निकारे ॥
दुरमति बड़ी सयानि सानि कै रोटी पोवै।
करम तवा में धारि सेकि कै साबित होवै ॥
तृस्ना बड़ी छिनारि जाइ उन सब घर घाला।
काल बड़ा बरियार किया उन एक निवाला ॥
पलटू हरि के भजन बिनु कोऊ न उतरै पार।
माया की चक्की चलै पीसि गया संसार ॥

क्या सोवै तू बावरी चाला जात बसंत।
चाला जात बसंत कंत ना घर में आए ॥
धृग जीवन है तोर कत बिन दिवस गँवाये।
गर्ब गुमानी नारि फिरै जोबन की माती ॥
खसम रहा है रूठि नहीं तू पठवै पाती।
लगै न तेरो चित्त कंत को नाहिं मनावै ॥
का पर करै शिंगार फूल की सेज बिछावै।
पलटू ऋतु भरि खेलि ले फिर पछितैहै अत।
क्या सोवैं तू बावरी चाला जात बसत ॥

प्रेम

प्रेम बान जोगी मारल हो कसकै हिया मोर।
जोगिया कै लालि लालि अँखिया हो जस कँवल कै फूल ॥
हमरी सुरुख चुनरिया हो दूनों भये तूल।
जोगिया कै लेउँ मिर्गछलवा हो आपन पट चीर ॥
दूनौं कै सियब गुदरिया हो होइ जाबै फकीर।
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो ताकिन्हि मोरी ओर ॥
चितवन में मन हरि लियो है, जोगिया बड़ ,चोर।
गग जमुन के बिचवा हो, बहै झिरहिर नीर ॥

तेहि ठैयाँ जोरल सनेहिया हो, हरि लै गयो पीर।
जोगिया अमर मरै नहिं हो पुजवल मोरी आस॥
कर लिखा बर पावल हो, गावै पलटूदास॥

साहिब के दास कहाय यारो,
जगत की आस न राखिये जी।
समरथ स्वामी की जब पाया,
जगत से दीन न भाखिये जी॥
साहिब के घर में कौन कमी,
किस बात की अतै आखिये जी।
पलटू जो दुख सुख लाख परै,
वहि नाम सुधा रस चाखिये जी॥
चितवनि चलनि मुसकानि नबनि,
नहि राग द्वेष हार जीत है जी।
पलटू छिमा संतोष सरल,
तिनकौ गावै स्रुति नीति है जी॥

पूरब पुन्न भये प्रगठ सतसंगति के बीच परी।
आनंद भये जब सत मिले वही सुभ दिन वहि सुभ घरी॥
दरसन करत त्रय ताप मिटे बिन कौड़ी दाम मैं जाय तरी।
पलटू आवागवन छूटा, चरनन की रज सीस धरी॥

कुंडलिया

पिय को खोजन मै चली आपुइ गई हिराय॥
आपुइ गई हिराय कवन अब कहै सँदेसा।
जेकर पिय में ध्यान भई वह पिय के भेसा॥
आगि माहिं जो परै सोऊ अगनी है जावै।
भृंगी कीट को मेंटि आपु सम लेइ बनावै॥
सरिता बहि के गई सिंधु मे रही समाई।
सिव सक्ती के मिले नहीं फिर सक्ती आई॥
पलटू दिवाल कहकहा मत कोउ झाँकन जाय।
पिय को खोजन में चली आपुइ गई हिराय॥

रेखता

बिना सतसग न कथा हरिनाम की,
बिना हरिनाम ना मोह भागै।

मोह भागे बिना मुक्ति ना मिलैगी,
मुक्ति बिनु नहिं अनुराग लागै ॥
बिना अनुराग के भक्ति न होयगी,
भक्ति बिनु प्रेम उर नाहि जागै ।
प्रेम बिनु राम ना राम बिनु संत ना,
पलटू सतसंग बरदान माँगै ॥

जिन दिन पाया वस्तु को तिन तिन चले छिपाय ॥
तिन तिन चले छिपाय प्रगट में होय हरकत ।
भीड़ भाड़ से डरै भीड़ में नहीं बरकत ॥
धनी भया जब आप मिली हीरा की खानी ।
ठग है सब संसार जुगत से चलै अपानी ॥
जो हैं रहते गुप्त सदा वह मुक्ति में रहते ।
उन पर आवै खेद प्रगट जो सब से कहते ॥
पलटू कहिये उसी से जो तन मन दै लै जाय ।
जिन जिन पाया वस्तु को तिन तिन चले छिपाय ॥

अरिल

काम क्रोध बसि कोहा नींद औ भूख को ।
लोभ मोह बसि कीहा दुक्ख औ सुक्ख को ॥
पल में कोस हजार जाय यह डोलता ।
अरे हाँ पलटू वह ना लागा हाथ जौन यह बोलता ॥

आठ पहर की मार बिना तरवार की ।
चूके सो नहिं ठाँव लड़ाई धार की ॥
उस ही से यह बने सिपाही लाग का ।
अरे हाँ पलटू पड़ै दाग पर दाग पथ बैराग का ॥

कुंडलिया

काजर दिये से का भया ताकन को ढब नाहिं ।
ताकन को ढब नाहिं ताकन की गति है न्यारी ॥
इकटक लेवै ताकि सोई है पिय की प्यारी ।
ताके नैन मिरोरि नहीं चित अंतै टारै ॥
बिन ताके केहि काम लाख कोउ नैन सवारै ।

ताके में है फेर फेर काजर मे नाहीं ॥
भंगि मिली जो नाहिं नफा क्या जोग के माहीं ।
पलटू सनकारत रहा पिया को खिन खिन माहिं ॥
काजर दिये से का भया ताकन को ढब नाहिं ।

रेखता

नाचना नाचु तो खोलि घूँघट कहैं ।
खोलि कै नाचु ससार देखै ॥
खसत रिझाव तो ओट को छोड़ि दे ।
भर्म ससार कौ दूरि फेंकै ॥
लाज किसकी करै खसम से काम है ।
नाचु भरि पेट फिर कौन छेकै ॥
दास पलटू कहै तुही सुहागिनी ।
सोव सुख सेज तू खसम एकै ॥

सुदरी पिया की पिया को खोजती ।
भई बेहोस तू पिया के कै ॥
बहुत सी पदमिनी खोजती मरि गईं ।
रटत ही पिया पिया एक एकै ॥
सती सब होत हैं जरत बिनु आगि से ।
कठिन कठोर वह नाहिं झोंकै ॥
दास पलटू कहै सीस उतारि के ।
सीस पर नाचु जो पिया ताकै ॥

झूलना

केतिक जुग गये बीति माला के फेरते ।
छाला परि गये जीभ राम के टेरते ॥
माला दीजै डारि मनै को फेरना ।
अरे हाँ पलटू मुह के कहै न मिलै दिलै बिच हेरना ॥

अरिल

जीवन है दिन चारि भजन करि लीजिये ।
तन मन धन सब वारि संत पर दीजिये ॥
संतहि से सब होइ जो चाहै सो करैं ।
अरे हा पलटू संग लगे भगवान सत से वे डेरैं ॥

कुंडलिया

दूसर पलटू इक रहा भक्ति दई तेहि जान।
भक्ति दई तेहि जान नाम पर पकर्यो मोकहँ॥
गिरा परा धन पाय छिपायौं मैं ले ओकहँ।
लिखा रहा कुछ आन कर्म में दीन्हा आनै॥
जानौं महीं अकेल कोऊ दूसर नहिं जानै।
पाछे भा फिर चेत देय पर नाहीं लीन्हा॥
आखिर बड़े की चूक जोई निकसा सोई कीन्हा।
पलटू मैं पापी बड़ा भूल गया भगवान॥
दूसर पलटू इक रहा भक्ति दई तेहि जान।

अरिल

माता बालक कहँ राखती प्रान है।
फनि मनि धरै उतारि ओही पर ध्यान है॥
माली रच्छा करै सींचता पेड़ ज्यों।
अरे हा पलटू भक्त संग भगवान गऊ औ बच्छ त्यौं॥

पलटू साहिब

धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजै धोय।
चादर लीजै धोय मैल है बहुत समानी॥
चल सतगुरु के घाट भरा जह निर्मल पानी।
चादर भई पुरानि दिनों दिन बार न कीजै॥
सतसगत में सौंद ज्ञान का साबुन दीजै।
छूटै कलमल दाग नाम का कलप लगावै॥
चलिये चादर ओढि बहुर नहि भव जल आवै।
पलटू ऐसा कीजिये मन नहिं मैला होय॥
धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजै धोय।

नाम

मीठ बहुत सतनाम है पियत निकारै जान।
पियत निकारै जान मरै की करै तयारी॥
सो वह प्याला पियै सीस को धरै उतारी।
आख मूंदि कै पियै जियन की आसा त्यागै॥

फिरि वह होवै अमर मुये पर उठि कै जागै।
हरि से वे हैं बड़े पियो जनि हरि रस जाई॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस पियत कै रहे डेराई।
पलटू मेरे बचन को ले जिज्ञासू मान॥
मीठ बहुत सतनाम है पियत निकारै जान।

दीपक बारा नाम का महल भया उजियार॥
महल भया उजियार नाम का तेज बिराजा।
सब्द किया परकास मानसर ऊपर छाजा॥
दसो दिसा भई सुद्ध बुद्ध भई निर्मल साची।
छुटी कुमति की गाठि सुमति परगट होय नाचै॥
होत छतीसो राग दाग तिर्गुन का छूटा।
पूरा प्रगटे भाग करम का कलसा फूटा॥
पलटू अँधियारी मिटी बाती दीन्हीं टार।
दीपक बारा नाम का महल भया उजियार॥

हाथ जोरि आगे मिलै लै लै भेट अमीर।
लै लै भेट अमीर नाम का तेज बिराजा॥
सब कोऊ रगरै नाक आइ कै परजा राजा।
सकलदार मै नहीं नीच फिर जाति हमारी॥
गोड़ धोय षट करम बरन पावै लै चारी।
बिन लसकर बिन फौज मुलुक मै फिरी दुहाई॥
जन महिमा सतनाम आपु मे सरस बड़ाई।
सतनाम के लिहे से पलटू भया अमीर॥
हाथ जोरि आगे मिलै लै लै भेट अमीर।

सीतल चंदन चंद्रमा तैसे सीतल संत॥
तैसे सीतल संत जगत की ताप बुझावै।
जो कोई आवै जरत मधुर मुख बचन सुनावै॥
धीरज सील सुभाव छिमा ना जात बखानी।
कोमल अति मृदु बैन बज्र को करते पानी॥
रहन चलन मुसकान ज्ञान को सुगँध लगावैं।
तीन ताप मिट जाय संत के दरसन पावैं॥
पलटू ज्वाला उदर की रहै न मिटै तुरत।
सीतल चंदन चंद्रमा तैसे सीतल संत॥

हरि अपनो अपमान सह जन की सही न जाय।
जन की सही न जाय दुर्बासा की क्या गत कीन्हा॥

भुवन चतुर्दस फिरै सबै दुरियाय जो दीन्हा।
पाहि पाहि कर परै जबै हरि चरनन जाई॥
तब हरि दीन्ह जवाब मोर बस नाहिं गुसाईं।
मोर द्रोह करि बचै करौं जन द्रोहक नासा॥
माफ करै अंबरीक बचोगे तब दुर्वासा।
पलटू द्रोही संत कर इन्है सुदर्सन खाय॥
हरि अपनो अपमान सह जन की सही न जाय।

पाखंडी

पिसना पीसै राड री पिउ पिउ करै पुकार।
पिउ पिउ करै पुकार जगत को प्रेम दिखावै॥
कहवै कथा पुरान पिया को तनिक न भावै।
खिन रोवै खिन हँसै ज्ञान की बात बतावै॥
आप न रीझै भाँड और को बैठि रिझावै।
सुनै न वा की बात तनिक जो अंतर ज्ञानी॥
चाहै मेटा वीव चलै ना सुपथ रहानी।
पलटू ऊपर से कहै भीतर भरा बिकार॥
पिसना पीसै राड री पिउ पिउ करै पुकार।

पर दुख कारन दुख सहै सन असंत है एक।
सन असत है एक काट के जल में सारै॥
कूचै खैंचै खाल उपर से मुँगरा मारै।
तेकर बटि के भाँज माँजि कै बरता रसरा॥
नर की बाँधै मुसुक बाँधते थउ और बछुरा।
अमरजाल फिर होय बझावै जलचर जाई॥
खग मृग जीवा जतु तेही मे बहुत बझाई।
जिउ दै जिउ सतावते पलटू उनकी टेक॥
पर दुख कारन दुख सहै सन असत है एक।
बिसवा किये सिंगार है बैठी बीच बजार॥
बैठी बीच बजार नजारा सब से मारै।
बाते मीठी करै सबन की गाँठ निहारै॥
चोवा चंदन लाइ पहिरि के मलमल खासा।
पँचभतरी भई करै औरन की आसा॥
लेइ खसम को नाँव खसम से परिचै नाहीं।
केचि पढन को नाँव समन को ठगि ठगि खाहीं॥

पलटू तेकर बात है जेकरे एक भतार।
बिस्वा किये सिंगार है बैठी बीच बजार॥

हवा हिरिस पलटू लगी नाहक भये फकीर।
नाहक भये फकीर पीर को सेजा नहीं॥
अपने मुंह से बड़े कहावे सब से जाहीं।
धमधूसर होइ रहै बात में सब से लड़ते॥
लाम काफ वो कहै इमान को नाहीं डरते।
हमहीं हैं दुरवेस और ना दूसर कोई॥
सब को देहिं मुराद यकीन से ओकरे होई।
मन मुरीद होवै नहीं आप कहावै पीर॥
हवा हिरिस पलटू लगी नाहक भये फकीर।

जौ लगि फाटै फिकिर न गई फकीरी खोय।
गई फकीरी खोय लगी है मान बड़ाई॥
मोर तोर मे परा नाहि छूटी दुचिताई।
दुख सुख सपति बिपति सोच दोऊ की लागी॥
जीवन की है चाह मरन की डेर नहिं त्यागी।
कौड़ी जिव के संग रैन दिन करै कल्पना॥
दुष्ट कहै दुख देइ मित्र को जानै अपना।
पलटू चिंता लगी है जनम गॅवाये रोय॥
जौ लगि फाटै फिकिर ना गई फकीरी खोय।

चितावनी

धूआ का धौरेहरा ज्यो बालू की भीत।
ज्यो बालू की भीत ताहि को कौन भरोसा॥
ज्यों पक्का फल डारि गिरत से लगै न दोसा।
कच्चे घले ज्यो नीर पानी के बीच बतासा।
दारू भीतर अगिनि जिवन की ऐसी आसा॥
पलटू नर तन जात है घास के ऊपर सीत॥
धूआ का धौरेहरा ज्यों बालू की भीत।

यही दिदारी दार है सुनहु मुसाफिर लोग।
सुनहु मुसाफिर लोग भेट फिर बहुरि न होना॥

को तुम को हम आय मिले सपने मे सोना।
हिल मिल दिन दस रहे ताहि को सोच न कीजै॥
कोऊ है थिर नाहि दोस ना हमको दीजै।
अहिर बाँधि के गाय एक लेहडे मे आनी॥
कूवा की पनिहारि गई ले घर घर पानी।
पलटू मछरी आम ज्यों नदी नाँव सजोग॥
यही दिदारी दार है सुनहु मुसाफिर लोग।

आग लगी लका दहै उनचासौ बही बयार।
उनचासौ बही बयार ताहि को कौन बचावै॥
घरे के प्रानी रहे सोऊ आगी गुहरावै।
फूटी घर की नारि सगा भाई अलगाना॥
बड़े मित्र जो रहे भये सब सत्रु समाना॥
कंचन को सब नगर रती को रावन तरसै॥
दिया सिंधु ने थाह ऊपर से परवत बरसै।
पलटू जेहि ओर राम हैं तेहि ओर सब ससार॥
आग लगी लका दहै उनचासौ बही बयार।

ज्यों ज्यो सूखे ताल हैं त्यो त्यो मीन मलीन।
त्यों त्यों मीन मलीन जेठ में सूख्यो पानी॥
तीनो पन गये बीति भजन का मरम न जानी।
कॅवल गये कुम्हिलाय हस ने किया पयाना॥
मोन लिया कोउ मारि ढाव ढेला चिटराना।
ऐसी मानुष देह वृथा में जात अनारी।
भूला कौल करार आप से काम बिगारो॥
पलटू बरस औ मास दिन पहर घड़ी पल छीन।
ज्यों ज्यों सूखै ताल है त्यों त्यो मीन मलीन॥

की तौ इक डौरै रहै की दुइ मे इक मर जाय।
दुइ मे इक मर जाय रहत है दुबिधा लागी॥
सुचित नहीं दिन रात उठत बिरहा की आगी।
तुम जीवो भगवान मरन है मेरो नीका॥
तुम बिन जीवन धिक्क लगै कारिख की टीका।
की तुम आवो लेव इहा की प्रान अपना॥
दोऊ को दुख होय हंस जोड़ी अलगाना।

कह पलटू स्वामी सुनो चिन्ता सही न जाय ॥
की तौ इक ठौर रहै की दुइ मे इक मर जाय ।

आसिक का घर दूर है पहुँचे बिरला कोय ।
पहुँचे बिरला कोय होय जो पूरा जोगी ॥
बिंद करै जो छार नाद के घर मे भोगी ।
जीते जी मरि जाय मुए पर फिर उठि जागै ॥
ऐसा जो कोइ होइ सोई इन बातन लागै ।
पुरजे पुरजे उड़ै अन्न बिनु बस्तर पानी ॥
ऐसे पर ठहराय सोई महबूब बखानी ।
पलटू आप लुटावही काला मुँह जब होय ॥
आसिक का घर दूर है बिरला पहुँचे कोय ।

जहाँ तनिक जल बीछुड़ै छोड़ि देतु है प्रान ।
छोड़ि देतु है प्रान जहाँ जल से बिलगावै ॥
देइ दूध में डारि रहै ना प्रान गँवावै ।
जा को वही अहार ताहि को का लै दीजै ॥
रहै न कोटि उपाय और सुख नाना कीजै ।
यह लीजै दृष्टात सकै सो लेइ बिचारी ॥
ऐसो करै सनेह ताहि को मैं बलिहारी ।
पलटू ऐसी प्रीति करु जल और मीन समान ॥
जहा तनिक जल बीछुड़ै छोड़ि देतु है प्रान ।

ध्यान

जैसे कामिनि के बिषय कामी लावै ध्यान ।
कामी लावै ध्यान रैन दिन चित्त न टारै ॥
तन मन धन मर्जाद कामिनि के ऊपर वारै ।
लाख कोऊ जो कहै कहा ना तनिक मानै ॥
बिन देखे ना रहै वाहि को सरबस जानै ।
लेय वाहि को नाम वाहि की करै बड़ाई ॥
तनकि बिसारै नाहि कनक ज्यों किरपिन पाई ।
ऐसी प्रीति अब दीजिए पलटू को भगवान ।
जैसे कामिनि से बिपय कामी लावै ध्यान ॥

घट मठ

साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास ॥
साहिब तेरे पास याद करु होवै हाजिर ।
अंदर धसि कै देखु मिलेगा साहिब नादिर ॥
मान मनी हो धना नूर तब नजर में आवै ।
बुरका डारै टारि खुदा बाखुदा दिखरावै ॥
रूह करै मेराज कुफर का खोलि कराबा ।
तीसौ रोज रहै अदर में सात रिकाबा ॥
लाभकान मे खूब को पावै पलटूदास ।
साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास ॥
खोजत खोजत मरि गये घर ही लागा रंग ॥
घरही लागा रंग कीन्ह जब सतन दाया ।
मन में भा विस्वास छूटि गइ सहजै माया ॥
बस्तु जो रही हिरान-ताहि का लगा ठिकाना ।
अब चित चलै न इन उत आपु में आपु समाना ॥
उठती लहर तरंग हृदय में सीतल लागे ।
मरम गई है सोय बैठि के चेतन जागे ॥
पलटू खातिर जमा भइ सतगुरु के परसग ।
खोजत खोजत मरि गये घर ही लाला रंग ॥

सूरमा

सत चढ़े मैदान पर तरकस बाँधे ग्यान ॥
तरकस बाँधे मोह ज्ञान दल मारि हटाई !
मारि पाँच पच्चीस दिहा गढ आगि लगाई ॥
काम क्रोध को मारि कैद मैं मन को कीन्हा ।
नव दरवाजे छोड़ि सुरत दसए पर दीन्हा ॥
अनहद बाजै तूर अटल सिहासन पाया ।
जीव भया सतोष आय गुरु नाम लखाया ॥
पलटू कफ्फन बाँधि कै खेंचो सुरति कमान ।
संत चढ़ें मैदान पर तरकस बाँधे ग्यान ॥
लागी गाँसी सबद की पलटू मुआ तुरंत ॥
पलटू मुआ तुरत खेत के ऊपर जाई ।
सिर पहिले उडि रुंड से करै लड़ाई ॥
तन में तिल तिल धाव परदा खुलि लटकत जाई ।

हेफ खाइ सब लोग लड़ै यह कठिन लड़ाई ॥
सतगुरु मारा तीर बीच छाती में मेरी ।
तीर चला होइ पवन निकरि गा तारू फोरी ॥
कहने वाले बहुत हैं कथनी कथै बेग्रंत ।
लागी गाँसी सबद की पलटू मुआ तुरंत ॥

पतिब्रता

पतिरता को लच्छन सब से रहे अधीन ॥
सब से रहे अधीन टहल वह सब की करती ।
सास ससुर औ भसुर ननद देवर से डरती ॥
सब का पोषन करै सभन की सेज बिछोवै ।
सब को लेय सुताय पास तब पिय के जावै ॥
सूतै पिय के पास सभन को राखै राजी ।
ऐसा भक्त जो होय ताहि की जीती बाजी ॥
पलटू बोलै मीठे बचन भजन मे है लौलीन ।
पतिबरता को लच्छन सब से रहै अधीन ॥

सोई सती सराहिये जरै पिया के साथ ॥
जरै पिया के साथ सोई है नारि सयानी ।
रहै चरन चित लाय एक से और न जानी ॥
जगत करै उपहास पिया का संग न छोड़ै ।
प्रेम की सेज बिछाय मेहर की चादर ओढ़ै ॥
ऐसी रहनी रहै तजै जो भोग बिलासा ।
मारै भूख पियास आदि संग चलती स्वासा ॥
रैन दिवस बेहोस पिया के रंग में राती ।
तन की सुधि है नहीं पिया संग बोलत जाती ॥
पलटू गुरु परसाद से किया पिया को हाथ ।
सोई सती सराहिये जरै पिया के साथ ॥

उपदेस

जाकी जैसी भावना तासे तस व्यौहार ।
तासे तस व्यौहार परसपर दूनौ तारी ॥
जो जेहि लाइक होय सोई तस ज्ञान बिचारी ।
जो कोइ डारै फूल ताहि को फूल तयारी ॥

जो कोइ गारी देत ताहि को हाजिर गारी।
जो कोइ अस्तुति करै आपनी अस्तुति पावै॥
जो कोइ निंदा करै ताहि के आगे आवै।
पलटू जस में पीव का वैसे पीव हमार॥
जाकी जैसी भावना तासे तस ब्योहार।

तो कह कोई कछु कहै कीजै अपनो काम।
कीजै अपनो काम जगत को भूकन दीजै॥
जाति बरन कुल खोय सतन को मारग लीजै।
लोक बेद दे छोड़ि करै कोउ कितनौं हाँसी॥
पाप पुन्न दोउ तजौ यही दोउ गर की फासी।
करम न करिहौ एक मरम कोउ लाख दिखावै॥
टरै न तेरी टेक कोटि ब्रह्मा समुझावै।
पलटू तनिक न छोड़िहौ जिउ कै सगै नाम॥
तो कहँ कोऊ कछु कहै कीजै अपनो काम।

मन की मौज से मौज है और मौज किहि काम।
और मौज किहि काम मौज जो ऐसी आवें॥
आठौ पहर अनन्द भजन में दिवस बितावै।
ज्ञान समुद्र के बीच उठत है लहर तरंगा॥
तिरबेनी के तीर सुरसती जमुना गगा।
सत सभा के मध्य शब्द की फड जब लागै॥
पुलकि पुलकि गलतान प्रेम मे मन को पागै।
पलटू रहै बिबेक से छूटै नहिं सतनाम॥
मन की मौज से मौज है और मौज किहि काम।

ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों गरुई होय।
त्यों त्यों गरुई होय सुनै सतन की बानी॥
ढोप ढोप अघाय ज्ञान के सागर पानी।
रस रस बाढ़े प्रीति दिनों दिन लागन लागी॥
लगत लगत लगि जाय भरम आपुइ से भागी।
रस रस सो चलै जाय गिरौ जो आतुर धावै॥
तिल तिल लागै रंग भगि तब सहजै आवै।
भक्ति पीढ पलटू करै धीरज धरै जो कोय॥
ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों गरुई होय।

हस्ती बिनु मारै मरै करै सिंघ को संग ॥
करै सिघ को सग सिघ की रहनी रहना।
अपनो मारा खाय नहीं मुरदा को गहना ॥
नहिं भोजन नाहिं आस नहीं इद्री को तिष्टा।
आठ सिद्धि नौ निद्धि ताहि को देखत बिष्टा ॥
दुष्ट मित्र सब एक लगै ना गरमी पाला।
अस्तुति निंदा त्यागि चलत है अपना चाला ॥
पलटू भलूठा ना टिकै जब लगि लगै न रंग।
हस्ती बिनु मारै मरै करै सिघ को संग ॥

पलटू सरबस दीजिये मित्र न कीजै कोय।
मित्र न कीजै कोय चित दै बैर बिसाहै ॥
निस दिन होय बिनास और वह नाहि निबाहै।
चिंता बाढै रोग लगा छिन छिन तन छीजै ॥
कम्मर गरुआ होय ज्यो ज्यो पानी से भीजै।
जोग जुगत की हानि जहाँ चित अतै जावै ॥
भक्ति आपनी जाय एक मन कहूँ लगावै।
राम मिताई ना चलै और मित्र जो होय ॥
पलटू सरबस दीजिये मित्र न कीजै कोय।

भेद

उलटा कूवा गगन मे तिस मे जरै चिराग।
तिस मे जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती ॥
छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती।
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर मे आवै ॥
बिन सतगुरु कोउ होय नहीं वाको दरसावै।
निकसै एक अवाज चिराग की जोतिहि माहीं ॥
ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाहीं।
पलटू जो कोइ सुनै ताके पूरे भाग ॥
उलटा कूवा गगन मे तिसमें जरै चिराग।

बसी बाजी गगन में मगन भया मन मोर ॥
मगन भया मन मोर महल अठवें पर बैठा।

जह उठै सोहगम शब्द शब्द के भीतर पैठा ।।
नाना उठैं तरग रग कुछ कहा न जाई ।
चाँद सुरज छिप गये सुषमना सेज बिछाई ।।
छूटि गया तन येह नेह उनहीं से लागी ।
दसवाँ द्वारा फोडि जोति बाहर है जागी ।।
पलटू धारा तेल की मेलत है गया भोर ।
बसी बाजी गगन मे मगन भया मन मोर ।।

चढे चौमहले महल पर कुजी आवे हाथ ।
कुंजी आवे हाथ शब्द का खोलै ताला ।।
सात महल के बाद मिलै अठए उजियाला ।
बिनु कर बाजै तार नाद बिनु रसना गावे ।।
महा दीप इक बरै दीप मे जाय समावे ।
दिन दिन लागै रग सफाई दिल की अपने ।।
रस रस मतलब करै सिताबी करै न सपने ।
पलटू मालिक तुही है कोई न दूजा साथ ।।
चढ़े चौमहले महल पर कुजी आवे हाथ ।

चाँद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहिं रात ।
नहीं दिवस नहिं रात नाहिं उतपति ससारा ।।
ब्रह्मा बिस्नु महेस नाहिं तब किया पसारा ।
आदि ज्योति बैकुठ सुन्य नाहीं कैलासा ।।
सेस कमठ दिगपाल नाहिं धरती आकासा ।
लोक बेद पलटू नहीं कहौ मैं तबकी बात ।।
चाँद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहिं रात ।

झडा गड़ा है जाय के हद बेहद के पार ।
हद बेहद के पार तूर जहँ अनहद बाजैं ।।
जगमग जोति जड़ाव सीस पर छत्र बिराजै ।
मन बुधि चित रहे हार नही कोउ वह घर पावै ।।
सुरत शब्द रहै पार बीच से सब फिरि आवै ।
बेद पुरान की गम्म सबै ना उहवा जाई ।।
तीन लोक के पार तहा रोसन रोसनाई ।

पलटू ज्ञान के परे है तकिया तहां हमार ॥
झंडा गड़ा है जाय के हद बेहद के पार ।

जागत मे एक सूपना मोहि पड़ा है देख ।
मोहिं पड़ा है देखि नदी इक बड़ी है गहिरी ॥
ता में धारा तीन बीच मे सहर तिलौरी ।
महल एक अँधियार बरै तहँ गैब की बाती ॥
पुरुष एक तहँ रहै देखि छबि वाकी माती ।
पुरुष अलापै तान सुना मैं एक ठो जाई ॥
वाहि तान के सुनत तान में गई समाई ।
पलटू पुरुष परान वह रंग रूप नहिं रेख ॥
जागत मे एक सूपना मोहिं पड़ा है देख ।

अद्वैत

जल से उठत तरग है जल ही माहि समाय ।
जल ही माहिँ समाय सोई हरि सोई माया ॥
अरुझा बेद पुरान नहीं काहू सुरझाया ।
फूल मंहै ज्यों बास काठ मे आग छिपानी ॥
ध महै घिउ रहै नीर घट माहिं लुकानी ।
जो निर्गुन से सगुन और न दूजा कोई ॥
दूजा जो कोइ कहै ताहि को पातक होई ।
पलटू जीव और ब्रह्म से भेद नहीं अलगाया ॥
जल से उठत तरग है जल ही माहिं समाया ।

उलटबाँसी

गंगा पाछे को बही मछरी बही पहार ।
मछरी बही पहार चूल्ह मे फदा लाया ॥
पुखरा भीटै बाँधि नीर में आग छिपाया ।
अहिरिनि फेकैं जाल कुहारिनि भैंस चरावे ॥
तेली के मरिगा बैल बैठि के धुनइनि गावै ।
महुवा मे लागा दाख भाँग मे भया लुबाना ॥
साप के बिल के बीच जाय के मूस लुकाना ।

पलटू संत विवेकी बूझिहैं सब्द सगहार ॥
गंगा पाछे को बही मछरी चढी पहार ।

खसम मुवा तो भल भया सिर की गई बलाय ।
सिर की गई बलाय बहुत सुख हम ने माना ॥
लागे मंगल होन जून लागे सदियाना ।
दीपक बरै अकास महल पर सेज बिछाया ॥
सूतौं महीं अकेल खबर जब मुए की पाया ।
सूतौ पाँव पसारि भरम की डोरी टूटी ॥
मने कौन अब करै खसम बिनु दुबिधा छूटी ।
पलटू सोई सुहागिनी जियतै पिय को खाय ।
खसम मुवा तो भल भया सिर की गई बलाय ॥

माया

नागिनि पैदा करत है आपुइ नागिनि खाय ।
आपुइ नागिनि खाय नागिन से कोऊ ना बाँचे ॥
नेजा धारी सभु नागिनि के आगे नाचे ।
सिंगी ऋषि को जाय नागिनि ने बन में खाई ॥
नारद आगे पड़े लहर उनहूँ को आई ।
सुर नर मुनि गनदेव सभन की नागिन लीलै ॥
जोगी जती औ तपी नहीं काहू को ढीलै ।
संत बिबेकी गरुड़ हैं पलटू देखि डेराय ॥
नागिनि पैदा करत है आपुइ नागिनि खाय ।

कुसल कहाँ से पाइये नागिनि के परसग ।
नागिनि के परसग जीव के भच्छक सोई ॥
पहरू की जै चोर कुसल कहवा से होई ।
रूई के घर बीच तहा पावक लै राखै ॥
बालक आगे जहर राखि करिके वा चाखै ।
कनक धार जो होय ताहि ना अग लगावै ॥
खाया चाहै खीर गाँव मे सेर बसावै ।
पलटू माया से डरै करै भजन मे भग ॥
कुसल कहाँ से पाइये नागिनि के परसग ।

अज्ञानता

घर में जिंदा छोड़ि के मुरदा पूजन जाय।
मुरदा पूजन जायँ भीति को सिरदा नावैं॥
पान फूल औ खाड जाइ कै तुरत चढ़ावैं।
ताल कि माटी आनि ऊँच के बाँधिनि चौरी॥
लीपि पोति कै धरिनि पूरी औ बरा कचौरी।
पीयर लूगार पहिरि जाय के बैठिनि बूढ़ा॥
भरमि अभुवाई मागत हैं खसी कै मूंड़ा।
पलटू सब घर बाँटि के लै लै बैठे खायं॥
घर में जिंदा छोड़ि के मुरदा पूजन जाय।

जगजीवन साहिब

जगजीवनदास

बाबा जगजीवनदास जी बाबा धरनीदास जी के समकालीन माने गए हैं इनकी जन्म तथा मरण तिथि अनिश्चित है। मिश्रबंधुओ तथा पादरी जॉन टामस का अनुमान है कि ये ईसा की अठ्ठारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग मे रहे होंगे। किंतु इनके अनुयायी 'सत्तनामी' पंथ वाले इनकी जन्मतिथि माघ सुदी सप्तमी, मंगलवार, सं० १७२७, तथा मरण वैशाख बदी सप्तमी, मगलवार सं० १८१७ को मानते हैं। ये जाति के चंदेल क्षत्रिय थे और बाराबंकी जिले के सरयू तीर के गरदहा गाँव मे उत्पन्न हुए थे। पादरी जॉन टामस साहब कदाचित् भ्रम से इन्हें खत्री समझते है।

इनके पिता किसान थे और ये भी आरभ मे अपना समय गाय बैल चराने तथा कृषकोचित अन्य कार्यों मे बिताते थे। इनके गुरु से दीक्षित होने के संबंध में एक विचित्र कथा प्रसिद्ध है। एक बार इन्हे बैल चराते समय दो संत मिले। इनमे से एक बुल्ला साहब थे और दूसरे गोविंद साहब। इन लोगों ने इनसे चिलम भरने के लिये आग मांगी। ये आग तो लाए ही पर साथ ही इनकी थकावट दूर करने के अभिप्राय से घर का थोड़ा सा दूध भी लेते आए पर मन में डर रहे थे कि पिता जी को अगर मालूम हो गया तो मार पड़ेगी। बुल्ला साहब ने यह कहते हुए दूध ले लिया कि डरो मत हमे दूध पिलाने से तुम्हारे घर का दूध घटा नही बल्कि बहुत बढ़ गया होगा। इन्होने घर जाकर देखा तो सब बर्तन दूध से लबालब भरे हुए पाए। उल्टे पॉव तुरंत उन दोनो का पीछा किया और कुछ दूर जाकर उन्हे पाया भी। उसी समय इन्होंने उनसे अपने को दीक्षित कर लेने का आग्रह किया। उन्होंने कहा इसकी कोई आवश्यकता नहीं हम लोग तो सिर्फ तुम्हे अपने स्वरूप का ज्ञान कराने भर आए थे तुम उस जन्म के पहुँचे हुए फकीर हो। इतना कह कर उन्होंने एक विचित्र दृष्टि से इनकी ओर देखा और देखते ही इनको अवस्था बदल गई। पर इतने पर भी इन्होंने कुछ चिह्न देने का बडा आग्रह किया। इस पर बुल्ला साहब ने अपने हुक्के से एक काला धागा और गोविंद साहब ने भी अपने हुक्के से एक सफेद धागा निकाल कर दिया जिसे इन्होंने अपनी कलाई पर बाँध लिया। इन्होने बाद में जब अपना 'सत्तनामी' नामक पंथ चलाया तो उनका प्रधान चिह्न दाहनी कलाई पर यही दोरंगा धागा हुआ जिसे 'आँदू' कहते है। कुछ विद्वान विश्वेश्वर पुरी को इनका गुरु मानते हैं।

इसके बाद इनकी प्रसिद्धि होने लगी जिससे गाँव वाले ईर्ष्यावश इन्हें बड़ा तंग करने लगे। अत में इनसे तंग आकर ये सरदहा छोड़ कर पास ही के एक दूसरे गाँव काटवा में चले गए। कहते हैं उसी साल सरयू में बाढ़ आई और सरदहा गाँव बह गया।

इसी प्रकार की कई कथाएँ इनके संबध की प्रसिद्ध हैं। इनके कोई स्वतंत्र ग्रंथ अभी तक हमारे देखने में नहीं आए हैं पर जॉन टामस का कहना है कि उन्हें इनके दो ग्रथ 'ज्ञानप्रकाश' और 'महाप्रलय' मिले हैं। इनकी रचनाओं का एक संग्रह दो भागों में बेलवेडियर प्रेस से निकला है और संग्रहीत पद्य उसी से लिए गए हैं। इनकी शैली की विशेषता है इनकी सरलता और नम्रता। ये दैन्य भाव का परिचय बहुत कराते हैं। इनके पद्यों में भी प्रसाद गुण का प्राधान्य है। इनके बहुत से पद गाने योग्य हैं और बड़े मधुर हैं। इनकी कविता में प्रायः उसी प्रकार की आत्म-ग्लानि, क्षोभ अपने को घोर पापी समझने का भाव तथा नितांत असहायता के भाव मिलते हैं जैसे तुलसीदास जी ने अपनी विनयपत्रिका में प्रगट किए हैं। इस दृष्टि से यह अन्य संत कवियों से पृथक् कहे जा सकते हैं कि यह सगुणोपासक भक्त कवियों की भाँति परमात्मा मे सर्वस्व समर्पण कर देने के पक्षपाती हैं। यों तो इनकी रचना में धार्मिक भाव कम हैं पर जो हैं वह सूर तुलसी आदि वैष्णव कवियों की विचारधारा के अधिक निकट हैं। कबीर के विचारों से कदाचित् यह अधिक प्रभावित नहीं हो सके थे।

—

जगजीवन साहिब

चितावनी

कहाँ गयो मुरली को बजइया, कहाँ गयो रे ।। टेक ।।
एक समय जब मुरली बजायो, सब सुनि मोहि रह्यो रे ।
जिनके भाग्य भये पूर्बज के, ते वहि संग गह्यो रे ।।
खबरि न कोई केहुँ की पाई, को धौं कहाँ गयो रे ।
ऐसे करता हरता यहि जग, तेऊ थिर न रह्यो रे ।।
रे नर बौरे तैं कितना है, केहिं गनती माँ है रे ।
जगजीवनदास गुमान करहु नहि, सत्त नाम गहि रहु रे ।।

मैं तैं जग त्यागि मन, चलिये सिर नाई ।
नाम जानि दीन हीन, करिये दीनताई ।।
अहंकार गर्व तें सब गये हैं बिलाई ।
रावन के सीस काटि, राम की दुहाई ।।
जिन जिन गुमान कीन्ह, मारि गर्द ही मिलाई ।
साधि साधि बाँधि प्रीति ताहि पर सहाई ।।
परसहु गुरु सीस डारि, दुनिया बिसराई ।
जगजीवन आस एक, टेक रहिये लगाई ।।

अरे मन देहु तजि मतवारि ।
जे जे आये जगत मँह इहि गये ते ते हारि ।।
नाहिं सुमिरयौ नाम काँ, सब गयो काम बिगारि ।
आपु काँ जिन बडा जान्यो, काल खायो मारि ।।
जानि आपुहिं छोट जग, रहि रहौ डोरि सँभारि ।
बैठि कै चौगान निरखहु, रूप छबि अनुहारि ।।
रहौ थिर सतसग बासी, देहु सकल बिसारि ।
जगजीवन सतगुरु कृपा करि, लेहिं सबै संवारि ।।

मन महँ नाहिं बूझत कोय ।
नहीं बसि कछु अहै आपन, करै करता होय ।।
कहत मै तैं सूझि नाहीं भर्म भूला सोय ।

पड़े धारा मोह की बसि डारि सर्बस खोय ॥
करै निंदा साध की, परि पाप बूड़ैं सोय।
अंत फजीहत होहिँगे, पछिताय रहिहैं रोय ॥
कहौं समुझि बिचारि के, गहि नाम दृढ़ धरु टोय।
जगजीवन ह्वै रहहु निर्भय, चरन चित्त समोय ॥

होली

कौनि बिधि खेलौ होरी, यहि बन मों भुलानी।
जोगिन ह्वै अंग भसम चढ़ायो, तनहिँ खाक करि मानी।
ढुँढ़त ढुँढ़त मैं थकित भई हौं, पिया पीर नहिँ जानी ॥
औगुन सब गुन एकौ नाहीं, मॉगन ना मैं जानी।
जगजीवन सखि सुखित होहु तुम, चरनन में लपटानी ॥

बिरह

उनहीं सों कहियो मोरी जाय।
ए सखि पैयों परि मैं बिनवौं, काहे हमैं डारिन बिसराय।
मैं का करौं मोर बस नाहीं, दीन्ह्यो अहै मोहि भटकाय ॥
ए सखि साईं मोहिँ मिलावहु, देखि दरस मोर नैन जुड़ाय।
जगजीवन मन मगन होउँ मै, रहौं चरन कमल लपटाय ॥

सखि बॉसुरी बजाय कहाँ गयो प्यारो।
घर की गैल बिसरि गइ मोहि ते, अग न बस्तु सँभारो।
चलत पॉव डगमगत धरनि पर, जैसे चलत मतवारो ॥
घर ऑगन मोहिं नीक न लागै, सब्द बान हिये मारो।
लागि लगन मै मगन वही सों, लोक लाज कुल कानि बिसारो ॥
सुरत दिखाय मोर मन लीन्ह्यो, मै तौ चहौ होय नहि न्यारो।
जगजीवन छबि बिसरत नाहीं, तुम से कहौ सो इहै पुकारि ॥

अरी मोरे नैन भये बैरागी।
भसम चढ़ाय मैं भइउँ जोगिनिया, सबै अभूषन त्यागी।
तलफि तलफि मै तन मन जारयो, उनहिँ दरद नहिं लागी ॥
निसु बासर मोहिं नींद हरी है, रहत एक टक लागी।
प्रीति सों नैनन नीर बहतु हैं, पी पी पी बिनु जागी ॥
सेज आय समुझाय बुझावहु, लेउ दरस छबि मागी।
जगजीवन सखि तृप्त भये हैं, चरन कमल रस पागी ॥

सखी री करौं मै कौन उपाई।
मैं तो ब्याकुल निसि दिन डोलौं उनहिं दरद नहिं आई।
काह जानि कै सुधि बिसराई कछु गति जानि न जाई॥
मैं तौ दासी कलपौं पिय बिनु घर आँगन न सुहाई।
तलफि तलफि जल बिना मीन ज्यों अस दुख मोहिं अधिकाई॥
निर्गुन नाह बाँह गहि सेजिया सूतहि हियरा जुड़ाई।
बिन सँग सूते सुख नहिं कबहूँ जैसे फूल कुम्हलाई॥
ह्वै जोगिनि मैं भस्म लगायौ रहिउ नयन टक लाई।
पैया परौं मैं निरखि निरखि कै महिं का देहु मिलाई॥
सुरति सुमति करि मिलहि एक ह्वै गगन मँदिल चलि जाई।
रहि यहि महल टहल मँह लागी सत की सेज बिछाई॥
हम तुम उनके सूति रहहि सँग मिटै सबै दुचिताई।
जगजीवन सिव ब्रह्मा बिस्नू मन नहिं रहि ठहराई॥
रबि ससि करि कुरबान ताहि छबि पीवो दरस अघाई।

प्रेम

जोगिया भगिया खवाइल, बौरानो फिरौं दिवानी।
ऐसे जोगिया की बलि बलि जैहौं जिन्ह मोहिं दरस दिखाइल।
नहिं करतें नहिं मुखहि पियावै नैनन सुरति मिलाइल॥
काह कहौं कहि आवत नाहीं जिन्ह के भाग तिन्ह पाइल।
जगजीवन दास निरखि छबि देखै जोगिया मुरति मन भाइल॥

साईं तुम सोँ लागो मन मोर।
मैं तौ भ्रमत फिरौं निसुबासर॥
चितवौ तनिक कृपा करि कोर।
नहिं बिसरावहु नहिं तुम बिसरहु॥
अस चित राखहु चरनन ठौर।
गुन ऐगुन मन आनहु नाही॥
मैं तो आदि अंत को तोर।
जग जीवन बिनती कर माँगै॥
देहु भक्ति बर जनि कै थोर।
ऐसे साईं की मैं बलिहारियाँ री॥

ऐ सखि सँग रँग रस मातिउँ देखि रहिउ अनुहरियाँ री।
गगन भवन माँ मगन भइउँ मैं बिनु दीपक उजियरियाँ री॥

झलकि चमकि तह रूप बिराजै, मिटी सकल अँधियरियाँ री ।
काह कहौं कहिबे को नाहीँ लागि जाहि मन मँहियाँ री ॥
जगजीवन वह जोती निर्मल मोती हीरा वरियाँ री ।

गुरु बलिहारियाँ मैं जाउँ ॥ टेक ॥
डोरि लागी पोढि अब मैं जपहुँ तुम्हरो नाउँ ।
नाहि इत उत जात मनुवाँ, गगन बासा गाउँ ॥
महा निर्मल रूप छवि सत निरखि नैन अन्हाउँ ।
नाहिँ दुख सुख भर्म व्यापै, तप्त नीचे आउँ ॥
मारि आसन बैठि थिर ह्वै, काहु नाहिँ डेराउँ ।
जगजीवन निरबान मे, सत सदा सगी आउँ ॥

बिनय

अब की बार तारु मोरे प्यारे, बिनती करि कै कहौं पुकारे ।
नहिँ बसि अहै के तौ कहि हारे, तुम्हरे अब सब बनहि सवारे ॥
तुम्हरे हाथ अहै अब सोई, और दूसरो नाहीं कोई ।
जो तुम चहत करत सो होई, जल थल मँह रहि जोति समोई ॥
काहुक देत हो मत्र सिखाई, सो भजि अंतर भक्ति दढ़ाई ।
कहौं तो कछू कहा नहिँ जाई, तुम जानत तुम देत जनाई ॥
जगत भगत केते तुम तारा, मैं अजान के तान बिचारा ।
चरन सीस मै नाहीं टारौं, निर्मल मुरति निबीन निहारौं ॥
जगजीवन का अब बिस्वास, राखहु सत गुरु अपने पास ।

अब मै कवन गिनती आउँ ।

दियो जबहिँ लखाइ महिँ कहँ तबहिँ सुमिरौ नाउँ ॥
समुझि ऐसे परत महिँ कहँ, बसे सरबस ठाउँ ।
अहो न्यारे कहूँ नाहीं रूप की बलि जाउँ ॥
नाम का बल दियो जेहि कहँ राखि निर्भय गाउँ ।
काल को डर नाहिँ उहवाँ भला पायो दाउँ ॥
चरन सीसहि राखि निरखी, चाखि दरस अघाउँ ।
जगजीवन गुर करहु दाया, दास तुम्हरा आउँ ॥

प्रभु गति जानि नाहीं जाइ ।

अहै केतिक बुद्धि केहिँ महँ कहै को गति गाइ ॥
सेस सम्भू थके ब्रह्मा बिस्नु तारी लाइ ।

है अपार अगाध गति प्रभु केहु नाहीं पाइ ।।
भान गन ससि तीनि चौथौ लियौ छिनहिं बनाइ ।
जोति एकै कियौ विस्तर, जहाँ तहाँ समाइ ।।
सीस दैकै कहौं चरनन, कबहुँ नहिं बिसराइ ।
जगजीवन के सत्य गुरु तुम, चरनन की सरनाइ ।।

प्रभु जी का बस अहै हमारी ।
जब चाहत तब भजन करावत, चाहत देत बिसारी ।।
चाहत पल छिन छूटत नाहीं, बहुत होत हितकारी ।
चाहत डारि सूखि पल डारत, डारि देत सहारी ।।
कह लहि बिनय सुनावौं तुम तें, मै तौ अहौं अनारी ।
जगजीवन दास पास रहै चरनन, कबहूँ करहु न न्यारी ।।

साँई को केनानि गुन गावै ।
सूझि बूझि तस आवै तेहि कों, जेहि कों जौन लखावै ।।
आपुहि भजत है आपु भजावत, आपु अलेख लखावै ।
जेहि कहँ अपनी सरनहिं राखै, सोई भगत कहावै ।।
टारत नहीं चरन ते कबहूँ, नहि कबहूँ बिसरावै ।
सूरति खैंचि ऐंचि जब राखत, जोतिहिं जोति मिलावै ।।
सतगुर कियो गुरुमुखी तेहि, कों दूसर नाहिं कहावै ।
जगजीवन ते भे सँग बासी, अंत न कोऊ पावै ।।

बालक बुद्धि हीन मति मोरी, भरमत फिरौं नाहिं दृढ डोरी ।
सूरति राखौ चरनन मोरी, लगि रहै कबहूँ नहिं तोरी ।।
निरखत रहौं जोंउ बलिहारी, दास जानि कै नाहिं बिसारी ।
तुमहिं सिखाय पढायो ज्ञाना, तब मै धर्यौ चरन कै ध्याना ।।
साईं समरथ तुम हौ मोरे, बिनतो करौं ठाढ़ कर जोरे ।
अब दयाल है दाया कीजै, अपने जन कहँ दरसन दीजै ।।
नाम तुम्हार मोहिं है प्यारा, सोई भजे घट भा उजियारा ।
जगजीवन चरनन दियो माथ, साहिब समरथ करहु सनाथ ।।

तुम सों यह मन लागा मोरा ।
करौं अरदास इतनी सुनि लीजै, तको तनक मोहिं कोरा ।।
कहँ लगि ऐगुन कहौं आपना, कामी कुटिल लोभी औ चोरा ।
तब के अब के बहु गुनाह भे, नाहिं अंत कछु छोरा ।।
साईं अब गुनाह सब मेटहु, चितै आपनी ओरा ।
जगजीवन कै इतनो बिनती टूटै प्रीति न डोरा ।।

साईं मोहिँ भरोस तुम्हारा।
मेरे बस नहिँ अहै एकौ, तुमहिँ करो निस्तारा॥
मैं अज्ञान बुद्धि है नाहीं, का करि सकौं बिचारा॥
जब तुम लेत पढाय सिखावत, तब मै प्रकट पुकारा॥
बहुतन भवसागर महं बूड़त, तेहिं उबारि कै तारा॥
बहुतन काँ जब कष्ट भयो है, तिन कै कष्ट निवारा॥
अब तौ चरन की सरनहिं आयौं, गह्यौं मै पच्छ तुम्हारा॥
जगजीवन के साई समरथ, मोहिँ बल अहै तुम्हारा॥

तेरा नाम सुमिर ना जाय।
नहि बस कछु मोर आहै, करहुँ कौन उपाय॥
जबहिं चाहत छिनू करि कै, लेत चरनन लाय॥
बिसरि जब मन जात आहै, देत सब बिसराय॥
गजब ख्याल अपार लीला, अंत काहु न पाय॥
जीव जत पतग जग मह, काहु ना बिलगाय॥
करौं विनती जोरि दोउ कर, कहत अहौं सुनाय॥
जगजीवन गुरु चरन सरन, है तुम्हार कहाय॥

चरनन तर दियो माथ, करिये अब मोहिं सनाथ।
दास करि कै जानो॥
बूड़ा सब जग्तसार सूझै नहिं वार पार।
देखि नैनन बूझिय हित आनी॥
सुमति मोहि देउ सिखाय आनि में न रहि लुभाय।
बुद्धिहीन भजन हीन सुद्धि नाहिं आनी॥
सहसफन ते सेस गावैं सकर तेहिं ध्यान लावै।
ब्रह्मा बेद प्रगट कहै बानी॥
कहौ का कहि जात नाहि जोती वह सर्व माहि।
जगजीवन दरस चहै दीजै बरदानी॥

साहिब अजब कुदरत तोर।
देखि गति कहि जात नाहीं, केतिक मति है मोर॥
नचत सब कोउ काछि कछनी, भ्रमत फिर बिन डोर॥
होत औगुन आप तें, सब देत साहिब खोर॥
कौल करि जग पठै दीन्ह्यो, तौन डारयो तोर॥
करत कपट सत तेतों, कहैं मोरी मोर॥
ऐसी जग की रीति आहै, कहा कहिये टेर॥
जग जीवनदास चरन गुरु के, सुरत करिये पौढ़॥

केतिक बूझि का आरति करऊँ, जैसे रखिहहिं तैसे रहऊँ ॥
नाहीं कछु बसि आहै मोरी, हाथ तुम्हारे आहै डोरी ॥
जस चाहौ तस नाच नचावहु, ज्ञान बास करि ध्यान लगावहु ॥
तुमहिं जपत तुमहीं बिसरावत, तुमहिं चिताई सरन लै आवत ॥
दूसर कवन एक हौ सोई, जेहिं का चाहौ भक्त सो होई ॥
जगजीवन करि विनय सुनावै, साहिब समरथ नहिं बिसरावै ॥

आरत अरज लेहु सुनि मोरी।
चरनन लागि रहै दृढ़ डोरी ॥
कबहुँ निकट तें टारहु नाहीं।
राखहु मोहिं चरन की छाहीं ॥
दीजै केतिक बास यह कीजै।
अघ कर्म मेटि सरन करि लीजै ॥
दासन दास है कहौ पुकारी।
गुन मोहिं नहिं तुम लेहु सँवारी ॥
जगजीवन का आस तुम्हारी।
तुम्हरी छवि मूरति परवारी ॥

होली

यहि जग होरी; अरी मोंहिं ते खेलि न जाई।
साईं मोहिं बिसराय दियो है, तब ते परयौं भुलाई ॥
सुख परि सुद्धि गई हरि मोरी, चित्त चेत नहि आई ॥
अनहित हित करि जानि बिषै महँ रह्यो ताहि लपटाई ॥
यहि सोंचे महँ पाँचौ नाचैं, अपनि अपनि प्रभुताई ॥
मैं का करौ मोर बस नाहीं राखत हैं अरुझाई ॥
गगन मँदिल चल थिर ह्वै रहिये ताकि छवि छकि निरयाई।
जगजीवन सखि साईं समरथ, लेहैं सबै बनाई ॥

साध

गऊ निकसि लन जाहीं, बाछा उन घर ही माहीं ॥
तृन चरहि चित सुत पासा, एहि युक्ति साध जग बासा ॥
साधु तें बड़ा न कोई, कहि राम सुनावत सोई ॥
राम नही हम साधा, रस एक मता औराधा ॥
हम साध साध हम माहीं कोउ दूसर जानै नाहीं ॥
जिन दूसर करि जाना, तेहि होइहि नरक निदाना ॥
जगजीवन चरन चित लावै मो कहि के राम समुझावै ॥

जब मन मगन भा मस्ताना ।
भयो सीतल महा कोमल नाहिं भावै आन ॥
डोरि लागीं पोढि गुरु ते जग्त ते बिलगान ॥
अहै मता अगाध तिनका, करै को पहिचान ॥
अहैं ऐसे जगत मों कोइ, कहत आहैं ज्ञान ॥
ऐसे निर्मल ह्वे रहे हैं, जैसे निर्मल मान ॥
बडा बल है ताहि केरे, थमा है असमान ॥
जगजीवन गुरु चरन परि कै, निर्गुन धरि ध्यान ॥

भेद

गगरिया मोरी चित सो उतरि न जाय ॥
इक कर करवा एक करि उबहनि, बतियाँ कहौ अरथाय ॥
सास ननद घर दारुन आहै, तासो जियरा डेराय ॥
जो चित छुटै गागर फूटै, घर मोरि सासु रिसाय ॥
जगजीवन अस भक्ती मारग, कहत अहौ गोहराय ॥

जाके लगी अनहद तान हो, निरबान निरगुन नाम की ॥
जिकर करके सिखर हेरे, फिकर रारंकार की ॥
जाके लगी अजपा गगन झलकै, जोति देख निसान की ॥
मद्ध - मुरली मधुर बाजै, बाँए किंगरी सारँगी ॥
दहिने जे घटा सख बाजै, गैब धुन झनकार की ॥
अकह की यह कथा न्यारी, सीखा नाहीं आन है ॥
जगजीवन प्रानहि सोधि के, मिलि रहे सतनाम है ॥

ज्ञान

आनद के सिंध में आन बसे,
तिन को न रह्यो तन को तपनो ।
जब आपु में आपु समाय गये,
तब आपु मे आपु लह्यो अपनो ।
जब आपु मे आपु लह्यो अपनो,
तब अपनो ही जाप रह्यो जपनो ।
जब ज्ञान को भान प्रकास भयो,
जगजीवन होय रह्यो सपनो ।

उपदेश

अरे मन चरन ते रहु लागि ।
जोरि दुइ कर सीस दैके, भक्ति बर ले माँगि ।
और आसा झूँठि आहै, गरम जैसे आगि ॥
परहिंगे सो जरहिंगे पै, देहु सर्ब तियागि ॥
समौ फिरि एहु पाइहै नहिं, सोउ नहिं गहि जागि ॥
चेतु पाछिल सुद्धि करि कै, दरस रस रहु पागि ॥
कठिन माया है अपरबल, संग सब के लागि ॥
सूल ते कोइ बचे बिरले, गगन बैठे भागि ॥

मन मे जेहिं लागी जस भाई ।

सो जानै तैसे अपने मन, का सो कहै गोहराई ।
साँची प्रीति की रीति है ऐसी, राखत गुप्त छिपाई ॥
झूँठे कहुँ सिखि लेत अहहिँ पढ़ि, जहँ तहँ झगरा लाई ॥
लागे रहत सदा रस पागे, तजे अहहिं दुचिताई ॥
ते मस्ताने तिनहीं जाने, तिनहिं को देइ जनाई ॥
राखत सीस चरन तें लागा, देखत सीस उठाई ॥
जगजीवन सतगुरु की मूरति, सूरति रहे मिलाई ॥

सत्त नाम बिना कहौ, कैसे निस्तरि हौ ॥ टेक ॥
कठिन अहै मायाजार, जा को नहिं वार पार,
कहौ काह करिहौ ॥
हो सचेत चौकि जागु, ताहि त्यागि भजन लागु;
अंत भरम परि हौ (२)
डारहि जमदूत फाँसि, आइहिं नहिं रोइ हाँसि,
कौन धीर धरिहौ (३)
लागहि नहिं कोइ गोहारि लेइहि नहिं कोइ उबारि,
मनहिँ रोइ रहिहौ (४)
भगनी सुत नारि भाइ, मातु पितु सखा सहाइ,
तिनहिं कहा कहिहौ (५)
काहुक नहि कोऊ जगत, मनहिं अपने जानु गत,
जीवत मरि जाहु दीन अतर माँ रहि हौ (६)
सिद्ध साध जोगि जती, जाइहि मरि सब कोई,
रसना सतनाम गहि रहिहौ (७)

जगजीवनदास रहै, बैठे सतगुरु के पास,
चरन सीस धरि रहिहौ (८)

मन तन खाक करि कै जानु।
नीच तें ह्वै नीच तेहिं ते नीच आपुहि मानु।
त्याग मैं तैं दीन ह्वै रहु, तजहु गर्व गुमान।
देतु हौ उपदेस याहै, निरखु सो निर्बान।
कर्म धागा लाय बाँधा, हिंदु मुसलमान।
खैंचि लीन्ह्यो तोरि धागा, विरल कोइ बिलगान।
खाक है सब खाक होइहि, समुझि आपन ज्ञान।
सब्द सत कहि प्रगट भाखौं, रहहिं नाम निदान।
काल को डर नाहिं तिन्ह कों, चौथ रहि चौगान।
जगजीवन दास सतगुरु के, चरन रहि लपटान।

जो कोई घरहि बैठा रहै।
पाँच सगत करि पचीसौ, सबद अनहद लहै॥
दीन सीतल लीन मारग, सहज बाहनि बहै॥
कुमति कर्म कठोर काठहि, नाम पावक दहै॥
मारि मै तै लाइ डोरी, पवन थाम्हे रहै॥
चित्त करतंह सुमति साधू, सुरति माला गहै॥
राति दिन छिन नाहिं छूटै, भक्त सोई अहै॥
जगजीवन कोइ संत विरला, सबद की गति कहै॥

महि ते करि न बंदगी जाइ।
सुद्धि तुमहीं बुद्धि तुमहीं, तुमहिं देत लखाइ॥
केतनि हीं गनती में केती, कहि न सकौं बनाइ।
चहे चरन लगाइ राखौ, चाहिये बिसराइ॥
देवता मुनि जती सुर सब, रहे तारी लाइ।
पढ़े चारिउ वेद ब्रह्मा, गाइ गाइ सुनाइ॥
भस्म अंग लगाइ संकर, रहे जोति मिलाइ।
कौन जाने गति तुह्मारी, रहे जहँ जहँ छाइ॥
जानिये जन आपना मोहि, कबहुँ ना बिसराइ।
जगजीवन पर करहु दाया, तबहिं भक्ति कहाइ॥

अब मोहिं जानु आपन दास॥ टेक॥
सीस चरन में रहे लागी, और करौ न आस।

दियो मोहि उपदेस तुमहीं, आइ तुह्मरे पास ॥
लियोढिग बैठाइ के जग, जानि सबै निरास।
भला है अस्थान अम्मर, जोति है परगास ॥
करौ बिनती बहुत बिधि ते, दीजिये बिस्वास।
गति तुह्मारी कौन जाने, जगजीवन है दास ॥

विनती लेहु इतनी मानि।
कहाँ का कहि जात नाहीं, कवन कहौं केतानि ॥
कियो जबहीं दया तुमहीं, लियो सतन छानि।
रूप नीक लदाय दीन्ह्यौ, होत लाभ न हानि ॥
रहत लागे सदा आगे, सब्द कहत बखानि।
लागि गा सो पागि गा, पुनि गगन चढ़ि ठहरानि ॥
निरमलजोति निहारि निरखत, होत अनहद बानि।
जगजीवन गुरु की भई दाया, लियो मन महँ छानि ॥

अब मै करौ कौन बयान।
चहो पल मे करहु सोई, होय सो परमान ॥
सहस जिम्या सेस बरनत, कहत वेद पुरान।
मोहिं जैसी करहु दाया, करहु तेसि बखान ॥
सतन काह सिखाइ लीन्ह्यो, कहत सोई ज्ञान।
लागि पागि के रहै अतर, मस्त रहत निरबान ॥
रहे मिल तुम्ह नहीं न्यारे, कबहु नहि बिलगान।
जगजीवन धरि सीस चरनन, नहीं भावै आन ॥

अब मैं कहौ का कछु ज्ञान।
बुद्धि हीन सिद्ध हीन, हौं अजान हैवान ॥
ब्रह्म सेस महेस सुमिरत, गहै अंतर ध्यान।
सत तते रहत लागे, कहत ग्रंथ पुरान ॥
जोति एकै अहै निरमल, करै सबै बयान।
जहाँ जैसे भाव आहै, भयो तस परमान ॥
करौ दया जान आपन, नहीं जानहु आन।
जगजीवनदास सत्य समरथ, चरन रहु लिपटान ॥

अब सुन लीजै इतनी हमारी।
लागी रहै प्रीति निसि बासर, दास को अपने नाहिं बिसारी ॥
जो मै चहौ कहि कहं लौं सुनावों, औगुन कर्म बहुत अधिकारी।
सरन चरन की राखि आपनी, यहु कछु मन में नाहिं बिचारी ॥

काया यहि कर्महिं की आहै, आपु ते नाहीं जात सँवारी।
भवसागर हित जानि बूड़ि जग, जेहिं जान्यो तेहिं लियो उबारी ॥
लीजै राखि भाखि कहौं तुम ते, केतिक बात लियो अनगन तारी।
जगजीवन के साईं समरथ, अपने निकट ते कबहुं न टारी ॥

तुम सों मन लागो है मोरा।
हम तुम बैठे रही अटरिया, भला बना है जोरा ॥
सत की सेज बिछाय सूति रहि, सुख आनंद घनेरा।
करता हरता तुमहीं आहहु, करौं मैं कौन निहोरा ॥
रह्यों अजान अब जानि परयो है, जब चितयो एक कोरा।
अब निर्बाह किये बनि आइहि, लाय प्रीति नहिं तोरिय डोरा ॥
आवा गमन निवारहु साईं, आदि अंत का आहिउ चोरा।
जगजीवन बिनती करि माँगै, देखत दरस सदा रहौं तोरा ॥

साईं मोहिं ते सुमिर न जाई।
पाच अपरबल जोर अहैं एइ, इन ते कछु न बिसाई ॥
निसि बासर कल देहिं नहीं एइ, मोहिं औरै राह लगाई।
जो मैं चहौं गहौं तुव चरना, इन छिन छिन भरमाई ॥
साथ सहेली लिये पचीसों, अपन अपन प्रभुताई।
जो मन आवै सोई ठानै, हठ हटकि देहिं भटकाई ॥
महल मा टहल करै नहिं पावा, केहि बिधि आवहु धाई।
ऊँचे चढ़त आनि के रोकै, मानहिं नहीं दुहाई ॥
अब करु दाया जानि आपना, बिनय कै कहउं सुनाई।
जगजीवन कै इतनी बिनती, तुम सब लेहु बनाई ॥

हम तें चूक परत बहुतेरी।
मैं तौ दास अहौं चरनन का, हम हू तन हरि हेरी ॥
बाल ज्ञान प्रभु अहै हमारा, झूंठ सोंच बहुतेरी।
सो औगुन गुन का कहौं तुम ते, भौसागर तें निबेरी ॥
भव ते भागि आयौं तुव सरने, कहत अहौं अस टेरी।
जगजीवन की बिनती सुनिये, राखौं पत जन केरी ॥

बिनती सुनिये कृपा निधान।
जानत अहौं जनावत तुमहीं, का करि सकौं बयान ॥
खात पियत जो डोलत बोलत, और न दूसर आन।
ब्यापि रह्यो कहुं चेत सरन करि, काहू भरम भुलान ॥
माया प्रबल अत कछु नाहीं, सो मन समुझि डेरान।

अब तो सरन और ना जानौ, करिहौं सो परमान ॥
सुद्धि बुद्धि कछु नाहीं मोरे, बालक जैसे अजान ।
मात सुतहिं प्रतिपाल करत है, राखत हित करि प्रान ॥
मै केतानि कवन गिनती महँ, गावत वेद पुरान ।
जगजीवन का आपन जानहु, चरन रहे लिपटान ॥

साईं मैं तुम्हरी बलिहारी ।
कहौं काह कहि आवत नाहीं, मन तन तुम पर वारी ॥
देखत अहौं खरो ताम्रोवर, झलकै जोति तुम्हारी ।
केहु भरमाय देत माया महँ, केहु करत हितकारी ॥
देखत अहहू खेलत सब महं को करिं सकै बिचारी ।
करता हरता तुमहीं आहौ, अजब बनी फुलवारी ॥
दासन दास कै मोहि जानिये, जानत अहौ हमारी ।
जगजीवन दियो सीस चरन तर, कबहूँ नाहि बिसारी ॥

अब मैं कासों कहौं सुनाई ।
केहू घट की छापी नाहीं, जोति रही सब छाई ॥
तुम ही ब्रह्मा तुमही बिस्नू, सम्भू तुमही कहाई ।
सक्ती सेस गनेस तुमहीं हौ, दूजा नहिं कहि जाई ॥
बासा सब महं अहै तम्हारो, नहीं कहूं बहराई ।
जानि ऐसी परत मोहिं का, चरन सरन महँ आई ॥
दुक्ख दे फिर दुक्ख मेटत, सुक्ख देत अधिकाई ।
दास आपन जानौ जिनका, तिन के रहौ सहाई ॥
तुम ही करता तुम ही हरता, सृष्टी तुमहिं बनाई ।
जगजीवन कै सत्तगुरु तुम्, कौन कहै गोहराई ॥

नैना चरनन राखहू लाय ।
केती रूप अनूपम आहै, देऊ सब बिसराय ॥
राति दिना औ सोवत जागत, मोहीं इहै सोहाय ।
नहीं पल पल तजौं कबहूं, अनत नाहीं जाय ॥
मोरि बस कछु नाहिं है, जब देत तुमहिं बहाय ।
चहत खैंचि कै ऐंचि राखत, रहत हौं ठहराय ॥
दियो नाथ सनाथ करि अब, कहत अहौं सुनाय ।
जगजीवन के सतगुरू तुम, सदा रहहु सहाय ॥

चेतावनी

अरे मन देहु तजि मतवारि ।
जे जे आये, जगत मह एहि, गये ते ते हारि ॥

नहीं सुमिरयौ नाम का, सब गयो काम बिगारि।
आपु का जिन बड़ा जान्यो, काल खायो मारि॥
जानि आपुहि छोट जग, रहि रहौ डोरि सँभारि।
बैठि कै चौगान निरखहु, रूप छबि अनुहारि॥
रहौ थिर सतसग बासी, देहु सकल बिसारि।
जगजीवन सतगुरु कृपा करि कै, लेहैं सबै सँवारि॥

अरे मन समुझ करु पहिचान।
को तैं अहसि कहा ते आयसि, काहे मर्म भुलान॥
सुधि सँभारि बिचार करिकै, बूझहु पाछिल ज्ञान।
नाचु एहि दुइ चारि दिन का, अचल नाहीं स्थान॥
लोक गढ़ एहु कोट काया, कठिन माया बान।
लाग सब के बचे कोउ नाहि, हरयो सब का ध्यान॥
खबरदार बेखबर हो नहिं, ओट नाम निर्वान।
जगजीवन सतगुरु राखि लेहैं, चरन रहु लिपटान॥

मन तैं काहे का करत गुमान।
रहहु अधीन नाम वह सुमिरहु, तोहिं सिखावहुँ ज्ञान॥
आये जे जे फूलि भूलि गे, फिर पाछे पछितान।
फिरि तो कोई काम न आवा, ह्वैगा जबै चलान॥
जो आवा सो खाकहिं मिलि गय, उड़ि उड़ि खेह उड़ान।
वृथा गयो आय जग जनमें, जो पै नाहीं जान॥
सुद्धि सँभारि सँवारि लेहु करि, अधरम बरहु अज्ञान।
जगजीवन गुरु चरन गहे रहु, निरगुन तकु निरबान॥

अरे मन देहु सबै बिसराय।
दीन ह्वै लवलीन करि कै नाम रहु ली लाय॥
नाम अमृत जपहु रसना गुप्त अंतर पाय।
मैल छूटि कै होय निरमल सुद्धि पाछिल आय॥
निर्गुन निहारि निरखहु अनत नाहीं जाय।
सीस दुइ कर परहु चरनन छूटि नाहीं जाय॥
सदा रहहु सचेत हेत लगाइ नहिं बिसराय।
जगजीवन परकास मूरति सूरति सुरति मिलाय॥

दुनिया जानि बूझिल बौरानी।
झूठै कहै कपट चतुराई, मनहिं न आनहिं कानी॥
नहिं डोपत है सत्तनाम कहं, उसे इहिं अभिमानी।

है बिबाद निंदा कहि भाखहिं, तेही पाप ते आगे हानी ॥
जानत हैं मन मानत नाहीं, बड़े कहावत ज्ञानी ।
नवहिं नहिं न साधु ते दीनता, बूड़ि मुए बिनु पानी ॥
मै तै त्यागि अंतर मा सुमिरै, परगट कहौं बखानी ।
जगजीवन साधन ते नय चलु इहै सुक्ख के खानी ॥

मन तै नाहि इत उत धाव ।
रटत रहु दुइ अच्छर अतर, अपथ गैल न जाव ॥
उहा ते निर्बिंदु आयो, पिंड बासा गाँव ।
चेति सुद्धि सँभार ले तैं, चूकु नाहीं दाव ॥
समुझि फिरि पछिताइ है, परि जोनि बहु डरुपाव ।
सत्त सरसौ बाँटि उबटन, अग अपने लाव ॥
छूटि मैल होय निर्मल, नूर नीर अन्हाव ।
जगजीवन निर्बान होवै, मिटै सब दुखिताव ॥

जग की कही जात नहिं भाई ।
नैनन देखि परखि करि लीन्ह्यो, तऊ न रह्यो चुपाई ॥
आहै साँच झूँठ कहि भाषहिं, झूठेह साँच गोहराइ ।
ताहि पास सताप परेंगे, मर्म परे ते जाई ॥
निंदा करत है जान बूझिल के, जहाँ तहाँ कुटिलाई ।
जानत अहैं बनाउ ताहि का, देइहि ताहि सजाई ॥
मैं तौ सरन हौं ताहि चरन की, सूरत नहिं बिसराई ।
जगजीवन है ताहि भरोसे, कहै सो तैसे जाई ॥

यहु मन गगन मंदिल राखु ।
सबद की चढ़ देखु सीढ़ी, प्रेम रस तहँ चाखु ॥
रहहु दृढ़ करि मारि आसन, मत्र अजपा भाखु ।
मते गुरुमुख होहु तहवां, जग्त आस न राखु ॥
पाँच बसि बसि बैठि रहि के, मानु कबहुँ न माखु ।
ईस अहहि पचीस इनके, सदा मन हित बाखु ॥
देहु सब बिसराइ करि के, एही धधे लागु ।
जगजीवनदास निरखि करिके, नयन दर्शन मागु ॥

चरनन में लागी रहिहौ री ॥ टेक ॥
और रूप सब तिरथ बतावै, जल नहिं पैठ नहैहौ री ।
रहिहौं बैठि नयन ते निरखत, अनत न कतहूँ जैहौ री ॥

तुमहीं ते मन लाऊ रहिहौं, और नहीं मन अनिहौं री।
जगजीवन के सतगुरु समरथ, निर्मल नाम गहि रहिहौं री॥

चलु चढ़ी अटरिया धाई री।
महल न टहल करै नहिं पाई, करिये कौन उपाई री॥
यहं तौ बैरी बहुत हमारे, तिन ते कछु न बिसाई री।
पाच पचीसल निस दिन सतावहिं, राखा इन अरुझाई री॥
साई तौ निकट बैठि सुख बिलसहि, जोतिहि जोति मिलाई री।
जगजीवन दास अपनाय लेहि बे, नाहीं जीव डेराई री॥

मन मह' जाइ फकीरी करना।
रहै एकंत तंत में लागा, राग नित्यं नहि सुनना॥
कथा चरचा पढ़े सुने नहिं, नाहिं बहुत बक बोलना।
ना थिर रहै जहा तहं धावै, यह मन अहै हिंडोलना॥
मैं तैं गर्व गुमान विवादहि, सबै दूर यह करना।
सीतल दीन रहै भरि अतर, गहै नाम की सरना॥
जल पषान की करै आस नहिं, आहै किल भरमना।
जगजीवनदास निहारि निरखि के, गहि रहु गुरु की सरना॥

इत उत आसा देहु त्यागि।
सत्त सुकृत तें रहहु लागि॥
मन तुम नाम रटहु रट लाई।
रहु सचेत नहिं बिसरि जाई॥
काया भीतर तीरथ कोटि।
जानि परत नहि मन की खोटि॥
ठाढ़े बैठे पग चलाइ।
तस पौंढे चित अनत न जाइ॥
रात दिवस धुनि छुटै नाहिं।
ऐसे जपत रहहु मन माहिं॥
गगन पवन गहि करहु पयान।
तहवा बैठि रहहु निर्बान॥
गुरु के चरन गहहु लिपटाइ।
निरखहु सूरति सीस उठाइ।
या है ब्यापि रहै सब माहिं।
देखत न्यारा कतहूँ नाहिं॥
जगजीवन कहि मथि पुरान।
यहि तें सनमत और न आन॥

———

भीखा साहिब

भीखादास का जन्म जिला आज़मगढ़ के खानपुर बोहना नाम के गाँव में हुआ था। इनका समय निश्चय रूप से नहीं ज्ञात है। कहते हैं कि गाज़ीपुर जिले के भुरकुड़ा नामक गाँव मे इनकी उपस्थिति मे ही इनके गुरु गुलाल साहब की लिखी हुई एक हस्तलिखित पुस्तक मौजूद है। इसी ग्रंथ के अनुसार इसकी रचना सं० १७८८ से आरभ होकर फागुन सुदी ५ बृहस्पतिवार सं० १७९२ में समाप्त हुई। इसो के आधार पर बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित 'भीखा साहब की बानी' के संपादक का अनुमान है कि भीखा साहब का समय सं० १७७० से १८२० के बीच में रहा होगा। गुलाल साहब लिखित उक्त ग्रंथ की प्रति अलभ्य है किंतु उपर्युक्त संपादक महोदय का कथन है कि उन्हें दोनों ग्रंथो के मिलान करने पर बहुत से पद समान मिले। जो हो, यह केवल अनुमान मात्र है पर इतना कह सकते हैं कि यह तिथि भीखा के वास्तविक समय से बहुत भिन्न नही हो सकती।

इनकी जीवनी के संबध में प्रसिद्ध है कि बाल्यावस्था में ही यह गुरु की खोज में काशी चले गए पर वहाँ से निराश होकर लौट रहे थे कि रास्ते मे इन्हें गाज़ीपुर जिले के भरकुड़ा ग्रामनिवासी महात्मा गुलाल जी का पता चला और इन्होंने वहाँ जाकर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। गुलाल साहब की मृत्यु के बाद इन्ही को उनकी गद्दी मिली और इसके बाद इन्होंने अपना सारा जीवन भरकुड़ा में ही बिता दिया। १२ वर्ष की अवस्था में ये वहाँ गए थे और लगभग ५० वर्ष की अवस्था में वहीं इनका स्वर्गवास हुआ। भरकुड़ा में इनके गुरु गुलाल साहिब और दादा गुरु बुल्ला साहिब को समाधि के बगल में ही इनकी समाधि भी मौजूद है।

अन्य सत कवियों की भाँति इन्होंने भी अपना एक पंथ चलाया था और इसके बहुत से अनुयायी अब भो गाज़ीपुर और बलिया जिलों में मिलते हैं। इनके प्रधान अड्डे भरकुड़ा और बलिया जिले के बड़े गाँव में हैं। भरकुड़े में अब भी विजयादशमी के दिन इनकी स्मृति में एक बड़ा भारी मेला होता है। बड़े गाँव के महंत के पास भीखा साहब के गुरु घराने का एक वंश-वृक्ष जिसकी नकल 'भीखा-साहब की बानी' में दी गई है। उसी की प्रतिलिपि हम नीचे दे रहे हैं:—
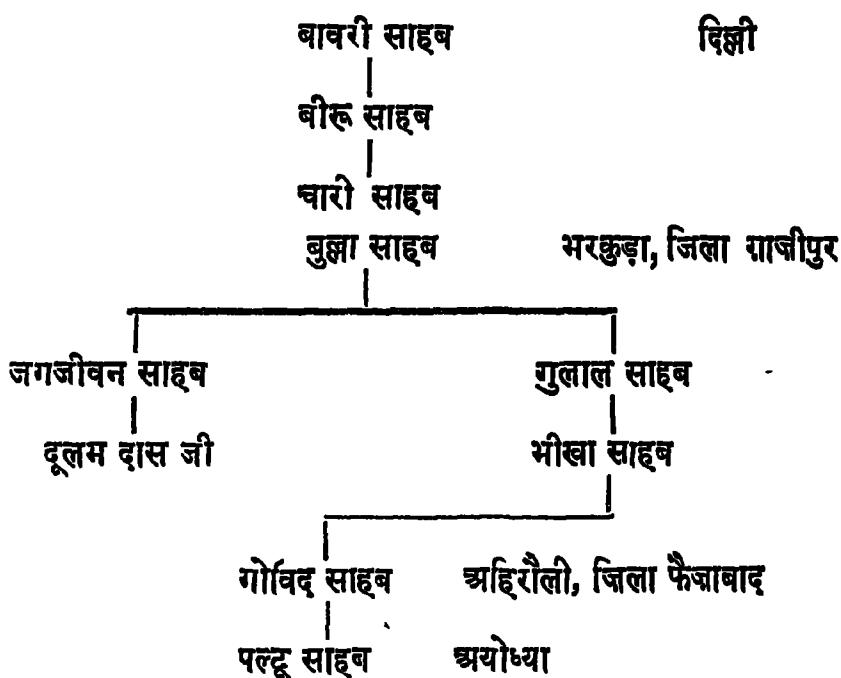
इनके कई ग्रंथों के नाम मिलते हैं जिनमें सबसे प्रसिद्ध 'राम-जहाज' है। प्रस्तुत सग्रह 'सतबानी सग्रह' और 'भीखा साहब की बानी' की सहायता से किया गया है।

इनकी कविता बहुत स्पष्ट होती थी और उसमें प्रसाद गुण का प्राधान्य कहा जा सकता है। विषय इनके वही सद्गुरु, शब्द महिमा, नाम महिमा तथा सृष्टितत्व के विवेचन आदि हैं जिन्हें प्रायः सभी संत कवियों ने अपनाए हैं।

भीखा साहिब

गुरुदेव

मेरो हित सोइ जो गुरु ज्ञान सुनावै ॥
दूजी दृष्टि दुष्ट सम लागै, मन उनमेख बढ़ावै ।
आतम राम सूछम सरूप, केहि पटतर दै समझावै ॥
सब्द प्रकास बिनहिं जोग बिधि, जगमग जोति जगावै ।
धन्य भाग ता चरन रेनु ले, भीखा सीस चढ़ावै ॥

अनहद शब्द

धुनि बजत गगन महँ बीना, जँह आपु रास रस भीना ।
भेरी ढोल संख सहनाई, ताल मृदंग नवीना ॥
सुर जहँ बहुतै मौज सहज उठि, परत है ताल प्रवीना ।
बाजत अनहद नाद गहागह, धुधुकि धुधुकि सुर भीना ॥
अँगुरी फिरत तार सातहुँ पर, लय निकसत भिन भीना ।
पाँच पचीस बजावत गावत, निर्त चारु छवि दीन्हा ॥
उघटत तननन धिता धिता, कोउ तायेइ थेइ तत कीन्हा ।
बाजत ताल तरग बहु, मानो जत्री जत्र कर लीन्हा ॥
सुनत सुनत जिव थकित भयो, मानो है गयो सब्द अधीना ।
गावत मधुर चढ़ाय उतारत, रुनझुन रुनझुन धूना ॥
कटि किंकिनि पगु नूपुर की छवि, सुरति निरति लौलीना ।
आदि सब्द ओंकार उठतु है, अटुट रहत सब दीना ॥
लागी लगन निरतर प्रभु सो, भीखा जल मन भीना ।

प्रेम

कहा कोउ प्रेम बिसाहन जाय ।
महँग बड़ा गथ काम न आवै, सिर के मोल बिकाय ॥
तन मन धन पहिले अरपन करि, जग के सुख न सुहाय ।
तजि आपा आपुहिं है जीवै, निज अनन्य सुखदाय ॥
यह केवल साधन को मत है, ज्यों गूँगे गुड़ खाय ।
जानहिं भले कहै सो कामों, दिल की दिलहिं रहाय ॥
बिनु पग नाच नैन बिनु देखै, बिन कर ताल बजाय ।

बिन सखन धुनि सुनै बिबिध बिधि, बिन रसना गुन गाय ॥
निर्गुन में गुन क्योंकर कहियत, व्यापकता समुदाय ।
जॅह नाहीं तॅह सब कुछ दिखियत, अँधरन की कठिनाय ॥
अजपा जाप अकथ को कथनी, अलख लखन किनपाय ।
भीखा अविगत की गति न्यारी, मन बुधि चित न समाय ॥

प्रीति की यह रीति बखानैं ।
कितनौ दुख सुख परै देह पर, चरन कमल कर ध्यानौ ॥
हो चेतन्य बिचारि तजो भ्रम, खाँड़ धूर जनि सानौ ।
जैसे चात्रिक स्वाँत बुद बिनु, प्रान समरपन ठानौ ॥
भीखा जेहि तन राम भजन नहिं, काल रूप तेहि जानौ ।

बिनती

अस करिये साहब दाया ।
कृपा कटाच्छ होइ जेहितें प्रभु, छूटि जाय मन माया ॥
सोवत मोह निसानिस बासर, तुमहीं मोंहिं जगाया ।
जनमत मरत अनेक वार, तुम सतगुरु होय लखाया ॥
भीखा केवल एक रूप हरि, व्यापक त्रिभुवन राया ।

मोहिं राखो जी अपनी सरन ।
अपरम्पार पार नहिं तेरो, काह कहौं का करन ॥
मन क्रम बचन आस इक तेरी, होउ जनम या मरन ।
अबिरल भक्ति के कारन तुम पर, है बाम्हन देउ धरन ॥
जन भीखा अभिलाख इही, नहि चहौं मुक्ति गति तरन ।

प्रभु जी करहु अपनो चेर ।
मैं तो सदा जनम की रिनिया, लेहु लिखि मोहिं फेर ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह यह, करत सबहिन जेर ।
सुर नर मुनि सब पचि पचि हारे, परे करम के फेर ॥
सिव सनकादि आदि ब्रम्हादिक, ऐसे ऐसे ढेर ।
खोजत सहज समाधि लगाये, प्रभु को नाम न नेर ॥
अपरपार अपार है साहिब, है अधीन तन हेर ।
गुरु परताप साध की संगति, छूटे सो काल अहेर ॥
त्राहि त्राहि सरनागत आयो, प्रभु दरवो यहि बेर ।
जन भीखा को उरिन कीजिये, अब कागद जिनि हेर ॥

साध महिमा

भजन ते उत्तम नाम फकीर ।
छिमा सील संतोष सरल चित, दरदवंत पर पीर ॥
कोंमल गदगद गिरा सुहावन, प्रेम सुधा रस छीर ।
अनहद नाद सदा फल पायो, भोग खाँड घृत खीर ॥
ब्रह्म प्रकास को भेष बनायो, नाम मेखला चीर ।
चमकत नूर जहूर जगामग, ढाँके सकल सरीर ॥
रहनि अचल इस्थिर कर आसन, ज्ञान बुद्धि मति धीर ।
देखत आतम राम उघारे, ज्यों दरपन मधि हीर ॥
मोह नदी भ्रम भँवर कठिन है, पाप पुन्य दोउ तीर ।
हरि जन सहजे उतरि गये ज्यों, सूखे ताल को भीर ॥
जग परपंच करम बहतो है, जैसे पवन रु नीर ।
गुरु गम सब्द समुद्रहिं जावे, परत भयो जल थीर ॥
केलि करत जिय लहरि पिया सग, मति बड़ गहिर गँभीर ।
ताहि काहि पटतरो दीजिए, जिन तन मन दियो सीर ॥
मन मतग मतवार बड़ो है, सब ऊपर बलबीर ।
भीखा हीन मलीन ताहि को, छीन भयो जस जीर ॥

रेखता

करो विचार निर्धार अवराधिये,
सहज समाधि मन लाव भाई ।
जब जक्त कि आस ते होहु निरास,
तब मोच्छ दरबार की खबर पाइ ॥
न तो भर्म अरुकर्म बिच भोग भटकन लग्यो,
जरा अरु मरन तन वृथा जाई ॥
भीखा मानै नहीं कोटि उपदेस सठ ।
थक्यो वेदान्त जुग चारि गाई ॥

उपदेश

मन तूँ राम से लौ लाव ।
त्यागि के परपंच माया, सकल जगहिं नचाव ॥
साच की तू चाल गहि ले, झूठ कपट बहाव ।
रहनि सों लौ लीन है, गुरु ग्यान ध्यान जगाव ॥
जोग की यह सहज जुक्ति, बिचार कै ठहराव ।
प्रेम प्रीति सों लागि के घट, सहज हीं सुख पाव ॥

दृष्टि तें अदृष्टि देखो, सुरति निरति बसाव।
आतमा निर्धार निर्भै, बानि अनुभव गाव॥
अचल इस्थिर ब्रह्म सेवो, भाव चित अरुझाव।
भीखा फिर नहिं कबहुँ पैहौ, बहुरि ऐसो दाव॥

मन तुम राम नाम चित धारो।
जो निज कर अपनी भल चाहो, ममता मोह बिसारो॥
अंदर में परपच बसायो, बाहर भेख सवारो।
बहु बिपरीति कपट चतुराई, बिन हरि भजन बिकारो॥
जप तप मख करि बिधि बिधान, जतनत उदबेग निवारो।
बिन गुरु लच्छ सुदृष्टि न आवै जन्म मरन दुख मारो॥
ग्यान ध्यान उर करहु धरहु दृढ़ि सब्द सरूप बिचारो।
कह भीखा लवलीन रहो उत, इत मति सुरति उतारो॥

जग के करम बहुत कठिनाई।
तातें भरमि भरमि जहडाई॥टेक॥
ज्ञानवंत अज्ञान होत है, बूढ़ करत लड़िकाई।
परमारथ तजि स्वारथ सेवहिं यह धौं कौन बड़ाई॥
बेद वेदांत को अर्थ बिचारहिं, बहु बिधि रुचि उपजाई।
माया मोह ग्रसित निस बासर, कौन बड़ो सुखदाई॥
लेहि बिसाहि काँच को सौदा, सोना नाम गॅवाई।
अमृत तजि बिष अँचपन लागे, यह धौं कौन मिठाई॥
गुरु परताप साध को सगति, करहु न काहे भाई।
अत समय जब काल गरसिहै, कौन करौ चतुराई॥
मानुष जनम बहुरि नहिं पैहौ, बादि चला दिन जाई।
भीखा को मन कपट कुचाली, धरन धरै मुरखाई॥

मन तुम लागहु सुद्ध सरूपे॥टेक॥
तन मन धन न्यौछावरि वारो बेगि तजो भव कूपे॥
सतगुरु कृपा तहां लावो, जहा छाँह नहिं धूपे।
पइया करम ध्यान सों फटको जोग जुक्ति करि सूपे॥
निर्मल भयो ज्ञान उंजियारो गग भयो लखि चूपे।
भीखा दिव्य दृष्टि सों देखत सोंह बोलत सु पे॥

समुझि गहो हरि नाम, मन ते समुझि गहो हरि नाम॥टेक॥
दिन दस सुख यहि तन के कारन, लपट रहो धन धाम॥

देखु बिचारि जिया अपने, जत गुनना बेकाम।
जोग जुक्ति अरु ज्ञान ध्यान ते, निकट सुलभ नहि लाम ॥
इत उत की अब आसा तजि के, मिलि रहु आतम राम।
भीखा दीन कहा लगि बरनै, धन्य घरी वहि जाम ॥

मनुवा नाम भजत सुख लीया ॥टेक॥
जन्म जन्म के उरझनि पुरझनि समुझत करकत हीया।
यह तो माया फास कठिन है का धन सुत वित तीया ॥
सत शब्द तन सागर माहीं रतन अमोलक पीया।
आपा तजै धँसै सो पावै ले निकसै मरजीया ॥
सुरति निरति लौलीन भयो जब दृष्टि रूप मिलि थीया।
ज्ञान उदित कल्पद्रुम को तरु जुक्ति जमावो बीया ॥
सतगुरु भये दयाल ततच्छिन करना था सो कीया।
कहै भीखा परकासी कहिये पर अरु बाहर दीया ॥

कोउ लखि रूप सब्द सुनि आई ॥टेक॥
अविगत रूप अजायब बानी, ता छबि का कहि जाई ॥
यह तौ सब्द गगन घहरानो, दामिनि चमक समाई।
वह तौ नाद अनाहद निसदिन, परखत अलख सोहाई ॥
यह तौ बादर उठत चहुँ दिसि, दिवसहि सूर छिपाई।
वह तौ सुन्न निरतर बुधुकत, निज आतम दरसाई ॥
यह तौ झरखु है बूद झराझर, गरजि गरजि झरलाई।
वह तौ नूर जहूर बदन पर, हर दम तूर बजाई ॥
यह तौ चारि मास को पाहुन, कबहुं नाहि थिरताई।
वह तौ अचल अमर की जै जै, अनत लोग जस आई ॥
सत गुरु कृपा उभै वर पायो, सन्वन दृष्टि सुखदाई।
भीखा सो है जन्म सँघानी, आवहि जाहि न भाई ॥

चैतत बसत मन चित चैतन्य।
जोग जुगति गुरु ज्ञान धन्य ॥
उरध पधार्यो पवन घोर।
दृष्टि पलान्यो पुरुब ओर ॥
उलटि गयो थकि मिटलि दाह।
पच्छिम दिसि कै खुलति राह ॥
सुन्न मँडल में बैठु जाय।
उदित उजल छबि सहज पाय ॥

जोति जगामग झरत नूर।
हा निसु दिन नौबति बजत तूर॥
झलक झनक जिव एक होय।
मत प्रान अपान को मिलन सोय॥
रूह अलख नभ फूल्यो फूल।
सोइ केवल आतम राम मूल॥
देखत चकित अचरज आहिं।
जो वह सो यह कहौं काहिं॥
भीखा निज पहिचान लीन्ह।
वह सात्विक ब्रह्म सरूप चीन्ह॥

मन में आनँद फाग उठो री॥ टेक॥
इंगला पिंगला तारा देवे, सुखमन गावत होरी।
बाजत अनहद डफ तहा धुनि, गगन में ताल परो री॥
सतसगति चोवा अबीर करि, दृष्टि रूप लै घोरी।
गुरु गुलाल जी रग चढ़ायो, भीखा नूर भरो री॥

आनँद उठत झकोरी फगुवा, आनँद उठत झकोरी॥ टेक॥
अनहद ताल पखावज बाजै, मनमत राग मरोरी।
काया नगर मे होरी खेल्यो, उलटि गयो तेहि खोरी॥
नैनन नूर रग उमग्यो, चुवत रहत निज ओरी।
गुरु गुलाल जी दाया कीन्हो, भीखा चरन लगो री॥

निरमल हरि को नाम सजीवना,
धन सो जन जिन के उर करेऊ।
जस निरधन धन पाइ सचतु है,
करि निग्रह किरपिनि मति धरेउ॥
जल बिनु मीन फनी मनि निरखत,
एकौ घरी पलक नहिं टरेऊ॥
भीखा गूँग औ गुड को लेखा,
पर कछु कहे बने ना परेऊ॥

गये चारि सनकादि पिता लोक आदि धाम,
किये परनाम भाव भगति दृढायऊ।
पूँछियो हस प्रीति भाव माया ब्रह्म बिलगाव,
बिधि जग व्यौहारी प्रीति उत्तर न आयऊ।

कियो बहुत समास भयो अरथ न भास,
हरि हरि सुमिरन ध्यान आरत सुनायऊ।
प्रभु हँस तन लियो द्विज दरसन दियो,
भीखा अज सनकादि कर जोरि माथ नायऊ।

पाप औ पुन्न के झुलत हींडोलना,
ऊंच अरु नीच सब देह धारी।
पाँच अरु तीनि पच्चीस के बस परो,
राम के नाम सहजै बिसारी।
महा कबलेस दुख वार अरु पार नहि,
महा मारि जमदूत दें त्रास भारी।
मन तोहिं धिरकार धिरकार है तोहि,
धृग बिना हरि भजन जीवित भिखारी।

भयो अचेत नर चित्त चिन्ता लग्यो।
काम अरु क्रोध मद लोभ राते॥
सकल परपच मे खूब फाजिल हुआ।
माया मद चाखि मन मगन माते॥
बढ्यो दीमाग मगरूर हय गज चढ़ा।
कह्यो नहिं फौज मूरि जाते।
भीखा यह ख्वाब की लहरि जग जानिये,
जागि कर देखु सब झूँठ नाते॥
दूजे वह अमल दस्तूर दिन दिन बढ़्यो,
घटा अँधियार उँजियार धाया।
अर्ध से उर्ध भरि जाय अजपा जप्यो,
चाँद अरु सूर मिलि त्रिकुटि आया।
झरत जह नूर जहूर असमान लौं,
रूह अफताब गुरु कीन्ह दाया।
भीखा यह सत्त सो ध्यान परवान है,
सुन्न धुनि जोति परकास छाया॥

सकल बेकार की खानि यह देंहि है,
मल दुर्गंध तेहि भरी माही।
मन अरु पवन यह जोर दोनो बड़े,
इन को जीत के पार जाहीं।

जाहि गुरु ज्ञान अनुमान अनुभव करे,
भयो आपु आप मिलि नाम पाहीं।
भीखा आधार अपार अद्वैत है,
समुद अरु बुँद कोइ और नाहीं।

जहा तक समुंद दरियाव जल कूप है,
लहरि अरु बुंद को एक पानी।
एक सूवर्न कों भयो गहना बहुत,
देखु विचार हेम खानी।
पिरथवी आदि घट रच्यो रचना बहुत,
मिर्तिका एक खुद भूमि जानी।
भीखा इत आतमा रूप बहुतै भयो,
बोलता ब्रह्म चीन्हें सो ज्ञानी।

सो हरि जन जो हरि गुन गैनी।
मन क्रम बचन तहा लै लावे, गुरु गोविन्द को पैनी॥
ता वर होहि दयाल महाप्रभु, जुक्ति वतावैं सैनी।
बूझि बिचारि समझि ठहरावत, तुरत भयो चित चैनी॥
काम क्रोध मद लोभ पखेरू, टूटि जात तब डैनी।
आतम राम अभ्यास लखन करि, जब लेवे निज ऐनी॥
ब्रह्म सरूप अनूप की सोभा, नहिं कहि आवत बैनी।
भीखा गुरु गुलाल सिर ऊपर, खुदत है बिनु नैनी॥

देखो प्रभु मन कर अजगूता॥ टेक॥
राम को नाम सुधा सम छोड़त बिषया रस ले सूता।
जैसे प्रीति किसान खेत सों दारा धन औ पूता॥
ऐसी गति जो प्रभु पद लावै सोई परम अवधूता।
सोई जोग जोगेसुर कहिये जा हिये हरि हरि हूता॥
भीखा नीच ऊंच पद चाहत मिलै कवन करतूता।

मन मोर बड़ अवरेबिया।
हरि भजि सुख नहिं लेत, मन मोर बड़ अवरेबिया॥ टेक॥
द्रव्य दृष्टि नहिं रूप निरेखत, नूर देत बहु जेबिया।
सतगुरु खेत जोति लै बोवल, भीखा जम लियो हिसबिया॥

मन अनुरागल हो सखिया॥ टेक॥
नाहीं सगत औ सौ ढकढ़क, अलख कौन विधि लखिया।

जन्म मरन अति कष्ट करम कहं, बहुत कहां लगि झलखिया
बिनु हरि भजन के भेष लियो, कहा दिये तिलक सिर तखिया ।।
आतम राम सरूप जाने बिन, होहु दूध के मखिया ।
सतगुरु सब्दहिं साचि गहो, तजि झूठ कपट मुख भखिया ।।
बिन मिलले सुनले देखले बिन, हिया करत सुर्ति अँखिया ।
कृपा कटाच्छ करो जेहि छिन, भरि कोर तनिक इक अँखिया ।।
बन धन सो दिन पहर घरी पल, जब नाम सुधा रस चखिया ।
काल कराल जजाल डरहिंगे, अविनासी की धकिया ।।
जन भीखा पिया आपु भइल, उडि गैलि भरम की रखिया ।।

राम नाम भजि ले मन भाई ।
काहि के रोस करहु घर ही मे, एकै तुम हमरे पितु भाई ।।
देखहु सुमति सग के भायप, छिमा सील संतोष समाई ।
एकै रहनि गहनि एकै मति, ज्ञान विवेक विचार सदाई ।
होहु परंम पद के अधिकारी, संत सभा मह बहुत बड़ाई ।
कुमति प्रपंच कुचाल सकल यह, तुम्हरो देखि बहुत मुसकाई ।।
अब तुम भजहु सहाय समेतो, पाच पचीस तीन समुदाई ।
तुम अनादि सुत बड़े प्रतापी, छोटे कर्म करि होहि हँसाई ।।
तुम मोंहि कीन्ह हाल की गोदी, इत उत यह भरमाई ।
तेहिं दुख सुख को अंत कहे की, तन धरि धरि मोहिं बहुत निचाई ।।
अब अपनी उनमेख तजन की, सपथ करों दृढ़ मोहिं सोहाई ।
जन भीखा कै कहा मानु अब, मन तोहि राम के लाख दोहाई ।।

जान दे करौ मनुहरिया हो ।।टेक।।
अनेक जतन करके समझाओं ।
मानत नाहिं गँवरिया हो ।।
करत करेरी नैन बैन सग ।
कैसे के उतरब दरिया हो ।।
या मन ते सुर नर मुनि थाके ।
नर बपुरा क्ति घरिया हो ।।
पार भइलौं पिव पीव पुकारत ।
कहत गुलाल भिखरिया हो ।।

हमरो मनुवा बड़ो अनारी ।
साहब निकट न करत चिन्हारी ।।
प्रानायाम न जुक्ति बिचारी ।

अजपा जाप न लावै तारी ॥
खोलै न भ्रम ते बज्र किवारी ।
निज सरूप नहि देखि मुरारी ॥
प्रान अपान मिलन न सँवारी ।
गगन गवन नहिं सब्द उचारी ॥
सुन्न समाधि न चेत बिसारी ।
यह लालसा उर बड़ी हमारी ॥
सर्बं दान गुरु दाता भारी ।
जाचक सिष्य सो लेत भिखारी ॥

सब भूला किधौ हमहिं भुलाने ।
सो न भुला जाके आतम ध्याने ॥
सब घट ब्रह्म बोलता आही ।
दुनिया नाम कहौं मै काही ॥
दुनिया लोक बेद मति धाये ।
हमरे गुरु गम अजपा जापे ॥
हरिजन जे हरि रूप समावे ।
घमासान भये सूर कहावे ॥
कहे भीखा क्यों नाहीं नाहीं ।
जब लगि साँच झूँठ तन माहीं ॥

रे मन है है .कवन गति मेरी ।
मेरी समझ बूझ होत देरी ॥
यह ससार आये गति माया लागी धाये ।
राम नाम नहिं जान्यो मति गति न निबेरी ॥
भजन करारे आये कबहीं न साँचि गाये ।
करम कुटिल करे मति गइ तेरी ॥
भीखा चरनों मे लीजै मन माया दूरि कीजै ।
बार बार मागै इहै प्रीत लागे तेरी ॥

अधम मन राम नाम पद गहो ।
ताते यह तन धरि निरबहो ॥ टेक ॥
अलख न लखि जाय अजपा न जपि जाय ।
अनहद के हद नाहीं हो ॥
कथनी अकथ कवनि विधि होवे
जहं नाहीं तहं ताही हो ॥

बिन मूल पेड़ फल रूप सोई।
निज दृष्टि बिन देखी कहीं ॥
बिन अकार के रूह नूरे हैं।
अगिनि बिन भ्रम में दहो ॥
बोलत है आप माहीं आत्मा है हम नाहीं।
अविगति की गति महो ॥
पूरन ब्रह्म सकल घट व्यापक।
आदि अंत भरि पूर रहो ॥
सतगुरु सत दियो सुरति निरति लियो।
जीव मिलि पिय पहुँच हो ॥
जब भीखा अब कारन छोड़ो।
तत्त पदारथ हाथ लहो ॥

उठ्यो दिल अनुमान हरि ध्यान ॥ टेक ॥
भर्म करि भूल्यो आपु अपान।
अब चीन्हो निज पति भगवान ॥
मन बच क्रम दृढ मत परवान।
वारो प्रभु पर तन मन प्रान ॥
सब्द प्रकाश दियो गुरु दान।
देखन सुनत नैन बिनु कान ॥
जा को सुख सोई जानत जान।
हरि रस मधुर कियो जिन पान ॥
निर्गुन ब्रह्म रूप निर्बान।
भीखा खलओला लग तान ॥

मन चाहत दृष्टि निहारी।
सुरति निरति अंतर लै जावो निज सरूप अनुहारी ॥
जोग जुक्ति मिलि परखन लागी पूरन ब्रह्म बिचारी।
पुलकि पुलकि आपा महँ चीन्हत देखत छवि उँजियारी ॥
सुखमन के घर आसन माडी इगल पिंगलहिं सुढारी।
सुन्न निरंतर साहब आये सब घट सब तें न्यारी ॥
प्रेम प्रीति तन मन धन अरपो प्रभु जी की बलिहारी।
गुरु गुलाल के चरन कमल रज लावत भीखा भिखारी ॥

———

चरनदास

चरनदास का जन्म मेवात (अलवर) प्रांत के डेहरा नामक गाँव में भादों सुदी तृतीया, मंगलवार, सं० १७६० मे हुआ था। इन के पिता का नाम मुरलीधर जी और माता का नाम कुंजो देवी था। यह लोग प्रसिद्ध ढूसर (धूसड़) कुलोत्पन्न थे। इस कुल के संबंध मे थोड़ा सा मतभेद है। कुछ ढूसर अपने को क्षत्रिय कहते हैं, पर विशेष कर यह कलवार माने जाते हैं। इनके पिता का स्वर्गवास इन के शैशव काल में ही हो गया था। कहा जाता है यह भी एक पहुँचे हुए फकीर थे और इनकी मृत्यु के बारे में कहा जाता है कि इनकी मृत्यु किसी ने देखा नही। एक दिन भजन के लिये जगल में जाकर यह यकायक अदृश्य हो गए थे। पिता की मृत्यु के बाद ही चरनदास का मन भी सब ओर से विरक्त सा होकर भगवद्-भक्ति में ही रम गया। कहते हैं १९ वर्ष की अवस्था मे जंगल में घूमते हुए इन्हें शुकदेव जी मिले और उन्होंने ही इन्हें दीक्षित किया था और उन्होंने ही इनका नाम चरनदास रक्खा, पहले इन का नाम रणजीत था। इन सब बातो का संक्षिप्त विवरण चरनदास जी ने स्वयं ही अपने निम्नलिखित पद्य मे दे दिया है।

डेहरे मेरो जनम नाम रणजीत बखानो।
मुरली को सुत जान जात ढूसर पहिचानो॥
बाल अवस्था माँहि बहुरि दिल्ली में आयो।
रमत मिले शुकदेव नाम चरणदास धरायो॥
जोग जुगति कर भक्ति कर ब्रह्मज्ञान दृढ़ कर गह्यो।
आतम तत विचार के अजपा ते तनमन रह्यो॥

गुरु से दीक्षित होने के बाद यह दिल्ली में स्थायी रूप से रहने लगे और वहीं ७९ वर्ष की अवस्था पाकर सं० १८३९ में सुरधाम सिधारे। इनके ५२ प्रधान शिष्य थे और उन की गद्दियाँ अब तक चल रही हैं। सहजोबाई और दयाबाई नाम की इनकी दो शिष्याएं भी प्रसिद्ध हैं। ये दोनो ही बहुत पहुँची हुई साध्वी कवि हो गई हैं। इन्होने अधिक भ्रमण और सत्संग आदि नहीं किया था और न इनकी शिक्षा ही बहुत विस्तृत थी। इन के विचार कबीर के विचारों से मिलते जुलते थे। ढोंगियो पाखंडियों तथा भिन्न भिन्न मतों की प्रायः कटु आलोचना इन्होंने भी की है। वेद पुराण तथा स्मृति आदि की निःसारता पर इन्होंने भी कटाक्ष करना उचित समझा है।

नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की खोज (प्रथम भाग पृ० ५८६-७) में इन के ११ ग्रंथों की सूची दी हुई है। परंतु हमारे सामने केवल वेलवेडियर से प्रकाशित 'चरनदास जी की बानी' नामक सग्रह है। इस मे लगभग ६०० पद्य हैं और इन्हीं में से प्रस्तुत संग्रह तैयार किया गया है।

चरनदास

अनहद शब्द

जब से अनहद घोर सुनी ॥
इंद्री थकित गलित मन हूवा, आसा सकल भुनी ।
घूमत नैन सिथिल भइ काया, अमल जु सुरत सनी ॥
रोम रोम आनद उपज करि, आलस सहज भनी ।
मतवारे ज्यों सबद समाये, अतर भींज कनी ॥
करम भरम के बधन छूटे, दुबिधा बिपति हनी ।
आपा बिसरि जक्त कू बिसरो, कित रहिं पाँच जनी ॥
लोक भोग सुधि रही न कोई, भूले ज्ञान गुनी ।
हो तहँ लीन चरनहीं दासा, कहै सुकदेव मुनी ॥
ऐसा ध्यान भाग सूँ पैये, चढ़ि रहै सिखर अनी ।

चितावनी

कछु मन तुम सुधि राखौ वा दिन की ॥
जा दिन तेरी देह छुटैगी, ठौर बसौगे बन की ।
जिन के सग बहुत सुख कीन्हें, मुख ढकि ह्वै हैं न्यारे ॥
जम का त्रास होय बहु भाती, कौन छुटावन हारे ।
देहरी लौं तेरी नारि चलैगी, बड़ी पौरि लौं माई ॥
मरघट लौं सब बीर भतीजे, हस अकेलो जाई ।
द्रब्य गड़े अरु महल खड़े ही, पूत रहैं घर माहीं ॥
जिन के काज पचे दिन राती, सो सँग चालत नाहीं ।
देव पितर तेरे काम न आवैं, जिन की सेवा लावै ॥
चरनदास सुकदेव कहत है, हरि बिन मुक्ति न पावै ।

अरे नर हरि का हेत न जाना ॥
उपजाया सुमिरन के काजे, तैं कछु औरै ठाना ।
गर्भ माहिं जिन रच्छा कीन्हीं, ह्वाँ खाने कूँ दीन्हा ॥
जठर अगिन सों राखि लियो है, अग सँपूरन कीन्हा ।
बाहर आय बहुत सुधि लीन्हीं, दसन बिना पय प्यायो ॥
दाँत भये भोजन बहु भाँती, हित सों तोहिं खिलायो ।
और दिये सुख नाना बिधि के, समुझि देखु मन माहीं ॥

भूलो फिरत महा गर्बायो, तू कछु जानत नाहीं।
तुव कारन सब कुछ प्रभु कीन्हो, तू कीन्हा निज काजा ॥
जग ब्यौहार पगो ही बोलै, तोहि न आवै लाजा।
अजहूँ चेत उलट हरि सौंही, जन्म सुफल करु भाई ॥
चरनदास सुकदेव कहैं यों, सुमिरन है सुखदाई।

अपना हरि बिन और न कोई ॥
मातु पिता सुत बंधु कुटुंब सब, स्वारथ ही के होई।
या काया कूँ भोग बहुत दै, मरदन करि करि धोई ॥
सो भी छूटत नेक तनिक सी, सग न चाली वोई।
घर की नारि बहुत ही प्यारी, तिन में नाहीं दोई ॥
जीवत कहती साथ चलूँगी, डरपन लागी सोई।
जो कहिये यह द्रव्य आपनी, जिन उज्जल मति खोई ॥
आवत कष्ट रखत रखवारी, चलत प्रान ले जोई।
या जग में कोइ हितू न दीखै, मैं समझाऊँ तोई ॥
चरनदास सुकदेव कहैं यों, सुनि लीजै नर लोई।

बिरह

हमारो नैना दरस पियासा हो ॥
तन गयो सूखि हाय हिये बाढ़ी, जीवत हुँ वोहि आसा हो।
बिछुरन थारो मरन हमारो, मुख में चलै न प्यासा हो ॥
नींद न आवै रैनि बिहावै, तारे गिनत आकासा हो।
भये कठोर दरस नहिं जाने, तुम कूँ नेक न साँसा हो ॥
हमरी गति दिन दिन औरे ही, बिरह बियोग उदासा हो।
सुकदेव प्यारे रहु मत न्यारे, आनि करो उर बासा हो ॥
रन जीता अपनो करि जानी, निज करि चरनन दासा हो।

प्रेम

गुरु हमरे प्रेम पियायो हो ॥
ता दिन तें पलटो भयो, कुल गोत नसायो हो।
अमल चढ़ो गगनै लगो, अनहद मन छायो हो ॥
तेज पूँज की सेज पै, प्रीतम गल लायो हो।
गये दिवाने देसड़े, आनँद दरसायो हो ॥
सब किरिया सहजै छुटी, तप नेम भुलायो हो।
त्रैगुन तैं ऊपर रहूँ, सुकदेव बसायो हो ॥
चरनदास दिन रैन नहिँ, तुरिया पद पायो हो।

विनती

पतित उधारन बिरद तुम्हारो ॥
जो यह बात सॉंच है हरि जू, तौ तुम हम कूं पार उतारो ।
बालपने औ तरुन अवस्था, और बुढ़ापे माहीं ॥
हम से भई सभी तुम जानौ, तुम से नेक छिपानी नाहीं ।
अनगिन पाप भये मनमाने, नखसिख औगुन धारी ॥
हिरि फिरि कै तुम सरनै आयौ, अब तुम को है लाज हमारी ।
सुभ करमन को मारग छूटो, आलस निद्रा घेरो ॥
एकहिं बा। भली बनि आई, जग में कहायो तेरो चेरो ।
दीन दयाल कृपाल बिसभर, स्री सुकदेव गुसाईं ॥
जैसे और पतित धन तारे, चरनदास की गहियो बाहीं ।

राखो जी लाज गरीब निवाज ॥
तुम बिन हमरे कौन सॅवारे, सबही बिगरे काज ।
भक्त बछल हरि नाम कहावो, पतित उधारन हार ॥
करो मनोरथ पूरन जन की, सीतल दृष्टि निहार ।
तुम जहाज मैं काग तिहारो, तुम तज अत न जाऊँ ॥
जो तुम हरिजू मारि निकासो, और ठौर नहिं पाऊँ ।
चरनदास प्रभु सरन तिहारी, जानत सब ससार ॥
मेरी हॅसी सो हॅसी तुम्हारी, तुम हूँ देखु विचार ।

करौ नर हरि भक्तन को सग ॥
दुख बिसरे सुख होय घनेरी तन मन फाटे अग ।
ह्वै निःकाम मिलो सतनसू नाम पदारथ मग ॥
जेहि पाये सब पातक नासै उपजै ज्ञान तरग ।
जो वे दया करैं तेरे पर प्रेम पिलावैं भग ॥
जाके अमल दरस हो हरि को नैनन आवै रंग ।
उनके चरन सरन ही लागों सेवा करो उमग ॥
चरनदास तिनके पग परसन आस करत हैं गग ।

राग बिहागरा

सुद्धि बुद्धि सब गई खोय री मैं इस्क दीवानी ।
तलफत हूं दिन रैन ज्यों मछली बिन पानी ॥
बिन देखे मोहि कल न परत है देखत आँख सिरानी ।

सुधि आये हिय मे दव लागै नैनन बरखत पानी।
जैसे चकोर रटत चदा को जैसे पपिहा स्वाती॥
ऐसे हम तलफत पिय दरसन बिरह विथा यहि भाँती।
जब ते मीत विछोहा हूवा तब ते कछु न सुहानी॥
अग अग अकुलात सखी री रोम रोम मुरझानी।
बिन मनमोहन भवन अँधेरी भरि भरि आवै छाती॥
चरनदास सुकदेव मिलावो नैन भये मोहि घाती।

राग सोरठा

हमरा नैना दरस पियासा हो।
तन गयो सूखि हाय हिये बाढी जीवत हूँ वहि आसा हो।
बिछुरन थारो मरन हमारो मुख मे चलै न ग्रासा हो।
नींद न आवै रैनि बिहावै तारे गिनत अकासा हो॥
भये कठोर दरस नहिं जाने तुम कू नेक न सासा हो।
हमरी गति दिन दिन औरै ही विरह वियोग उदासा हो॥
सुकदेव पियारे मत रहु न्यारे आनि करो उर बासा हो।
रनजीता अपनी करि जानी निज करि चरनन दासा हो॥

अँखिया गुरु दरसन की प्यासी।
इक टक लागी पथ निहारू तन सूँ भई उदासी॥
रैन दिना मोहि चैन नहीं है चिता अधिक सतावै।
तलफत रहूँ कल्पना भारी निःचल बुधि नहिं आवै॥
तन गयो सूख हूक अति लागै हिरदै पावक बाढी।
खिन में लेटी खिन मे बैठी घर अँगना खिन ठाढ़ी॥
भीतर बाहर संग सहेली बातन ही समझावैं।
चरनदास सुकदेव पियारे नैनन ना दरसावैं॥

अरे नर परनारी मत तक रे।
जिन जिन ओर तकी डायन की, बहुतन कू गह भखरे॥
दूध आक को पात कठैया, झाल अगिन की जान।
सिंह मुछारे विष कारे को, वैसे ताहि पिछानी॥
खानि नरक की अति दुखदाई, चौरासी भरमावै।
जनम जनम कूँ दाग लगावै, हरि गुरु तुरत छुटावैं॥
जग में फिर फिरि महिमा खोवै, राखै तन मन मैला।
चरनदास सुकदेव चितावैं, सुमिरो राम सुहेला॥

आसावरी

सतगुरु निज पुर धाम बसाये ।
जित के गये अमर है बैठे भव जल बहुरि न आये ॥
जोगी जोग जुक्ति करि हारे ध्यानी ध्यान लगावै ।
हरि जन गुरु की दया बिना यों दृष्टि नहीं दरसावै ॥
पडित मुडित चुडित ढूढै, पढ़ि सुनि बेद पुरानै ।
जासू वै सब पायो चाहैं सो तौ नेति बखानै ॥
जगम जती तपी सन्यासी सब हीं वा दिसि धावै ।
सुरति निरति की गम जहँ नाहीं वै कहि कैसे पावै ॥
देस अटपटा बेगम नगरी निगुरे राह न पाया ।
चरनदास सुकदेव गुरु ने किरपा करि पहुँचाया ॥

नट व बिलावल

सो नैना मारे तुरिया तत पद अटके ।
सुरति निरति की गम नहिं सजनी जहा मिलन को लटके ॥
भूलो जगत बकत कछु औरै बेद पुरानन ठठके ।
प्रीति रीति की सार न जानै डोलत भटके भटके ॥
किरिया कर्म भर्म उरझे रे ये माया के भटके ।
ज्ञान ध्यान दोउ पहुँचत नाहीं राम रहीमा फटके ॥
जग कुल रीति लोक मर्यादा मानत नाहीं हटके ।
चरनदास सुकदेव दया सूँ त्रैगुन तजि के सटके ॥

राग मलार

सतगुरु भौसागर डर भारी ।
काम क्रोध मद लोभ भँवर जित लरजत नाव हमारी ॥
तिस्ना लहर उठत दिन राती लागत अति झकझोरी ।
ममता पवन अधिक डरपावैं काँपत है मन मोरा ॥
और महा डर नाना बिधि के छिन छिन मे दुख पाऊँ ।
अतरजामी बिनती सुनिये यह मै अरज सुनाऊँ ॥
गुरु सुकदेव सहाय करो अब धीरज रहा न कोई ।
चरनदास को पार उतारो सरन तुम्हारी सोई ॥

राग केदारा

अब की तारि देव बलबीर ।
चूक मो सूँ परी भारी कुबुधि के सँग सीर ॥

भौ सागर को धार तीच्छन महा गँधीलो नीर ।
काम क्रोध मद लोभ भँवर में चित न धरत अब धीर ॥
मच्छ जहँ बलवत पाँचौ थाह गहिर गँभीर ।
मोह पवन झकोर दारुन दूर पैलव तीर ॥
नाव तौ मँझधार भरमी हिये बाढ़ा पीर ।
चरनदास कोउ नाहिं संगी तुम बिना हरि हीर ॥

राग बिलावल

प्रभु जू सरन तिहारी आयो ।
जो कोइ सरन तिहारी नाहीं भरम भरम दुख पायो ॥
औरन के मन देवी देवा मेरे मन तुहिं भायो ।
जब सों सुरति सम्हारी जग में और न सीस नवायो ॥
नरपति सुरपति आस तुम्हारी यह सुनि के मैं धायो ।
तीरथ बरत सकल फल त्याग्यौ चरन कमल चित लायो ॥
नारद मुनि अरु सिव ब्रम्हादिक तेरो ध्यान लगायो ।
आदि अनादि जुगादि तेरो जस वेद पुरानन गायो ॥
अब क्यों न बाँह गहो हरि मेरी तुम काहे बिसरायो ।
चरनदास कहैं करता तूही गुरु सुकदेव बतायो ॥

राग काफी

तुव गुन करूँ बखान यह मोरि बुद्धि कहाँ है ॥ टेक ॥
चतुर मुखी ब्रम्हा गुन गावैं तिनहुँ न पायौ जान ।
गुन गावत संकर जब हारे करने लागे ध्यान ॥
गुन अपार कछु पार न पायो सनकादिक कथि ज्ञान ।
गुन गावत नारद मुनि थाके सहस मुखन सू सेस ॥
लीला को कछु वार न पायो ना परिमान न भेग ।
सक्ति धनी अनगिनित तुम्हारी बहुत रूप बहु नाव ॥
जबहिं विचारू हिये में हारूं अचरज हेरि हिराव ।
अति अथाह कछु थाह न पाऊँ सोच अचक रहिजाव ॥
गुरु सुकदेव थके रनजीता मै कहु कौन कहाव ।

राग गौरी

अरे नर क्यन भूतन की सेवा ॥ टेक ॥
दृष्टि न आवै मुख नहिं बोलै, ना लेवा ना देवा ॥
जेहिं कारन घी जोति जलावैं, बहु पकवान बनावै ॥
सो खर्चें तू अधिक चाव सूं, वह सुपने नहिं खावै ॥

राति जगावैं भोपा गावैं, झूटै मूंड हिलावैं।
कुटुंब सहित तोहि पैर पड़ावैं, मिथ्या बचन सुनावैं॥
ताहि भरोसे जन्म गँवावै, जीवत मस्त न साथा।
बड़ भागन नर देही पाई, खोवै अपने हाथा॥
चारि बरन में बुधि का, ऊँच नीच किन होई।
जो कोइ झूठी आसा राखै, जगत जायगा सोई॥
ताते सत बिस्वास टेक गहि, भक्ति करो हरि केरी।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, होय मुक्ति गति तेरी॥

राग सोरठा

साधो भरमा यह ससारा॥ टेक॥
गति मति लोक बड़ाई, उरझे कैसे हो छुटकारा।
मर्म पड़े नाना बिधि सेती, तीरथु बर्त अचारा॥
देह कर्म अभिमानी भूले, छूंछ पकरि तत डारा।
जोगी जोग जुक्ति करि हारे, पडित बेद पुराना॥
षट दरसन पग आप पुजावैं, पहिरि पहिरि रग बाना।
जानत नाहिं आप हमको हैं, को है वह भगवाना॥
को यह जगत कौन गति लागै, सँभलै ना अज्ञाना।
जा कारन तुम इत उत डोलो, ताको पावत नाहीं॥
चरनदास सुकदेव बतायो, हरि हैं अंतर माहीं॥

सुनु राम भक्ति गति न्यारी है।
जोग जज्ञ संजम अरु पूजा।
प्रेम सबन पर भारी है॥ टेक॥
जाति बरन पर जो हरि जाते।
तौ गनिका क्यों तारा है॥
सेवरी सरस करी सुर मुनि ते।
हीन कुचील जो नारी है॥
दुस्सासन पत खोवन लागेव।
सब हीं ओर निहारी है॥
होय निरास कृश्न कहँ टेरी।
बाढो चीर अपारी है॥
टेली लौंडी कस राजा का।
दीन्ही रूप कनारी है॥
एक सौ एक अधिक ब्रजनारी।

कुबिजा कीन्ही प्यारी है ॥
पाचो पँडवन जाय सजो है ।
सगरी सजी सँवारी है ॥
बाल्मीक बिनकाज न हो तो ।
बाजो संख मुरारी हो ॥
साधौं की सेवा में राचौ ।
भूप सुरति बिसारी है ॥
सेना भक्त के कारन हरि जू ।
वाकी सूरत धारी है ॥
दास कबीरा जाति जुलाहा ।
भए संत उपकारी हो ॥
साखि सुनो रैदास चमारा ।
सो बाग में उजियारी है ॥
कनक जनेऊ काढ़ि देखायो ।
विप्र गये सब हारी है ॥
अजामील सदना तिरलोचन ।
नाभा नाम अधारी है ॥
धना जाट कालू अरु कूबा ।
बहुत किये भा पारी है ॥
प्रीत बराबर और न देखै ।
बेद पुरान बिचारी है ॥
चरनदास सुकदेव कहत हैं ।
ता बस आप मुरारी हैं ॥

राग रामकली

चारि बरन सूं हरि जन ऊंचे ।
भये पवित्तर हरि के सुमिरे तन के उज्जल मन के सूचे ॥
जो न पतीजै साखि बताऊं सवरी के जूठे फल खाये ।
बहुत ऋषीसर हाई रहते तिन के घर रघुपति नहिं आए ॥
भिल्लनि पाव दियो सरिता में सुद्ध भयो जल सब कोइ जानै ।
मंद हुतो सो निरमल हूवो आभमानी नर भयो खिसाने ॥
बम्हन छत्री भूप हुते बहु बाजो सख सुपच जब आयो ।
बाल्मीक जब पूरन कीन्हो जै जै कार भयो जस गायो ॥
जाति बरन कुल सोई नीको जाके होय भक्ति परकास ।
गुरे सुकदेव कहत हैं तो को हरि जन सेव चरन हों दास ॥

राग सोरठ व आसावरी

साधू पैज गहै सोइ सूरा।
काके मुख पर नूर है जब बाजै मारू तूरा॥
कलँगी अरु गज गाह बनावै इनका परन दुहेला।
सावत भेख बनाय चलत हैं यह नहिं सहज सुहेला॥
या बाने को नेम यही है पग धरि फिरि न उठावै।
जो कुछ होय सो आगेहिं आगे आगे हीं को धावै॥
रन में पैठि झडाझड़ि खेलै सन्मुख सस्तर खावै।
खेत न छोड़ै ह्वाई जूझै तबहीं सोभा पावै॥
चरनदास बाना सतन का तौले सीस चढ़ावै।

साधौ टेक हमारी ऐसी।
कोटि जतन करि छूटै नाहीं कोऊ करी अब कैसी॥
यह पग धरो सँभाल अचल होइ बोल चुके सोइ बोले।
गुरु मारग में तेन न देनो अब इत उत नहिं डोलै॥
जैसे सूर सती अरु दाता पकरी टेक न टारैं।
तन करि धन करि मुख नहिं मोड़ैं धर्म न अपनो हारैं॥
पावक जारो जल में बोरो टूक टूक करि डारो।
साध सँगति हरि भक्ति न छोड़ूं जीवन प्रान हमारो॥
पैज न हारू दाग न लागे नेक न उतरे लाजा।
चरनदास सुकदेव दया से सब बिधि सुधरैं काजा॥

राग सोरठा

जो नर इक छत भूप कहावै।
सत्त सिंहासन ऊपर बैठे जत ही चँवर ढुरावै॥
दया धर्म दोउ फौज महा लै भक्ति निसान चलावै।
पुन्न नगारा नौबत बाजै दुरजन सकल हलावै॥
पाप जलाय करै चौगाना हिंसा कुबुधि नसावै।
मोह मुकद्दम काढि मलुक सू ला बैराग बसावै॥
साधन नायब जित तित भेजे दै दै सजम साथा।
राम दोहाई सिगरे फेरै कोइ न उठावै माथा॥
निरभय राज करै निस्चल ह्वै गुरु सुकदेव सुनावै।
चरनदास निस्चै करि जानौ बिरला जन कोइ पावै॥

राग मलार

चहुँ दिस भिलमिल झलक निहारी ।
आगे पीछे दहिने बाये तल ऊपर उँजियारी ॥
दृष्टि पलक त्रिकुटी है देखै आसन पद्म लगावै ।
संजम साधै दृढ़ आराधै जब ऐसी सिधि पावै ॥
बिन दामिनि चमकार बहुत हीं सीप बिना लर मोती ।
दीप मालिका बहुत दरसावैं जगमग जगमग जोती ॥
ध्यान फलै तब नभ के माहीं पूरन हो गति सारी ।
चाँद घने सूरज अनकी ज्यों सूभर भरिया भारी ॥
यह तौ ध्यान प्रतच्छ बतायौ सरधा होय तो कीजै ।
कहि सुकदेव चरन ही दासा सो हम सूं सुनि लीजै ॥

राग सोरठ

अबधू ऐसी मदिरा पीजै ।
बैठि गुफा में यह जग बिसरै चद सूर सम कीजै ॥
जहा कुलाल चढ़ाई भाठी ब्रह्म ज्वाल पर जारी ।
भरि भरि प्याला देत कुलाली बाहै भक्ति खुमारी ॥
माता है करि ज्ञान खडग लै काम क्रोध कूं मारै ।
घूमत रहै गहै मन चंचल दुबिधा सकल बिडारै ॥
जो चाखै यह प्रेम सुधा रस निज पुर पहुँचै सोई ।
अमर होय अमरा पद पावै आव गवन न होई ॥
गुरु सुकदेव किया मतवारा तीन लोक तृन बूझा ।
चरनदास रनजीत भये जब आनँद आनद सूझा ॥

राग बिहागरा

साधो निंदक मित्र हमारा ।
निंदक कूं निकटे ही राखों होन न देउं नियारा ॥
पाछे निंदा करि अघ धोवै सुनि मन मिटै बिकारा ।
जैसे सोना तापि अगिन में निरमल करै सोनारा ॥
घन अहरन कसि हीरा निवटै कीमत लच्छ हजारा ।
ऐसे जाँचत दुष्ट संत कू करन जगत उँजियारा ॥
जोग जज्ञ जस पाप कटन हितु करै सकल ससारा ।
बिन करनी मम कर्म कटिन सब मेटै निंदक प्यारा ॥
सुखी रहो निंदक जग माहीं रोग नहीं तन सारा ।

हमरी निंदा करने वाला उतरै भव निधि पारा ॥
निंदक के चरनों की अस्तुति भाखों बारम्बारा ।
चरनदास कहैं सुनियां साधो निंदक साधक भारा ॥

राग सोरठा

साधो होनहार की बात ।
होत सोई जो होनहार है का पै मेटी जात ॥
कोटि सयानप बहु बिधि कीन्हें बहुत तके कुसिलात ।
होनहार ने उलटी कीन्हीं जल में आग लगात ॥
जो कुछ होय होतब्रता ,मोंडी जैसी उपजै बुद्धि ।
होनहार हिरदै मुख बोलै बिसरि जाय सब सुद्धि ॥
गुरु सुखदेव दया सू होनी धारि लई मन माहिं ।
चरनदास सोचै दुख उपजै समझे सू दुख जाहिं ॥

राग परज

जिन्हें हरि भक्ति पियारी हो ।
मात पिता सहजैं छूटैं छूटैं सुत अरु नारी हो ॥
लोक भोग फीके लगैं सम अस्तुति गारी हो ।
हानि लाभ नहिं चाहिये सब आसा हारी हो ॥
जग सूं मुख मोरै रहैं करैं ध्यान मुरारी हो ।
जित मनुवा लागी रहै भइ घट उजियारी हो ॥
गुरू सुखदेव बताइया प्रेमी गति भारी हो ।
चरनदास चारो बेद सूं और कछू न्यारी हो ॥

गुरु हमरे प्रेम पियायो हो ।
ता दिन तें पलटो भयो कुल गोत नसायो हो ॥
अमल चढ़ो गगने लगो अनहद मन छायो हो ।
तेज पुज की सेज पै प्रीतम गल लायो हो ॥
गये दिवाने देसड़े आनद दरसायो हो ।
सब किरिया सहजै छूटी तप नेम भुलायो हो ॥
त्रंगुन तें ऊपर रहूं सुखदेव बसायो हो ।
चरनदास दिन रैन नहिं तुरिया पद पायो हो ॥

राग सोरठ

भाई रे समझ जग व्यवहार ।
जब ताईं तेरे धन पराक्रम करै सब हीं प्यार ॥

अपने सुख कू सबहिं चाहैं मित्र सुत अरु नारि।
इनहीं तो अप बस कियो है मोह बेड़े डारि॥
सबन तो कू भय दिखायो लाज लकुटी मार।
बाजीगर के बादरा ज्यों फिरत घर घर दुवार॥
जबै तो को विपत्ति आवै जरा कोर बिकार।
तबै ते सू लाज मानै करैं ना तेरि सार॥
इनकी सगति सदा दुख है समझ मूड गवार।
हरि प्रीतम कूं सुमिरि ले कहैं चरनदास पुकार॥

राग बिहागरा

ये सब निज स्वारथ के गरजी।
जग में हेत न कर काहू सूं अपने मन को बरजी॥
रोपैं फद घात बहु डारैं इन ते रहु डरता जी।
हिरदे कपट बाहर मिठ बोलैं यह छल हैगी कहा जी॥
दुख सुख दर्द दया नहिं बूझै इनसे छुटावो हरि जी।
सौगँद खाय झूँठ बहु बोलैं भवसागर कस तर जी।
बैरी मित्र सबै चुनि देखे दिल के महरम कहँ जो।
इनको दोष कहा कहा दीजै यह कलजुग की झर जी॥
दुनिया भगल कुटिल बहु खोंटी देखि छाती मेरी लरजी।
चरनदास इनकू तजि दीजै चल बस अपने घर जी॥

राग आसावरी

साधो राम भजै ते सुखिया।
राजा परजा नेमी दाता सबहीं देखे दुखिया॥
जो कोई धनवत जगत में राखत लाख हजारा।
उनकू तौ ससय है निसि दिन घटत बढत व्यौहारा॥
जिनके बहु सुत नाती कहिये और कुटुँब परिवारा।
वे तो जीवन मरन के काजै भरत रहैं दुख भारा॥
नेमी नेम करत दुख पावै कर स्नान सवेरा।
दाता कू देवे का दुख है जब मगतौं ने घेरा॥
चारि बरन में कोउ न देखो जाको चिता नाहीं।
हरि की भक्ति बिना सब दुख है समझ देख मन माहीं॥
सत सगति अरु हरि सुमिरन झरि सुकदेवा गुरु कहिये।
चरनदास बिपदा सब तजि के आनद में नित रहिया॥

राग सोरठ

अब घर पाया हो मोहन प्यारा ॥ टेक ॥
लखो अचानक अज अविनासी उघरि गये दृग तारा।
झूमि रह्यो मेरे आँगन में टरत नहीं कहुँ टारा।
रोम रोम हिय माहीं देखो होत नहीं छिन न्यारा।
भयो अचरज चरनदासन पै ये खोज कियो बहुबारा ॥

राग आसावरी

हे मन आतम पूजा कीजै।
जितनी पूजा जग के माहीं सब हुत को फल लीजै ॥
जो जो देहीं ठाकुर द्वारे तिन में आप विराजै।
देवल में देवत है परगट आछी विधि सू राजै ॥
त्रैगुन भवन सँभारि पूजिये अनरस होन न पावै।
जैसे कू तैसा ही परसै प्रेम अधिक उपजावै ॥
देवता दृष्टि न आवै धोखे कू सिर नावै।
आदि सनातन रूप सदा हों मूरख ताहि न ध्यावै ॥
घट घट सूझै कोइ इक बूझै गुरु सुकदेव बतावैं।
चरनदास यह सेवन्ह कीन्हे जीवन मुक्ति फल पावैं ॥

जब सू मन चचल घर आया।
निर्मल भया मैल गये सगरे तीरथ ध्यान जो न्हाया ॥
निर्बासा है आनद पाये या जग सूँ मुख मोड़ा।
पाचौ भई सहज बस मेरे जब इनका रस छोड़ा ॥
भय सब छूटै अब को लूटै दूजी आस न कोई।
सिमिटि सिमिटि रहा अपने माहिं सकल विकल नहि होई ॥
निज मन हुआ मिटिगम दूआ को वैरी को मीता।
बधु मुक्ति का ससय नाहीं जन्म मरन की चीता ॥
सुगरू सुकदेव भेव मोंहि दोनों जब सूँ यह गति साधी।
चरनदास सूं ठाकुर हुए बुटि गये बाद बिबादी ॥

हम तो आतम पूजा धारी।
समझि समझि कर निस्चय कीन्ही, और सबन पर भारी ॥
और देवल जहं धुँधली पूजा, देवत दृष्टि न आवै ॥
हमरा देवत परगट दीखै बोलै चालै खावै।

जित देखौं तित ठाकुरद्वारे करों जहा नित सेवा ॥
पूजा की बिधि नीके जानों, जासूं परसन देवा ।
करि सन्मान अस्नान कराऊं, चंदन नेह लखाऊं ॥
मीठे बचन पुष्प सोइ जानो है करि दीन चढ़ाऊं ।
परसन करि करि दरसन पाऊ बार बार बलि जाऊं ॥
चरनदास सुखदेव बतावै, आठ पहर सुख पाऊं ॥

सवैया

आदिहुं आनद, अंतहुं आनद,
मध्यहुं आनंद, ऐसे हिं जानी ।
बंधहुं आनंद, मुक्तिहुं आनद,
आनद ज्ञान, अज्ञान पिछानी ।
लेटेहुँ आनद बैठेहुं आनंद,
डोलत आनद, आनद आनी ।
चरनदास बिचारि, सबै कुछ आनंद,
आनंद छाड़ि के, दुक्ख न ठानी ।

कबित्त

मदिर क्यों तिआगे अरु भारै क्यों गिरिवर कूं,
हरि जी कूं दूर जानि कल्पै क्यों बावरे ।
सब साधन बताये बताये अरु चारि बेद गाये,
आपन कू आप देखि अतर लव लाव रे ।
ब्रम्ह ज्ञान हिये धरौ बोलते की खोज करौ,
माया अज्ञान हरौ आपा बिसराव रे ।
जैहै जब आप धाप कहा पुन्न कहा पाप,
कहैं चरनदासजू निस्चल घर आव रे ।

रैदास जी

संत कवियों में रैदास जी का एक विशेष स्थान है। ये जाति के तो चमार थे पर इन की भक्ति बहुत उच्च कोटि की थी और कविता भी ये बड़ी मधुर करते थे। इनकी जन्मतिथि अज्ञात है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि यह कबीर साहब के समकालीन और स्वामी रामानंद के शिष्य थे। साथ ही यह भी प्रसिद्ध है कि मीरा बाई ने इन से दीक्षा ली थी और मीरा बाई तुलसी दास के समकालीन थीं। जो विद्वान् इन्हे कबीर के समकालीन बतलाते हैं उनका कहना है कि मीरा बाई ने नहीं चित्तौड़ की झाली रानी ने इन से दीक्षा ली थी। सब कुछ किंवदंती के आधार पर है। ऐसी अवस्था में कुछ निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। और फिर यह भी किंवदती है कि रैदास जी १२० वर्ष जिए थे। ऐसी अवस्था में इन का शैशव मे कबीर और वृद्धावस्था में मीरा बाइ दोनों से साक्षात्कार होना संभव है।

कहा जाता है कि ये पूर्व जन्म में ब्राह्मण आर स्वामी रामानंद के शिष्य थे, पर इन्होने किसी बात से चिढ़ कर इन्हे शाप दिया कि जा तू चमार के यहाँ जन्म ले। इसी शाप के फल स्वरूप काशी के राघू बनियाँ के यहाँ उस की स्त्री घुरबिनियाँ के गर्भ से इन का जन्म हुआ। जन्म के बाद ही स्वामी रामानंद ने स्वयं जाकर इन का नाम 'रविदास' रक्खा और इन्हें दीक्षित किया।

ये अधिकतर काशी में ही रहे और इन की प्रतिष्ठा बढ़ती ही गई यद्यपि जात्याभिमानी ब्राह्मण पद पद पर इन का अपमान और विरोध करने में कभी नही चूकते थे।

इन के मुख्य ग्रंथ 'रैदास जी की बानी' और 'रैदास जी के पद' हैं। इन के बहुत से पद आदि ग्रथ में भी संगृहीत हैं। भक्तिरस के अतिरिक्त इन की कविता मे अच्छी काव्य कला का परिचय भी मिलता है। इस से स्पष्ट है कि संत समागम के सिवा उन्होने साहित्यिक शिक्षा और अभ्यास में भी परिश्रम किया होगा।

रैदास जी

साधु

आज दिवस लेउँ बलिहारा।
मेरे गृह आया राम का प्यारा ॥ टेक ॥
आँगना बँगला भवन भयो पावन।
हरिजन बैठे हरिजस गावन ॥
करूँ डंडवत चरन पखारूँ।
तन मन धन उन ऊपरि वारूँ।
कथा कहैं अरु अर्थ बिचारैं ॥
आप तरैं औरन को तारैं।
कह रैदास मिलैं निज दास ॥
जनम जनम कै काटै पास ॥

चितावनी

कहु मन राम नाम सँभारि।
माया के भ्रम कहाँ भूल्यो, जाहुगे कर झारि ॥ टेक ॥
देखि धौं इहाँ कौन तेरो, सगा सुत नहिं नारि।
तोर उतंग सब दूरि करिहैं, देहिंगे तन जारि ॥
प्रान गये कहो कौन तेरा, देखि सोच बिचारि।
बहुरि येहि कलि काल नाहीं, जीति भावै हारि ॥
यहु माया सब थोथरी रे, भगति दिस प्रतिहारि।
कहरैदास सत बचन गुरु के, सो जिवते न बिसारि ॥

प्रेम

साँची प्रीति हम तुम सग जोड़ी, तुम सँग जोड़ि अवर सँग तोड़ी।
जो तुम बादर तो हम मोरा, जो तुम चद हम भये चकोरा ॥
जो तुम दीवा तो हम बाती, जो तुम तीरथ तो हम जात्री।
जहाँ जाउँ तहँ तुम्हरी सेवा, तुमसा ठाकुर और न देवा ॥
तुम्हरे भजन कटै भय फाँसा, भक्ति हेतु गावै रैदासा।

देहु कलाली एक पियाला, ऐसा अवधू है मतवाला ॥ टेक ॥
हे रे कलली तै क्या कीया, सिरका साते प्याला दिया ॥

कहै कलाली प्याला देऊँ, पीवन हारे का सिर लेऊँ ॥
चंद सूर दोउ सनमुख होई, पीवै प्याला मरै न कोई ॥
सहज सुन्न में भाठी सरवै, पीवैं रैदास गुरुमुख दरवै ॥

अब कैसे छुटै नाम रट लागी ॥ टेक ॥
प्रभु जी तुम चंदन हम पानी ।
जाकी अँग अँग बास समानी ॥
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा
जैसे चितवत चद चकोरा ॥
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती ।
जाकी जोति बरै दिन राती ॥
प्रभु जी तुम मोती हम धागा ।
जैसे सोनहिं मिलत सुहागा ॥
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा ।
ऐसी भक्ति करै रैदासा ॥

जो तुम तोरौ राम मै नहिं तोरूँ ।
तुम सों तोरि कवन सों जोरूँ ॥ टेक ॥
तीरथ बरत न करूं अँदेसा ।
तुम्हरे चरन कमल क भरोसा ॥
जहँ जहँ जाऊँ तुम्हरी पूजा ।
तुम सा देव और नहिं दूजा ॥
मै अपनो मन हरि सों जोर्यों ।
हरि सों जोरि सबन से तोर्यों ॥
सब ही पहर तुम्हारी आसा ।
मन क्रम बचन कहै रैदासा ॥

विनय

नर हरि चचल है मति मेरी, कैसे भगति करूँ मैं तेरी ॥टेक॥
तूं मोहिं देखै हौं तोहि देखूँ, प्रीति परस्पर होई ॥
तूँ मोहिं देखै तोहि न देखूँ, यह मति सब बुधि खोई ॥
सब घट अंतर रमसि निरंतर, मैं देखन नहिं जाना ॥
गुन सब तोर मोर सब अवगुन, कृत उपकार न माना ॥
मैं तैं तोरि मोरि असमझि सों, कैसे करि निस्तारा ॥
कह रैदास कृष्ण करुनामय, जै जै जगत अधारा ॥

रामा हो जग जीवन मोरा।
तूँ न बिसारी मैं जन तोरा ॥टेक॥
सकट सोच पोच दिन राती।
करम कठिन मोरि जाति कुजाती ॥
हरहु बिपति भावै करहु सो भाव।
चरन न छाँड़ौ जाव सो जाव ॥
कह रैदास कछु देहु अलबन।
बेगि मिलौ जनि करौ बिलबन ॥

उपदेश

परिचै राम रमै जो कोई, या रस पर से दुबिधि न होई ॥ टेक ॥
जे दीसे ते सकल बिनास, अनदीठे नाहीं बिसवास।
बरन कहत कहैं जे राम, सो भगता केवल निःकाम ॥
फल कारन फूलै बनराई, उपजै फल तब पुहुप बिलाई।
ज्ञानहिं कारन करम कराई, उपजै ज्ञान तो करम नसाई ॥
बट न बीच जैसा आकार, पसर्यो तीन लोक पासार।
जहा न उपजा तहाँ बिलाइ, सहज सुन्नि में रह्यो लुकाइ ॥
जे मन बिंदै सोई बिंद, अमा समय ज्यों दीसै चद।
जल में जैसे तूबा तिरै, परिचै पिंड जीव नहिं मरै ॥
सो मन कौन जो मन को खाइ, बिन छोर तिरलोक समाइ।
मन की महिमा सब कोइ कहै, पडित सो जो अनतै रहै ॥
कह रैदास यह परम बैराग, राम नाम किन जपहु सभाग।
घृत कारन दधि मथै सयान, जीवन मुक्ति सदा निरबान ॥

———

मलूक दास

बाबा मलूक दास जी का जन्म लाला सुंदर लाल खत्री के यहाँ वैशाख कृष्ण ५ सं० १६३१ में कड़ा जिला इलाहाबाद मे हुआ था। इनके सबंध की जो कथाएँ प्रसिद्ध हैं इन मे सब से मार्के की बात यह है कि इन को परमात्मा के साक्षात् दर्शन हुए थे। इनकी मृत्यु १०८ वर्ष की अवस्था में हुई थी। इनको गद्दियाँ कड़ा, जयपुर, गुजरात, मुलतान, पटना, नैपाल और काबुल तक में स्थापित हैं। इनके संबंध की सब बातों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि यह अपने समय मे बड़े ख्यातनामा संत रहे होंगे। यह औरंगजेब के समय में विद्यमान थे और इनके किए हुए बहुत से लोकोत्तर कार्य भी प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि एक बार इन्होंने एक डूबते हुए शाही जहाज को पानी के ऊपर उठा कर बचा लिया था और रुपयों का तोड़ा गंगा जी में तैरा कर कड़े से इलाहाबाद भेजा था। यह संसार के सब काम छोड़ कर हरिभजन में मग्न रहना ही एक मात्र कर्त्तव्य समझते थे और अपने शिष्यों आदि को भी यही उपदेश देते थे। निम्नलिखित दोहा जिसे आलसी लोग हमेशा जबान पर रखते हैं, इन्हीं का है—

अजगर करै न चाकरी, पछी करै न काम।
दास मलूका कहि गए, सब के दाता राम॥

इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—रत्नखान और ज्ञानबोध। ये निर्गुण मार्ग का उपदेश देते थे और हिंदू तथा मुसलमान सभी को समान रूप से उपदेश देते थे। कदाचित् इसी कारण इनकी भाषा में अरबी फ़ारसी आदि के शब्द काफी बड़ी संख्या मे मिलते हैं। इनकी भाषा यों तो पूरबी हिंदी है पर बोल चाल के ढंग की खड़ी बोली का पुस्तक भी पर्याप्त है। कहीं कहीं साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की रचना भी देखने में आ जाती है। इनकी सर्वोत्तम कविताएं आत्मबोध, वैराग्य, तथा प्रेम पद हैं।

बाबा मलूकदास

तेरा मैं दीदार दिवाना।
घड़ी घड़ी तुझे देखा चाहूँ, सुन साहिब रहिमाना॥
हुवा अलमस्त खबर नहिँ तन की, पीया प्रेम पियाला।
ठाढ़ होउँ तो गिरि गिरि परता, तेरे रँग मतवाला॥
खड़ा रहूँ दरबार तुम्हारे, ज्यों घर का बंदाजादा।
नेकी की कुलाह सिर दीये, गले पैरहन साजा॥
तौजी और निमाज न जानूँ. ना जानूँ धरि रोजा।
बाँग जिकिर तबही से बिसरी, जब से यह दिल खोजा॥
कहैं मलूक अब कजा न करिहौं, दिलही सों दिल लाया।
मक्का हज्ज हिये मे देखा, पुरा मुरसिद पाया॥

दर्द दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लै रहे, ऐसे मन धीरा॥
प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमते, ज्यों माता हाथी॥
उनकी नजर न आवते, कोइ राजा रंक।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते हैं निहसंक॥
साहिब मिल साहिब भये, कछु रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गये, जहँ पवन न जाई॥

विनय

अब तेरी सरन आयो राम।
जबै सुनिया साध के मुख, पतित पावन नाम॥
यही जान पुकार कीन्ही, अति सतायो काम।
विषय सेती भयो आजिज, कह मलूक गुलाम॥

दीन दयाल सुने जब ते तब ते, मन में कछु ऐसी बसी है।
तेरो कहाय के जाऊँ कहाँ, तुम्हरे हित की पट खैंचि कसी है॥
तेरो ही आसरो एक मलूक, नहीं प्रभु सों कोउ दूजो जसी है।
ए हो मुरार पुकार कहौ अब, मेरी हँसी नहिँ तेरी हँसी है॥

दीन-बंधु दीनानाथ, मेरी तन हरिये ।।टेक।।
भाई नाहिँ बंधु नाहिँ, कुटुम परिवार नाहिँ ।
ऐसा कोई मित्र नाहिँ, जाके ढिग जाइये ।।
सोने की सलैया नाहिँ, रूपे का रुपैया नाहिँ ।
कौड़ी पैसा गाठि नाहिँ, जासे कछु लीजिये ।।
खेती नाहिँ बारी नाहिँ, बनिज ब्यौपार नाहिँ ।
ऐसा कोई साहु नाहिँ, जा सों कछु माँगिये ।।
कहत मलूक दास, छोड़ दे पराई आस ।
राम धनी पाइके, अब का की सरन जाइये ।।

उपदेश

ना वह रीझै जप तप कीन्हे, ना आतम को जारे ।
ना वह रीझै धोती नेती, ना काया के पखारे ।।
दाया करै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी ।
अपना सा दुख सब का जानै, ताहि मिलै अबिनासी ।।
सहै कुसबद बाद हू त्यागै, छाड़ै गर्ब गुमाना ।
यही रीझ मेरे निरकार की कहत मलूक दिवाना ।।

माया

हम से जनि लागै तू माया ।
थोरे से फिर बहुत होयगी, सुनि पैहैं रघुराया ।।
अपने में है साहिब हमरा, अजहूँ चेतु दिवानी ।
काहू जन के बस परि जैहो, भरत मरहुगी पानी ।।
तर ह्वै चितै लाज करु जन की, डारु हाँथ की फाँसी ।
जन तें तेरो जोर न लहि है, रच्छपाल अबिनासी ।।
कहै मलूका चुप करु ठगनी, औगुन राखु दुराई ।
जो जन उबरै राम नाम कहि, तातें कछु न बसाई ।।

मिश्रित

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम ।
दास मलूका यों कहै, सब के दाता राम ।।
जहाँ जहाँ दुख पाइया, गुरु को थापा सोय ।
जबहीं सिर टक्कर लगै, तब हरि सुमिरन होय ।।
आदर मन महत्तव सत, बालापन को नेह ।

ये चारो तब ही गये, जबहिँ कहा कछु देह ॥
प्रभुता ही को सब मरै, प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होय ॥
मानष बैठे चुप करे, कदर न जानै कोय।
जबहीं मुख खोलै कली, प्रगट बास तब होय ॥
सब कलियन में बास है, बिना बास नहिँ कोय।
अति सुचित में पाइये, जो कोई फूली होय ॥

माँस अहार

पीर सभन की एक सी, मूरख जानत नाहिँ।
काँटा चूमे पीर है, गला काट कोउ खाय ॥
कुँजर चींटी पसू नर, सब में साहिब एक।
काटै गला खुदाय का, करै सूरमा लेख ॥
सब कोउ साहिब बंदते, हिन्दू मुसलमान।
साहिब तिनको बदता, जिस का ठौर इमान ॥

मूर्तिपूजा, तीर्थ

आतम राम न चीन्ह ही, पूजत फिरै पषान।
कैसेहु मुक्ति न होइगी, कोटिक सुनो पुरान ॥
किरतिम देव न पूजिए, ठेस लगे फुटि जाय।
कहै मलूक सुभ आतमा, चारो जुग ठहराय ॥
देवल पूजै कि देवता, की पूजै पाहाड़।
पूजन को जाँता भला, जो पीस खाय संसार ॥
हम जानत तीरथ बड़े, तीरथ हरि की आस।
जिनके हिरदे हरि बसै, कोटि तिरथ तिन पास ॥
संध्या तर्पन सब तजा, तीरथ कबहुँ न जाउँ।
हरि हीरा हिरदे बसै, ताही भीतर न्हाउँ ॥
मक्का मदीना द्वारिका, बद्री और केदार।
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक बिचार ॥
राम राय घट में बसै, ढूँढत फिरैं उजाड़।
कोइ कासी कोई प्राग में, बहुत फिरैं झख मार ॥

मन

कोई जीति सकै नहीं, यह मन जैसे देव।
याके जीते जीत है, अब मैं पायो भेव ॥

तै मत जानै मन मुवा, तन करि डारा खेह।
ता का क्या इतबार है, जिन मारे सकल बिदेह॥

गुरुदेव

जीती बाजी गुर प्रताप तें, माया मोह निवार।
कह मलूक गुरु कृपा ते, उतरा भवजल पार॥
सुखद पंथ गुरुदेव यह, दीन्हो मोहिँ बताय।
ऐसो ऊपट पाय अब, जग मग चलै बलाय॥
भ्रम भागा गुरु बचन सुनि, मोह रहा नहि लेस।
तब माया छल हित किया, महा मोहनी भेस॥
ताको आवत देखि कै, कही बात समुझाय।
अब मैं आया गुरु सरन, तेरी कछु न बसाय॥
मलुका सोई पीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानही, सो काफिर बे पीर॥
बहुतक पीर कहावते, बहुत करत हैं भेस।
यह मन कहर खुदाय का, मारै सो दुरवेस॥
जीवहुँ ते प्यारे अधिक, लागौ मोहीं राम।
बिन हरि नाम नहीं मुझे, और किसी से काम॥
कह मलूक हम जबहि ते, लीन्ही हरि की ओट।
सोवत हैं सुख नींद भरि, डारि भरम की पोट॥
राम नाथ एकै रती, पाप के कोटि पहाड़।
ऐसी महिमा नाम की, जारि करै सब छार॥
धर्महि का सौदा भला, दाया जग ब्योहार।
राम नाम की हाट लै, बैठा खोल किवार॥
साहिब मेरा सिर खड़ा, पलक पलक सुधि लेइ।
जबहीं गुरु किरपा करी, तबहि राम कछु देइ॥
मोदी सब संसार है, साहिब राजा राम।
जापर चिट्ठी उतरै, सोई खरचै दाम॥

प्रेम

प्रेम नेम जिन ना कियो, जीतो नाहीं मैन।
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन॥
कठिन पियाला प्रेम का, पियै जो हरि के हाथ।
चारो जुग माता रहै, उतरै जिय के साथ॥

बिना अमल माता रहै, बिन लस्कर बलवत।
बिना बिलायत साहिबी, अत माँहि बेअत॥
रात न आवै नींदड़ी, थरथर काँपे जीव।
ना जनूँ क्या करैगा, जालिम मेरा पीव॥
मलूक सु माता सुदरी, जहाँ भक्त औतार।
और सकल बाँझै भईं, जन मे खर कतवार॥
सोई पूत सपूत है, (जो) भक्ति करै चित लाय।
जरा मरन तें छूटि परै, अजर अमर ह्वै जाय॥
सब बाजे हिरदे बजै, प्रेम पखावज तार।
मंदिर ढूंढ़त को फिरै, मिल्यो बजावनहार॥
करै पखावज प्रेम का, हृदे बजावै तार।
मनै नचावै मगन ह्वै, तिस का मता अपार॥
जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि न सुनाव।
अंतरजामी जानि है, अतर गत का भाव॥

दया

दुखिया जनि कोई दूखवै, दुखए अति दुख होय।
दुखिया रोई पुकारि है, सब गुड़ माटी होय॥
हरी डारि ना तोड़िये, लागै छूरा बान।
दास मलूका यों कहै, अपना सा जिव जान॥
जे दुखिया संसार में, खोवो तिन का दुक्ख।
दलिद्दर सौंप मलूका को, लोगन दीजै सुक्ख॥
दया धर्म हिरदे बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन॥
सब पानी की चूपरी, एक दया जग सार।
जिन पर आतम चीन्हिया, तेही उतरे पार॥

साधू

जहाँ जहाँ बच्छा फिरै, तहाँ तहाँ फिरै गाय।
कहै मलूक जँह सत जन, तहाँ रमैया जाय॥
भेष फकीरी जे करै, मन नहि आवै हाथ।
दिल फकीर जे हो रहै, साहिब तिनके साथ॥

चितावनी

गर्ब भुलाने देह के, रचि रचि बाँधे पाग।
सो देही नित देखि के, चोंच सँवारे काग॥

उतरे आइ सराय में, जाना है बड़ कोह।
अटका आकिल काम बस, ली भठियारी मोह॥
जेते सुख संसार के, इकठे किये बटोरि।
कन थोरे काँकर घने, देखा फटक पछोरि॥
इस जीने का गर्व क्या, कहाँ देँह की प्रीति।
बात कहत ढह जात है, बारु की सी भीत॥
मलूक कोटा झाँझरा, भीत परी भहराय।
ऐसा कोई ना मिला, (जो) फेर उठावैं आय॥
देही होय न आपनी, समुझि परी है मोहिँ।
अबहीं ते तजि राख लूँ, आखिर तजि है तोहिँ॥

बिनय

नमो निरंजन निरकार, अविगत पुरुप अलेख।
जिन सतन के हित धरयो, जुग जुग नाना भेष॥
हरि भक्तन के काज हित, जुग जुग करी सहाय।
सो सिव सेस न कहि सकैं, कहा कहौं मैं गाय॥
राम राय असरन सरन, मोहि आपन करि लेहु।
संतन सँग सेवा करौं, भक्ति मजूरी देहु॥
भक्ति मजूरी दीजिये, की जै भवजल पार।
बोरत है माया मुझे, गहे बाँह बरियार॥

सुमिरन

सुमिरन ऐसा कीजिये, दूजा लखै न कोय।
ओंठ न फरकत देखिये, प्रेम राखिये गोय॥
माला जपों न कर जपो, जिभ्या कहौं न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै, मै पाया बिसराम॥

दयाबाई

दया बाई महात्मा चरनदास जी की शिष्या थीं। प्रसिद्ध संत कवयित्री सहजो बाई भी इन्हीं की शिष्या और दया बाई का गुरुबहिन थीं।

दया बाई अपने गुरु की सजातीय थी अर्थात् धूसर कुल मे ही इनका भी जन्म हुआ था। कुछ विद्वानों का तो कथन है कि चरनदास जी के ही वंश मे उनका जन्म हुआ था। इन का जन्म सं० १७५० और १७७५ के बीच माना जाता है। इन के प्रथम ग्रंथ दयाबोध का रचनाकाल सं० १८१८ है।

इन का मृत्युकाल निश्चित नही है। 'विनयमालिका' नामक एक और ग्रंथ दयाबाई का रचा हुआ माना जाता है परतु कुछ लोगो को इस के दयाबाई द्वारा लिखित होने मे संदेह है। इस संदेह का कारण यही है कि लेखक या लेखिका ने अपना नाम एक जगह (सुमिरन के अंग, साखी नं० ३) 'दया दास' लिखा है। परतु ग्रंथ की सब बाता पर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि 'दयाबाई' और 'दयादास' एक ही व्यक्ति रहे होंगे। 'दया बोध' और विनयमालिका दोनो की भाषा और लेखनप्रणाली एक ही ढंग की है. दोनो ही ने गुरु के रूप में महात्मा चरनदास जी का गुणगान किया है। और फिर दोनो ही की विचार-धारा और कथनप्रणाली आदि में इतनी समानता है कि दोनो को भिन्न भिन्न लेखको की कृति मानना कठिन है।

दया बाई की कविता बहुत सरल, सुबोध और मधुर है। विचार स्पष्ट और भाव स्वाभाविक हैं। उन मे जटिलता कहीं नही आने पाई है। निम्नलिखित पद्य 'सतबानी-संग्रह' और 'दया बाई की बानी' से लिए गए हैं।

दयाबाई

गुरु बिन ज्ञान ध्यान नहीं होवै ॥
गुरु बिन चौरासी मग जोवै ॥
गुरु बिन राम भक्ति नहीं जागै ।
गुरु बिन असुभ कर्म नहिं त्यागै ॥
गुरु ही दीन दयाल गुसाईं ।
गुरु सरनै जो कोई जाई ॥
पलटैं करैं काग सूँ हंसा ।
मन की मेटत है सब संसा ॥
गुरु है सब देवन के देवा ।
गुरु की कोउ न जानत भेवा ॥
करुना सागर कृपा निधाना ।
गुरु हैं ब्रम्ह रूप भगवाना ॥
दै उपदेस करैं भ्रम नासा ।
दया देत सुख सागर बासा ॥
गुरु की अहि निसि ध्यान जो करिये ।
विधिवत सेवा मे अनुसरिये ॥
तन मन सुँ आज्ञा मे रहिए ।
गुरु अज्ञा बिन कछू न करिये ॥

गरीबदास जी*

चितावनी

सुनिये सत सुजान, गरब नहिँ करना रे ॥
चार दिनों की चिहर बनी है, आखिर तो कूँ मरना रे ॥
तू जीने मेरि ऐसी निभेगी, हरदम लेखा भरना रे ॥

---

* जीवनकाल १७७४-१८३५। जन्म और संतसंग स्थान-मौजा छुड़ानी, ज़िला रोहतक (पंजाब)। जाति और आश्रम-जाट, गृहस्थ। गुरु-कबीर साहब।

बाइस बरस की अवस्था में इन्होंने अपनी सत्रह हज़ार साखी और चौपाई के ग्रंथ की रचना आरंभ की जिसके कुछ चुने हुए अंश संतबानी संग्रह में छपे हैं और उसी से ये पद लिये गये हैं। स्थानाभाव से इनका अधिक परिचय नहीं दिया जा सका।

खायले पीले बिलसले हंसा, जोरि जोरि नहिं धरना रे ॥
दास गरीब सकल में साहिब, नहीं किसी सूँ अड़ना रे ॥

सारगहनी

मन मगन भया जब क्या गावै ॥
ये गुन इद्री दमन करेगा, वस्तु अमोली सो पावै ॥
तिरलोगी की इच्छा छाड़ै. जग में बिचरै निर्दावै ॥
उलटी सुलटी निरति निरतर, बाहर से भीतर लावै ॥
अधर सिंघासन अबिचल आसन, जहँवाँ सूरति ठहरावै ॥
त्रिकुटी महल मे सेज बिछी है, द्वादस अतर छिप जावै ॥
अजर अमर निज मूरत सूरत, ओअं सोह दम ध्यावै ॥
सकल मनोरथ पूरन साहिब, बहुरि नहीं भौजल आवै ॥
गरीबदास सतपुरुष बिदेही, साँचा सतगुरु दरसावै ॥

उपदेश

मग पूछुत हैं परतीत नहीं, नादी बादी झगड़ा ठानै ।
मुगता जगता नहिं राह लहैं, नहिं साध असाध कूँ जानता हैं ॥
देवल जाहीं मसजिद माहिं, साहिब का सिरजा भानत हैं ॥
पडित काजी डोबी बाजी, नहिं नीर खीर कूँ छानत हैं ॥
चेतन का गल काटत हैं, धर पत्थर पाहन मानत हैं ॥
कहै दास गरीब निरास चले, धिरकार जनम नर लानत है ॥

राम सुमिर राम सुमिर, राम सुमिर लै रे ।
जम और जहान जीत, तीन लोक जै रे ॥
इन्द्री अदालत चोर, पकड़ो मन अहिरे ।
अनहद टकोर घोर, सुनै क्यूँ न बहिरे ॥
सुरत निरतनाद बिदं, मन पवना गहि रे ।
उनमुनी अलेल रूप, निराकार लहि रे ॥
धनुप ध्यान मार बान, दुरजन से फहिरे ॥
देखत के सीत कोट, भरम बुर्ज ढहि रे ॥
सोच से प्रीत कीन, झूठा मन महि रे ।
कहत है गरीबदास, कुटिल बचन सहि रे ॥

जाति पाँति भेद खंडन ॥

कैसे हिन्दू तुरक कहाया, सबही एकै द्वारे आया ॥
कैसे ब्राम्हन कैसे सूद्र, एकै हाड़ चाम तन गूद ॥
एकै बिंद एक भग द्वारा, एकै सब घट बोलनहारा ॥
कौम छतीस एकही जाती, ब्रम्ह बीज सब उतपाती ॥
एकै कुल एकै परिवारा, ब्रम्ह बीज का सकल पसारा ॥
ऊँच नीच इस विधि है लोई, कर्म कुकर्म कहावै दोई ॥
गरीबदास जिन नाम पिछाना, ऊँच नीच पद ये परमाना ॥

———

सहजो बाई

सहजो बाई राजपूताना के एक प्रतिष्ठित दूसर कुल में उत्पन्न हुई थीं। प्रसिद्ध दूसर कुलोत्पन्न महात्मा चरनदास जी इनके गुरु और दया बाई इनकी गुरु बहिन थीं। इनके जीवन चरित्र के संबंध में अधिक कुछ ज्ञात नहीं हो सका है। केवल इतना कहा जा सकता है कि ये सं० १८०० में विद्यमान थीं।

सभी संत कवियों की भाँति इनके संबंध के भी कुछ चमत्कार प्रसिद्ध हैं। इनकी रचना से इतना अवश्य स्पष्ट है कि इनकी गुरुभक्ति और हरिभक्ति बड़ी गंभीर और सच्ची थी और इनके भाव बड़े कोमल, मधुर और हृदयग्राही होते थे। इनकी भाषा भी बहुत स्वच्छ और सरल है।

इनका एक मात्र ग्रंथ 'सहज प्रकाश' प्राप्त है। इनके कुछ फुटकर पदों का संग्रह 'सतबानी संग्रह' में भी है और इन्ही दोनों से निम्नलिखित पद्य लिए गए हैं।

सहजो बाई

गुरुदेव

हमारे गुरु पूरन दातार ।
अभय दान दीनन को दीन्हे, किये भवजल पार ॥
जन्म जन्म के बंधन काटे, जन्म को बंध निवार ॥
रंक हुते सो राजा कीन्हे, हरि धन दियौ अपार ॥
देवै ज्ञान भक्ति पुनि देवै, जोग बतावन हार ॥
तन मन बचन सकल सुखदाई, हिरदे बुधि उजियार ॥
सब दुख गंजन पातक भंजन, रंजत ध्यान बिचार ॥
साजन दुर्जन जो चलि आवै, एकहि दृष्टि निहार ॥
आनंद रूप सरूप भई है, लिपत नहीं संसार ॥
चरन दास गुरु सहजो केरे, नमो नमो बारंबार ॥

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ, गुरु के सम हरि कूँ न निहारूँ ॥
हरि ने जन्म दियो जग माहीं, गुरु ने आवागवन छुटाहीं ॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा, गुरु ने लई छुटाय अनाथा ॥
हरि ने कुटंब जाल में गेरी, गुरु ने काटी ममता बेरी ॥
हरि ने रोग भोग उरझायो, गुरु जोगी करि सबै छुटायौ ॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ, गुरु ने आतम रूप लखायौ ॥
हरि ने मोसूँ आप छिपायौ, गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ ॥
फिर हरि बंध मुक्ति गति लाये, गुरु ने सब ही भर्म मिटाये ॥
चरन दास पर तन मन वारूँ, गुरु को न तजूँ हरि कूँ तजि डारूँ ॥

चितावनी (१)

पानी का सा बुलबुला, यह तन ऐसा होय ॥
पीव मिलन की ठानिये, रहिये ना पड़ि सोय ॥
रहिये ना पड़ि सोइ, बहुरि नहिं मनुखा देही ॥
आपन ही कूँ खोजु, मिलै तब राम सनेही ॥
हरि कूँ भूले जो फिरै, सहजो जीवन छार ॥
सुखिया जब ही होयगो, सुमिरैगो करतार ॥

(२)

चौरासी भुगती घना, बहुत सही जममार ॥
भरमि फिरे तिहुँ लोक में, तहू न मानी हार ॥

तहू न मानी हार, मुक्ति की चाह न कीन्ही ॥
हीरा देही पाइ मोल माटी के दीन्हीं ॥
मूरख नर समझै नहीं, समुझाया बहु बार ॥
चरनदास कहैं सहजिया सुमिरै ना करतार ॥

प्रेम

मुकट लटक अटकी मन माहीं ।
निरतत नटवर मदन मनोहर, कुंडल झलक पलक बिथुराई ॥
नाक बुलाक हलत मुक्ताहल, होठ मटक गति भौंह चलाई ॥
ठुमक ठुमक पग धरत धरनि पर, बाँह उठाय करत चतुराई ॥
झुनक झुनक नूपुर झनकारत, ततायेई थेई रीझ रिझाई ॥
चरनदास सहजो हिये अंतर, भवन करौ जित रहौ सदाई ॥

विनय

हम बालक तुम माय हमारी, पल पल मोहिं करो रखवारी ॥
निस दिन गोदी ही में राखो, इत चित बचन चितावन भाखो ॥
बिषै ओर जाने नहिं देवो, ढुरि ढुरि जाउँ तो गहि गहि लेवो ॥
मैं अनजान कछू नहिं जानूँ, बुरी भली को नहिँ पहिचानूँ ॥
जैसी तैसी तुमहीं चीन्हेव, गुरु है ध्यान खिलौना दीन्हेव ॥
तुम्हरी रच्छा ही से जीऊँ, नाम तुम्हारो अमृत पीऊँ ॥
दृष्टि तिहारी ऊपर मेरे, सदा रहूँ मैं सरनै तेरे ॥
मारौ झिड़कौ तौ नहि जाऊँ सरकि सरकि तुमहीं पै आऊँ ॥
चरनदास है सहजो दासी, हो रच्छक पूरन अबिनासी ॥

अब तुम अपनी ओर निहारो ।
हमरे औगुन पै नहिं जावो, तुमहीं अपनी बिरद सम्हारो ॥
जुग जुग साख तुम्हारी ऐसी, वेद पुरानन गाई ॥
पतित उधारन नाम तिहारो, यह सुन के मन दृढ़ता आई ॥
मैं अजान तुम सब कछु जानो, घट घट अंतर जामी ॥
मैं तो चरन तुम्हारे लागी, हौ किरपाल दयालहि स्वामी ॥
हाथ जोरि के अरज करत हौं, अपनाओ गहि बाँहीं ॥
द्वार तिहारे आय परी हौं, पौरुष गुन मो मे कछु नाहीं ॥
चरनदास सहजिया तेरी, दरसन की निधि पाऊँ ॥
लगन लगी और प्रान अड़े हैं, तुमको छोड़ि कहो कित जाऊँ ॥

उपदेश

सो बसत नहिँ बार बार, तैं पाई मानुष देह सार ॥
यह औसर बिरथा न खोव, भक्तिबीज हिये धरती बोव ॥
सत संगत की सींच नीर, सतगुरु जी सों करौ सीर ॥
नीकी बार बिचार देव, परन राखि या कूँ जु सेव ॥
रखवारी करु हेत देत, जब तेरी होवै जैत जैत ॥
खोट कपट पछी उड़ाव, मोह प्यास सबही जलाव ॥
संभलै बाडी नऊ अग, प्रेम फूल फूलै रंग रंग ॥
पुहुप गूँथ माला बनाव, आदि पुरुख कूँ जा चढ़ाव ॥
तौ सहजो बाई चरनदास, तेरे मन की पुर व सकल आस ॥

दरिया साहब

(बिहार वाले)

दरिया साहब का जन्म मुक़ाम धरकंधा जिला आरा में हुआ था इनके पिता का नाम पीरन शाह था जो कि उज्जैन के एक बड़े प्रतिष्ठित खत्री थे। पर इनकी माँ दर्जिन थी। इनके पूर्वपुरुषों के अधिकार में बक्सर के पास जगदीश पुर मे एक रियासत भी थी।

इनकी जन्मतिथि अनिश्चित है पर मरणतिथि इनके मुख्य ग्रंथ 'दरिया सागर' के अंत मे सं० १८३७ भादो वदी चौथ दी हुई है। दरियापंथियो के अनुसार ये १०६ वर्ष तक जीवित रहे, और इस हिसाब से इनका जन्म सं० १७३१ में माना जाना चाहिए।

ये कबीर के अवतार माने जाते हैं। कहते है शैशव काल मे ही साक्षात् भगवान इनके सम्मुख प्रगट हुए थे और इनका नाम दरिया रक्खा था। विवाहित होने पर भी १५ वर्ष की अवस्था मे इन्होंने वैराग्य ले लिया था और स्त्रीसंग से सदा विरत रहे।

इनके अनेक ग्रन्थ प्रचलित हैं जिनमे मुख्य 'दरियासागर' और 'ज्ञानबोध' है। इनके विचार कबीर के विचारो से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। वेद पुराण, जाति पाँति, मदिर मस्जिद मूर्ति पूजा नमाज़ तथा तीर्थ, व्रत, रोज़ा आदि को ये भी ढोंग और पाखंड समझते थे और इनकी कटु आलोचना किया करते थे। इन्होंने अपना एक अलग पंथ चलाया था जिसके कुछ रस्म रवाज़ मुसलमानों से मिलते जुलते हैं।

प्रस्तुत संग्रह के पद्य 'संतबानी संग्रह' और 'दरिया सागर' की सहायता से लिए गए हैं।

दरिया साहब (मारवाड़ वाले)

दरिया साहब, मारवाड़ वाले का जन्म मारवाड़ प्रांत के जैतारन नामक गाँव में एक मुसलमान के कुल में स० १७३३ में और अगहन सुदी पूनों सं० १८१५ को इनका स्वर्गवास हुआ। इनके माता पिता धुनियाँ जाति के मुसलमान थे जैसे कि इनके निम्नलिखित पद से स्पष्ट है—

'जो धुनियाँ तौ भी मैं राम तुम्हारा,
अधम कमीन जाति मति हीना,
तुम तो हौ सिरताज हमारा।

सात वर्ष की अवस्था में ही इनके पिता की मृत्यु हो गई थी और तब से ये मेड़ते मे अपने नाना कमीच के यहाँ रहने लगे थे। उस समय मारवाड़ के राजा बख्तसिंह जी थे जिनको इन्होंने अपना एक शिष्य भेज कर एक असाध्य बीमारी से मुक्त किया था।

इनके गुरु बीकानेर के खियान्सर नामक गाँव के रहने वाले प्रेम जी नाम के साधु थे। कहते हैं इन्हीं दरिया साहब के संबंध में दादू ने सौ वर्ष पहले यह भविष्यवाणी की थी—

देह पड़ताँ दादू कहै सौ बरसाँ इक सत।
रैन नगर में परगटै, तारै जीव अनंत॥

स्मरण रहे बिहार के धरकंधा गाँव वाले दरिया साहब इनसे बिलकुल भिन्न थे।

इनकी बानियों का सग्रह बेलवेडियर प्रेस ने दरिया साहब (मारवाड़ वाले) की बानी नाम से प्रकाशित किया है और प्रस्तुत संग्रह इसी की सहायता से तैयार किया गया है।

———

दरिया साहिब (विहार वाले)

विनय

मैं जानहुँ तुम दीन दयाल ।
तुम सुमिरे नहिँ तपत काल ॥
ज्यों जननी प्रतिपाले सूत ।
गर्भ वास जिन दियो अकूत ॥
जठर अगिनि ते लियो है काढ़ि ।
ऐसी बाकी ठवरि गाढ़ि ॥
गाढ़े जो जन सुमिरन कीन्ह ।
परघट जग में तेहि गति दीन्ह ॥
गरब्री मारेउ गैब बान ।
संत को राखेउ जीव जान ॥
जल में कुमुदिन इन्दु अकास ।
प्रेम सदा गुरु चरन पास ॥
जैसे पपिहा जल से नेह ।
बुन्द एक बिस्वास तेह ॥
स्वर्ग पताल मृत मडल तीनि ।
तुम ऐसो साहिब मैं अधीन ॥
जानि आयो तुम चरन पास ।
निज मुख बोलेउ कहेउ उदास ॥
सत पुरुष बचन नहि होहिं आन ।
बलु पूरब से पच्छिम उगहि भान ॥
कह दरिया तुम हमहि एक ।
ज्यों हारिल की लकड़ी टेक ॥

अब की बार बकस मोरे साहिब ।
तुम लायक सब जोग हे ॥
गुनह बकसि हौ सब भ्रम नसि हौ ।
रखि हौ आपन पास हे ॥
अछै बिरछि तरि लै बैठे हो ।
तहवाँ धूप न छाँह हे ॥
चाँद न सुरज दिवस नहिं तहवाँ ।

नहिं निसु होत बिहान हे ॥
अमृत फल मुख चाखन दैहौ ।
सेज सुगंधि सुहाय हे ॥
जुग जुग अचल अमर पद दैहै ।
इतनी अरज हमार हे ॥
भौसागर दुख दारुन मिटि है ।
छुटि जैहै कुल परिवार हे ॥
कह दरिया यह मंगल मूला ।
अनूप फुलै जहाँ फूल हे ॥

बिरह

अमर पति प्रीतम काहे न आवो ।
तुम सतवर्ग हौ सदा सुहावन, किमि नहिं उर गहि लावों ॥
बरषा बिबिधि प्रकार पवन अति, गरजि घुमरि घहरावो ।
बुन्द अखंडित मंडित महि पर, छटा चमकि चहुँ जावो ॥
झींगुर झनकि झनकि झनकारहिं, बान बिरह उर लावो ।
दादुर मोर सोर सघन बन, पिय बिनु कछु न सुहावो ॥
सरिता उमड़ि घुमड़ि जल छावो, लघु दिर्घ सब बढ़ियावो ।
थाके पंथ पथिक नहिं आवत, नैनन में झरि लावो ॥
केहि पूछौं पछितावत दिल में, जो पर होइ उड़ि धावों ।
जो पिय मिलैं तो मिलौ प्रेम भरि, अमि भाजन भरि लावों ॥
है बिस्वास आस दिल मेरे, फिरि दृग दर्सन पावों ।
कह दरिया धन भाग सुहागिनि, चरन कँवल लपटावो ॥

अनहद

होरी सद संत समाज संतन गाइया ।
बाजा उमंग झाल झनकारा, अनहद धुन घबराइया ॥
झरि झरि परत सुरंग रंग तहँ, कौतुक नभ में छाइया ॥
राग रबाब अघोर तान तहँ, झिन झिन जंतर लाइया ।
छवो राग छत्तीस रागिनी, गधर्व सुर सब गाइया ॥
पाँच पचीस भवन में नाचहिं, भर्म अबीर उड़ाइया ॥
कह दरिया चित चदन चर्चित, सुंदर सुभग सुहाइया ॥

प्रेम

तुम मेरो साईं मैं तेरो दास, चरन कँवल चित मेरो बास ।
पल पल सुमिरौं नाम सुबास, जीवन जग में देखो दास ॥

जल में कुमुदिन चंद अकास, छाइ रहा छबि पुहुप बिलास ।
उन मुनि गगन भया परगास, कह दरिया मेटा जम त्रास ॥

भेद

मानु सबद जो कर बिबेके ।
अगम पुरुष जहँ रूप न रेख ॥
अठदल कँवल सुरति लौ ।
अजपा जापि के मन समुझाय ॥
भँवर गुफा में उलटि जाय ।
जगमग जोति रहे छबि छाय ॥
अंक नाल गहि खैंच सूत ।
चमके बिजुली मोती बहुत ॥
सेत घटा चहुँ ओर घनघोर ।
अजरा जहवाँ होय अँजोर ॥
अमिय कँवल निज करो बिचार ।
चुवत बुंद जहँ अमृत धार ॥
छव चक्र खोजि करो बिवास ।
मूल चक्र जहँ जिव को बास ॥
काया खोजि जोगी भुलान ।
काया बाहर पद निरबान ॥
सतगुर सबद जो करै खोज ।
कहैं दरिया तब पूरन जोग ॥

उपदेश (१)

भीतरि मैलि चहल कै लागी, ऊपर तन का धोवै है ॥
अवगति मुरति महल के भीतर, वा का पंथ न जोवै है ॥
जुगुति बिना कोई भेद न पावै, साधु संगति का गोवै है ॥
कह दरिया कुटने बे गीदी, सीस पटकि का रोवै है ॥

(२)

पेड़ को पकरु तब डारि पालौ मिलै ।
डारि गहि पकर नहिं पेड़ यारा ॥
देस दिब दृष्टि असमान में चंद्र है ।
चंद्र की जोति अनगिनित तारा ॥
आदि औ अंत सब मध्य है मूल में ।

मूल में फूल धौं केति डारा ॥
नाम निर्गुन निर्लेप निर्मन वरै।
एक से अनंत सब जगत सारा ॥
पढ़ि बेद कितेब बिस्तार बक्ता कथै।
हारि बेचून वह नूर न्यारा ॥
निर्पेच निर्बान निःकर्म निःमर्म वह।
एक सर्बज्ञ सत नाम प्यारा ॥
तजु मान मनी करू काम के काबु यह।
खोजु सतगुरू भरपूर सूरा ॥
असमान कै बुंद गरकाब हूआ।
दरियाब की लहरि कहि बुहुरि मूरा ॥

मिश्रित

सत सुकृत दूनों खंभा हो, सुखमनि लागलि डोरि।
उरध उरध दूनों मचवा हो, इगला पिंगला झकझोरि ॥
कौन सखी सुख बिलसै हो, कौन सखी दुख साथ।
कौन सखिया सुहागिनी हो, कौन कमल गहि हाथ ॥
सत सनेह सुख बिलसै हो, कपट करम दुख साथ।
पिया मुख सखिया सुहागिनि हो, राधा कमल गहि हाथ ॥
कौन झुलावै कौन झूलहिं हो, कौन बैठलि खाट।
कौन पुरुष नहि झूलहिं हो, कौन रोकै बाट ॥
मन रे झुलावै जिव झूलहि हो, सक्ति बैठलि खाट।
सत्त पुरुष नहि झूलहिं हो, कुमति रोकै बाट ॥
सुर नर मुनि सब झूलहिं हो, झूलहिं तीनि देव।
गनपति फनपति झूलहि हो, जोगि जती सुकदेव ॥
जीव जतु सब झूलहि हो, झूलहिं आदि गनेस।
कल्प कोटि लै झूलहि हो कोइ कहै न सँदेस ॥
सत्त सब्द जिन पावल हो, भयो निर्मल दास।
कहै दरिया दर देखिय हो, जाय पुरुष के पास ॥

गुलाल साहब

गुलाल साहब जगजीवन साहब के समकालीन और गुरुभाई थे और इनका जीवन काल सं० १७५० से १८०० तक माना जाता है। यह जाति के खत्री और घर के गृहस्थ जमीदार थे। ये गाजीपुर जिले के भरकुड़ा नामक स्थान में रहते थे और वहीं इन्हों ने भीखा साहब को दीक्षा दी थी। इन के (गुलाल साहब) के गुरु प्रसिद्ध संत बुल्ला साहब थे जिन का असली नाम बुलाकी राम था।

इन का कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं मिला है केवल इनके कुछ स्फुट पद्यों का संपादन बेलवेडियर प्रेस से 'गुलाल साहब की बानी' नाम से हुआ है और निम्न लिखित पद्य उसी से संगृहीत हुए हैं। यारी साहब की शिष्यपरंपरा में गुलाल साहब ही सब से अच्छे कवि कहे जा सकते हैं। यों तो क्रमशः इस शिष्यपरंपरा में ज्ञान की महिमा कम तथा भक्ति और प्रेम की महिमा बढ़ती हुई प्रतीत होती ही है पर गुलाल साहब की कविता में तो प्रेमावेश बहुत ही बढ़ गया है और इसी से इनकी कविता अधिक सरस हो गई है। कुछ आत्मानुभव के पद भी इनकी रचना में बड़े सुंदर बन पड़े हैं।

गुलाल साहिब

नाम

नाम रस अमरा है भाई, कोउ साध सगति ते पाई ।।
बिन घोटे बिन छाने पीवै, कौड़ी दाम न लाई ।।
रग रँगीले चढ़त रसीले, कबहीं उतरि न जाई ।।
छके छाकये पगे पगाये, झूमि झूमि रस लाई ।।
बिमल बिमल बानी गुन बोलौ, अनुभव अमल चलाई ।।
जहँ जहँ जावै थिर नहिं आवै, खोल अमल लै धाई ।।
जल पत्थल पूजन करि मानत, फोकट गाढ बनाई ।।
गुरु परताप कृपा ते पावै, घट भरि प्याल फिराई ।।
कहै गुलाल मगन है बैठे, भगि है हमरि बलाई ।।

अनहद शब्द

रे मन नामहिं सुमिरन करै ।
अजपा जाप हृदय लै लावो, पाँच पचीसा तीन मरै ।।
अष्ट कमल मे जीव बसतु है, द्वादश में गुरु दरस करै ।।
सोरह ऊपर बानि उठतु है, दुइ दल अमी झरै ।।
गंगा जमुना मिली सरसुती, पदुम झलक तहँ करै ।।
पछिम दिसा है गगन मँडल में, काल बली सों लरै ।।
जम जीतो परम पद पायो, जोती जग मग बरै ।।
कह गुलाल सोइ पूरन साहिब, हर दम मुक्ति फरै ।।

प्रेम

जो पै कोई प्रेम को गाहक होई ।
त्याग करै जो मन की कामना, सीस दान दै सोई ।।
और अमल की दर जो छोड़ै, आपु अपन गति जोई ।।
हर दम हाजिर प्रेम पियाला, पुलकि पुलकि रस लेई ।।
जीव पीव महँ पीव जीव महँ, बानी बोलत सोई ।।
सोई सभन महँ हम सबहन महँ, बूझत बिरला कोई ।।
वा की गती कहा कोई जानै, जो जिय साचा होई ।।
कह गुलाल वे नाम समाने, मत भूले नर लोई ।।

अबिगत जागल हो सजनी ।
खोजत खोजत सतगुरु पावल ॥
ताहि चरनवाँ चितवा लागल हो सजनी ॥
साँझि समय उठि दीपक बारल ।
कटल करमवा मनुवाँ पागल हो सजनी ॥
चललि उबटि बाट छुटलि सकल घाट ।
गरज गगनवा अनहद बाजल हो सजनी ॥
गइली अनँदपुर भइली अगम सूर ।
जितली मैदनवाँ नेजवा गाड़ल हो सजनी ॥
कहै गुलाल हम प्रभुजी पावल,
फरल लिलरवा पपवा भागल हो सजनी ॥

आनँद बरखत बुंद सुहावन ।
उमँगि उमँगि सतगुरु वर राजित, समय सुहावन भावन ॥
चहूँ ओर घनघोर घटा आई, सुन्न भवन मन भावन ।
तिलक तत्त बेदी पर झलकत, जगमग जोति जगावन ॥
गुरु के चरन मन मगन भयो जब, बिमल बिमल गुन गावन ।
कहै गुलाल प्रभु कृपा जाहि पर, हर दम भादों सावन ॥

बिनय

प्रभु जी बरषा प्रेम निहारो ।
ऊठत बैठत छिन नहिं बीतत, याही रीति तुम्हारो ॥
समय होय असमय होवै, भरत न लागत बारो ।
जैसे प्रीति किसान खेत सों, तैसो है जन प्यारो ॥
भक्त बच्छल है बान तिहारो, गुन औगुन न बिचारो ।
जहँ जँह जावँ नाम गुन गावत, जम को सोच निवारो ॥
सोवत जागत सरन धरम यह, पुलकित मनहिं बिचारो ।
कह गुलाल तुम ऐसो साहिब, देखत न्यारी न्यारो ॥

भेद

मन मधुकर खेलत बसंत ।
बाजत अनहद गति अनंत ॥
बिगसत कमल भयो गुँजार ।
जोति जगामग करि पसार ॥

निरखि निरखि जिय भयो अनद।
बाझल मन तब परल फद॥
लहरि लहरि बहै जोति धार।
चरन कमल लन मिलो हमार॥
आवै न जाइ मरै नहिं जीव।
पुलकि पुलकि रस अमिय पीव॥
अगम अगोचर अलख नाथ।
देखत नैनन भयो सनाथ॥
कह गुलाल मोरी पुजलि आस।
जम जीत्यो भयो जोति बास॥

उलटि देखो, घट में जोति पमार।
बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवै, बिगसि कमल कचनार॥
पैठि पताल सूर ससि बाधौ, साधौ त्रिकुटी द्वार।
गंग जमुन के वार पार बिच, भरतु है अमिय करार॥
इँगला पिंगला सुखमन सोधो, बहत सिखर मुख धार।
सुरति निरति ले बैठु गगन पर, सहज उठै झनकार॥
सोहं डोरी मूल गहि बाधो, मानिक बरत लिलार।
कह गुलाल सतगुरु बर पायो, भरो है मुक्ति भँडार॥

उपदेश

अवधू निर्मल ज्ञान बिचारो।
ब्रह्म सरूप अखडित पूरन, चौथे पद सो न्यारो॥
ना वह उपजै ना वह बिनसै, ना भरमै चौरासी॥
है सतगुरु सतपुरुष अकेला, अजर अमर अविनासी॥
ना वाके बाप नहीं वाके माता, वाके मोह न माया॥
ना वाके जोग भोग वाके नाहीं, ना कहुँ जाय न आया॥
अद्भुत रूप अपार बिराजै, सदा रहै भरपूरा॥
कहै गुलाल सोई जन जानै, जाहि मिलै गुरु सूरा॥

हरि नाम न लेहु गँवारा हो।
काम क्रोध मे रटत फिरत है, कबहुँ न आप सँभारा हो॥
आपु अपन कै सुधि नहिं जानहु, बहुत करत बिस्तारा हो॥
नेम धरम ब्रत तिरथ करतु है, चौरासी बहु धारा हो॥
तसकर चोर बसहिं घट भीतर, मूसहि सहन भँडारा हो॥

सन्यासी बैरागी तपसी, मनुवा देत पछारा हो ॥
धधा धोख रहत लपटाने, मोह रतो संसारा हो ॥
कहै गुलाल सतगुरु बलिहारी, जग तें भयो नियारा हो ॥

मन तूँ हरि गुन काहे न गावै ।
तातें कोटिन जनम गँवावै ॥
घर में अमृत छोड़ि कै, फिरि फिरि मदिरा पावै ।
छोड़हु कुमति मूढ़ अब मानहु, बहुरि न ऐसो दावै ॥
पाँच पचीस नगर के बासी, तिनहिं लिये सँग धावै ।
बिन पर उड़त रहै निसि बासर, ठौर ठिकान न आवै ॥
जोगी जती तपी निर्बानी, कपि ज्यों बाँधि नचावै ।
सन्यासी बैरागी मौनी, थै थै नरक मिलावै ॥
अबकी बार दाव है मेरो, छोड़ों न राम दुहाई ।
जन गुलाल अवधूत फकीरा, राखो जजीर भराई ॥

माया

सतो कठिन अपरबल नीरा ।
सब हीं वरलहिं भोग कियो है, अजहूँ कन्या क्वारी ॥
जननी ह्वै के सब जग पाला, बहु बिधि दूध पियाई ॥
सुंदर रूप सरूप सलोना, जोय होइ जग खाई ॥
मोह जाल सों सबहि बझायो, जहँ तक है तन धारी ॥
कल सरूप प्रगट है नारी, इन कहँ चलहु सँभारी ॥
आन ज्ञान सब ही हरि लीन्हो, काहु न आप सँभारी ॥
कहै गुलाल कोऊ कोउ उबरे, सतगुरु की बलिहारी ॥

मिश्रत

सत्तहि डोलवा सतगुरु नावल तहवाँ मनुवाँ भुलत हमार ।
बिनु डोरी बिनु खंम्मे फौदल, आठ पहर-झनकार ॥
गावहु सखियाँ हिं डोलवा हो, अनुभौ मगलचार ॥
अब नहिँ अवना जवना हो, प्रेम पदारथ भइल निनार ॥
छुटत जगत कर झुलना हो, दास गुलाल मिलो है यार ॥

———

बुल्ला साहब

यारी साहब के दो शिष्य बुल्ला साहब और केशवदास हुए। बुल्ला साहब जाति के कुनबी थे और इनका असली नाम बुलाकी राम था। इनका सत्संग स्थान भरकुड़ा ज़िला ग़ाज़ीपुर था। इनका समय स० १७५०-१८२५ तक बतलाया जाता है। प्रसिद्ध सत गुलाल इन्हीं के शिष्य थे। गुलाल साहब बसहरि जिला ग़ाज़ीपुर के क्षत्रिय जमींदार थे और गृहस्थाश्रम मे रहते हुए ही इन्होंने सतो के सत्सग से पूरा लाभ उठाया था। कहते हैं कि इनके गुरु बुलाकी राम साहब पहले इन्ही के यहाँ हलवाई का काम करते थे, परतु एक दिन जब ये खेत मे गए तो बुलाकीराम को हल छोड़ कर ध्यान में मग्न देखा और क्रोध मे आकर इन्हे एक लात मारी जिससे ये चौक पड़े और इनके हाथ से दही छलक पड़ा। यह आश्चर्यमयी घटना देख कर बड़े आग्रह से गुलाल साहब ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि मै साधुओं को भोजन कराकर दही परस रहा था कि इतने ही मे तुमने लात मारी और मेरे हाथ से दही गिर पड़ा। गुलाल ने जाँच कराई तो यह घटना सच निकली और तभी से यह उनके (बुलाकीराम) के शिष्य हो गए जो कि बाद मे बुल्ले शाह या बुल्ला साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए।

निम्नलिखित पद 'बानी' से सगृहीत हुए हैं।

बुल्ले शाह

चितावनी

माटी खुदी करेंदी यार ।
माटी जोड़ा माटी घोड़ा, माटी का असवार ॥
माटी मटी माटो नूँ मारन लागी, माटी दे हथियार ॥
जिस माटी पर बहुती माटी, तिस माटी हकार ॥
माटी बाग बगीचा माटी, माटी दी गुलजार ॥
माटी माटी नूँ देखन आई, माटी दी बाहार ॥
हंस खेल फिर माटी होई, पौदी पाँव पसार ॥
बुल्ले शाह बुझारत बूझी, लाह सिरों भों मार ॥

अब तो जाग मुसाफर प्यारे, रैन घटी लटके सब तारे ॥
आवागौन सराई डेरे, साथ तयार मुसाफर तेरे ॥
अजे न सुन दा कूच नगारे ॥
करलै आज करन दी बेला, बहुरि न होसी आवत तेरा ॥
साथ तेरा चल चल्ल पुकारे ॥
आपो अपने लाहे दौड़ी, क्या सरधन क्या निर्धन बौरी ॥
लाहा नाम तू लेहु सँभारे ॥
बुल्ले सहु दी पैरी परिये, गफलत छोड़ हीला कुछ करिये ॥
मिरग जतन बिन खेत उजारे ॥

बिरह

कद मिलसी मैं बिरहों सताई नूँ ॥
आप न आवै नाँ लिख भेजे, भट्ठि अजे ही लाई नूँ ॥
तैं जेहा कोइ होर नाँ जाणा, मै तनि सूल सवाई नूँ ॥
रात दिने आराम न मै नूँ, खावे बिरह कसाई नूँ ॥
बुल्ले साह धृग जीवन मेरा, जौं लग दरस दिखाई नू ॥

उपदेश

टुक बूझ कवन छप आया है ॥
इक नुकते में जो फेर पड़ा, तब ऐन गैन का नाम धरा ॥
जब मुरसद नुकता दूर किया, तब ऐनों ऐन कहाया है ॥

तुसीं इलम किताबाँ पढ़ दे हो, के हे उलटे माने कर दे हो ॥
बेमूजब ऐवें लड़दे हो केहा, उलटा वेद पढ़ाया है ॥
दुई दूर करो कोई सोर नहीं, हिंदु तुरक कोइ होर नहीं ॥
सब साधु लखो कोइ चोर नहीं, घट घट में आप समाया है ॥
ना मैं मुल्ला ना मै काजी, ना मैं सुन्नी ना है हाजी ॥
बुल्ले साह नाल लाई बाजी, अनहद सबद बजाया है ॥

यारी साहब

यारी साहब जाति के मुसलमान थे और अपने गुरु बीरू साहब की सेवा मे दिल्ली में ही रहते थे। बहुत खोज करने पर भी इनके जीवन का कोई सुसंबद्ध वृत्तांत नहीं प्राप्त हो सका है। इनका जीवनकाल सं० १७२५ से १७८० तक माना गया है। इनके गुरुमुख शिष्य बुल्ला साहब हुए जो कि गुलाल साहब के गुरु और भीखा साहब के दादा गुरु थे। इनकी (यारी साहब) बानियों को प्राप्त करने मे सतबानी के सपादकों को बड़ी खोज करनी पड़ी थी। बड़ी कठिनाइयों के बाद इनके कुछ पद ग़ाज़ीपुर तथा बलिया आदि प्रांतो मे मिल सके हैं। इनके जो कुछ भी पद्य मिले हैं उनके एक एक शब्द से इनकी अगाध भक्ति और उच्च गति टपकती है।

अनुमान से इनका जीवन काल सं० १७२५ से १७८० तक माना गया है।

यारी साहब

झूलना

गुरु के चरन की रज लै कै, दोउ नैन के बिच अंजन दिया ।
तिमिर मेटि उँजियार हुआ, निरकार पिया को देख लिया ॥
कोटि सुरज तहँ छिपे घने, तीनि लोक धनी धन पाइ पिया ।
सतगुरु ने जो करी किरपा, मरि के यारी जुग जुग जिया ॥

अनहद् शब्द

सुन्न के मुकाम में बेचून की निसानी है ।
जिकिर रूह सोई अनहद बानी है ॥
अगम के गम्म नाहीं झलक पिसानी है ।
कहै यारी आपा चीन्हे सोई ब्रम्हज्ञानी है ॥
झिलमिल झिलमिल बरखै नूरा ।
नूर जहूर सदा भरपूरा ॥
रुनझुन रुनझुन अनहद बाजै ।
भँवर गुँजार गगन चढि गाजै ॥
रिमझिम रिमझिन बरखै मोती ।
भयो प्रकास निरंतर जोती ॥
निरमल निरमल निरमल नामा ।
कह यारी तहँ लियो बिश्रामा ॥

प्रेम

हौ तो खेलौ पिया सँग होरी ।
दरस परस पतिब्ररता पिय की, छबि निरखत भइ बौरी ॥
सोरह कला सँपूरन देखौ, रबि ससि भे इक ठौरी ॥
जब ते दृष्टि परो अबिनासी, लागो रूप ठगौरी ॥
रसना रटत रहत निस बासर, नैन लगो यहि ठौरी ॥
कह यारी भक्ति करु हरि की, कोई कहै सो कहौ री ॥
बिरहिनी मंदिर दियना बार ॥
बिन बाती बिन तेल जुगति सों, बिन दीपक उँजियार ॥
प्रान पिया मेरे गृह आयो, रचि पचि सेज सँवार ॥

सुखमन सेज परम तत रहिया, पिय निर्गुन निरकार ॥
गावहु री मिलि आनँद मंगल, यारी मिलि के यार ॥

भेद झूलना

दोउ मूँदि के नैन अंदर देखा, नहिँ चाँद सुरज दिन राति है रे।
रोसन समा बिनु तेल बाती, उस जोति सो सबै सिफाति है रे ॥
गोत मारि देखो आदम, कोउ अवर नाहिं संग साथि है रे।
यारी कहै तहकीक कीया, तू मलकुल मौत की जाति है रे ॥

जमीं बरखै असमान भींजै, बिन बातिहिँ तेल जलाइये जी ॥
जहाँ नूर तजल्ली बीचहै रे, बेरंगी रंग दिखाइये जी ॥
फूल बिना जदि फल होवै, तदि हीरा की लज्जत पाइये जी ॥
यारी कहै यहि कौन बूझै, यह का सों बात जानिये जी ॥

उपदेश

बित बंदगी इस आलम मे, खाना तुझे हराम है रे ॥
बंदा करै सोइ बंदगी, खिदमत मे आठो जाम है रे ॥
यारी मौला बिसारि के, तू क्या लागा बे काम है रे ॥
कुछ जीते बंदगी करले, आखिर को गोर मुकाम है रे ॥

गहने के गढ़े ते कहीं सोनो भी जातु है।
सोनो बीच गहनो और गहनो बीच सोन है ॥
भीतर भी सोनो और और बाहर भी सोन दीसै।
सोनो ते अचल अंत गहने। को मीच है ॥
सोन को तो जानि लीजै गहनो बरबाद कीजै।
यारी एक सोनो ता मे ऊँच कवन नीच है ॥

कवित्त

आँधरे को हाथी हरि हाथ जाको जैसो आयो।
बूझो जिन जैसो तिन तैसोई बतायो है ॥
टकाटोरी दिन रैन हिये हू के फूटे नैन।
आँधरे को आरसी मे कहा दरसायो है ॥
मूल की खबरि नाहिँ जा सो यह भयो मुलुक।
वा को बिसारि भोंदू डारै अरुझायो है ॥
आपनो सरूप रूप, आपु माहिँ देखै नाहिं।
कहै यारी आँधरे ने हाथी कैसो पायो है ॥

दूलन दास

अधिकांश सत कवियों की भाँति दूलनदास का जीवन वृत्तांत भी अप्राप्य सा है। केवल इतना स्पष्ट है कि यह जगजीवन साहब के गुरुमुख चेले थे और अठारहवीं शताब्दी के पिछले भाग से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में वर्तमान थे। यह जाति के सोम वंशीय क्षत्रिय थे और इनका जन्म लखनऊ जिले के समेसी नामक गाँव मे एक जमीदार के घर हुआ था। आरंभ मे बहुत दिन तक ये सरदहा मे अपने गुरु जगजीवन से उपदेश ग्रहण करते रहे।

इनकी स्फुट बानियो का एक संग्रह बेलबेडियर प्रेस से संपादित हुआ है और निम्नलिखित पद उसी के आधार पर संगृहीत हुए हैं।

दूलनदास

भेद

देख आयो मै तो साई की सेजरिया ।
साई की सेजरिया सतगुरु की डगरिया ।।
सबदहि ताला सबदहि कुंजी, सबद की लगी है जजिरिया ।
सबद ओढना सबद बिछौना, सबद की चटक चुनरिया ।।
सबद सरूपी स्वामी आप बिराजैं, सीस चरन मे धरिया ।
दूलनदास भजु साईं जग जीवन, अगिन से अहँग उजरिया ।।

साईं तेरो गुप्त मर्म हम जानी ।
कस करि कहौ बखानी ।।

सतगुरु सत भेद मोहिं दीन्हा, जग से राखा छानी ।
निज घर का कोउ खोज न कीन्हा करम भरम अटकानी ।।
निज घर है वह अगम अपारा, जहाँ बिराजै स्वामी ।
ताके पैर अलोक अनामी, जा का रूप न नामी ।।
ब्रह्म रूप धरि सृष्टि उपाई, आप रहा अलगानी ।
बेद कितेब की रचन रचाई, दस औतार धरानी ।।
निज माता सोता सोइ राधा, जिन पितु राम सुवामी ।
दोउ मिलि जीवन बुंद छुड़ाया, निज पद में दिया ठामी ।।
दूलनदास के साईं जग जीवन, निज सुत जक्त पठानी ।
मुक्ति द्वार की कूंची दीन्हीं, तातें कुलुफ खुलानी ।।

दोहा

दूलन यह मत गुप्त है, प्रगट न करौ बखान ।
ऐसे राखु छिपाय मन, जस बिधवा औधान ।।

"नाम महिमा"

जब गज अरध नाम गुहरायो ।
जब लगि आवै दूसरा अच्छर, तब लगि आपुहि धायो ।।
पाय पियादे मे करुनामय, गरुणासन बिसरायो ।।
धाय गजंद गोद प्रभु लीन्हो, आपनि भक्ति दिढ़ायो ।।

मीरा के विष अमृत कीन्हो, विमल सुजस जग छायो ॥
नामदेव हित कारन प्रभु तुम, मितेक गाय जियायो ॥
भक्त हेत तुम जुग जुग जनमेउ, तुमहिं सदा यह भायो ॥
बलि बलि दूलनदास नाम की, नामहिं ते चित लायो ॥

बाजत नाम नौबति आज ॥
है सावधान सुचित्त सीतल, सुनहु गैब अवाज ॥
सुखकंद अनहद नाद सुनि, दुख दुरित क्रम भ्रम भाज ॥
सतलोक बरसो पानि, धुनि निर्बान यहि मन बाज ॥
तोइ चेत चित दै प्रेम मगन, अनद आरति साज ॥
घर राम आये जानि, भइनि सनाथ बहुरा राज ॥
जग जीवन सतगुरु कृपा पूरन, सुफल मे जन काज ॥
धनि भाग दूलनदास तेरे, भक्ति तिलक बिराज ॥

कोइ बिरला यहि बिधि नाम कहै ॥
मत्र अमोल नाम दुइ अच्छर बिनु रसना रट लागि रहै ॥
होठ न डोलै जीभ न बोलै, सुरति धरनि दिढाइ गहै ॥
दिन औ राति रहै सुधि लागी, यहि माला यहि सुमिरन है ॥
जन दूलन सतगुरन बतायो, ताकी नाव पर निब है ॥

मन वहि नाम को धुनि लाउ ।
रटु निरंतर नाम केवल, अवर सब बिसराउ ॥
साधि सूरति आपनो, करि सुवा सिखर चढ़ाउ ॥
पोखि प्रेम प्रतीत तें, कहि राम नाम पढ़ाउ ॥
नाम ही अनुराग निसु दिन, नाम के गुन गाउ ॥
बनी तौ का अबहिं आगे और बनी बनाउ ॥
जगजीवन सतगुरुवचन साचे, साच मन माँ लाउ ॥
करु बारन दूलनदास सत माँ, फिरि न यहि जग आउ ॥

उपदेश

बोल मनुआँ राम राम ॥
सत्त जपना और सुपना, जिकर लावो अष्ट जाम ॥
समुझि बूझि बिचारि देखो, पिंड पिंजरा धूम धाम ॥
वालमीकि हवाल पूछो, जपत उलटा सिद्ध काम ॥
दास दूलन आम प्रभु की, मुक्ति करता सत्तनाम ॥

प्रानी जपि ले तू सत्तनाम।
मात पिता सुत कुटुम्ब कबीला, यह नहि आवैं काम ॥
सब अपने स्वारथ के संगी, संग न चलै छदाम ॥
देना लेना जो कुछ होवै, करि ले अपना काम ॥
आगे हाट बजार न पावै, कोइ नहि पावै ग्राम ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह ने, आन बिछाया दाम ॥
क्यो मतवारा भया बावरे, भजन करो निःकाम ॥
यह नर देही कामन आवै, चल तू अपने धाम ॥
अब की चूक माफ नहि होगी, दूलन अचल मुकाम ॥

चलो चढो मन यार महल अपने ॥
चौक चाँदनी तारे झलकैं, बरनत बनत न जात गने ॥
हीरा रतन जड़ाव जड़े जहँ, मोतिन कोटि कितान बने ॥
सुखमन पलँगा सहज बिछौना, सुख सोवो को मेरे मने ॥
दूलनदास के साईं जगजीवन को आवै जग जग सुपने ॥

जोगी चेत नगर में रहो रे ॥
प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया, मन तसबीह गहो रे ॥
अंतर लाओ नामहिं की धुनि, करम भरम सब धो रे ॥
सूरत साधि गहो सत मारग, भेद न प्रगट कहो रे ॥
दूलनदास के साईं जगजीवन, भवजल पार करो रे ॥

बिनय

साईं तेरे कारन नैना भये बैरागी।
तेरा सत दरसन चहौं, कछु और न मागी ॥
निसु बासर तेरे नाम की, अंतर धुनि जागी ॥
फेरत हौ माला मनौ, अँसुवन झरि लागी ॥
पल की तजी इत उक्ति तें, मन माया त्यागी ॥
दृष्टि सदा सत सनमुखी, दरसन अनुरागी ॥
मदमाते राते मनौ, दाघे बिरह आगी ॥
मिलि प्रभु दूलनदास के, करु परम सुभागी ॥

साईं हो गरीब निवाज ॥
देखि तुम्हें घिन लागत नाहीं, अपने सेवक कै साज ॥
मोहि अस निलज न यहि जग कोऊ, तुम ऐसे प्रभु लाज ॥

और कछू हम चाहत नाहीं, तुम्हरे नाम चरन ते काज ॥
दूलनदास गरीब निवाजहु, साईं जगजीवन महराज ॥

सुनहु दयाल मोहिं अपनावहु ॥
जन मन लगन सुधारन साईं मोरि बनै जो तुमहिं बनावहु ॥
इत उत चित्त न जाइ हमारा, सूरत चरन कमल लपटावहु ॥
तब हूँ अब मै दास तुम्हारा, अब जिनि बिसरौ जिनि बिसरावहु ॥
दूलनदास के साईं जगजीवन, हमहूँ कों भक्तन मों लावहु ॥

साईं भजन ना करि जाइ ।
पाँच तसकर संग लागे, मोहि हरकत धाई ॥
चहत मन सतसंग करनो, अधर बैठि न पाई ॥
चढ़त उतरत रहत छिन छिन, नाहिं तहँ ठहराइ ॥
कठिन फाँसी अहै जग की, लियो सबहिं बझाइ ॥
पास मन मनि नैन निकटहिं, सत्य गयो भुलाइ ॥
जगजीवन सतगुरु करहु दाया, चरन मंत लपटाइ ॥
दास दूलन बास संत मों, सुरत नहिं अलगाइ ॥

साईं सुनहु बिनती मोरि ।
बुधि बल सकल उपाय हीन मे, पाँयन परौं दोऊ कर जोरि ॥
इत उत कतहूँ जाइ न मनुवाँ, लागि रहै चरनन मों डोरि ॥
राखहु दासहि पास आपने, कस को सकिहैं तोरि ॥
आपन जानि कै मेटहु मेरे, औगुन सब क्रम भ्रम खोरि ॥
केवल एक हितू तुम मेरे, दुनियाँ भरी लाख करोरि ॥
दुलन दास के साईं जगजीवन, माँगौं संत दरस निहोरि ॥

प्रभु तुम किहेउ कृपा बरियाईं ।
तुम कृपाल मै कृपा अलायक, समुझि निवजतेहु साईं ॥
कूकुर धोये होइ न बाछा, तजै न नीच निचाईं ।
बगुल होइ न मानस बासी, बसहि जे विषै तलाईं ॥
प्रभु सुभाउ अनुहार चाहिये, पाय चरन सेवकाईं ।
गिरगिट पौरुष करै कहा लगि, दौरि कहाँरे जाईं ॥
अब नहिं बनत बनाये मेरे, कहत अहौं गोहराईं ।
दूलनदास के साईं जगजीवन, समरथ लेहु बनाईं ॥

प्रेम

धनि मोरि आज सुहागिनि घड़िया।
आज मोरे अगना सत चलि आए, कौन करो मिहमनिया॥
निहुरि निहुरि मैं अंगना बुहारौं, मातौ मैं प्रेम लहरिया।
भाव कै भात प्रेम कै फुलका, ज्ञान की दाल उतरिया॥
दूलनदास के साईं जगजीवन, गुरु के चरन बलहरिया।

अब तो अफसोस मिटा दिल का, दिलदार दीद में आया है।
संतों की सुहबत में रह कर, हक़ हादी को सिर नाया है॥
उपदेस उग्र गहि सत्त नाम, सोइ अष्ट जाम धुनि लाया है।
मुरशिद की मेहर हुई योकर, मज़बूत जोश उपजाया है॥
हर वक्त तसौवर में सूरत, मूरत अदर झलकाया है।
बू अली क़लदर औ फ़रीद, अबरेज वही मत गाया है॥
कर सिदक सबूरी लामकान, अल्लाह अलख दरसाया है।
लखि जन दूलन जगजीवन पूर, महबूब मेरे मन भाया है॥
ख़ाविन्द ख़ास गैबी हजूर, वह दिल अदर में लाया है।

हुआ है मस्त मंसूरा चढ़ा सूली न छोड़ा हक़।
पुकारा इश्कबाजों को, अहै मरना यही बरहक़॥
जो बोले आशिक़ों यारौं, हमारे दिल में है जी शक॥
अहै यह काम सूरों का, लगाये पीर से अब तक॥
शम्सतबरेज़ की सीफत, जहाँ में जाहिरा अब तक॥
निज़ामुद्दीन सुल्ताना, सभी मेटे दुनी के धक॥
निरख रहे नूर अल्लाह का रहें जीते रहे जब तक॥
हुआ हाफ़िज़ दिवाना भी भये ऐसे नहीं हर यक॥
सुना है इश्क मजनूँ का, लगी लैला की रहती ज़क॥
जलाकर खाक तन कीन्हा, हुए वह भी उसी माफिक॥
दुलनजन को दिया मुरशिद पियाला नाम का थकथक॥
वही है शाह जगजीवन, चमकता देखिये लकलक॥

करुना

हमरे तो केवल नाम अधार।
पूरन नाम काम दुइ अच्छर, अंतर लागि रहै खटकार॥
दासन पास बसै निसु बासर, सोवत जागत कबहुँ न न्यार॥

अरध नाम टेरत प्रभु धाये, आय तुरत गज गाढ़ निवार ॥
जन मन रंजन सब दुख भंजन, सदा सहाय परम हित प्यार ॥
नाम पुकारत चीर बढ़ायो, द्रुपदी लज्जा के रखवार ॥
गौरि गनेस औ सेष रटत जेहिँ, नारद सुक सनकादि पुकार ॥
चारहु मुख जेहिँ रटत बिधाता, मंत्र राज सिव मन सिंगार ॥

भक्तन रामचरन धुनि लाई ॥
चारिहु जुग गोहारि प्रभु लागे, जब दासन गोहराई ॥
हिरनाकुस रावन अभिमानी, छिन माँ खाक मिलाई ॥
अबिचल भक्ति नाम की महिमा, कोऊ न सकत मिटाई ॥
कोउ उसवास न एकौ मानहु, दिन दिन की दिनताई ॥
दुलनदास के साईं जगजीवन, है सतनाम दुहाई ॥

गरीब दास

यारी साहब की शिष्यपरंपरा से अलग परंतु इसी धारा में एक संत महात्मा ग़रीब दास जी हुए हैं। इनका जन्म वैशाख सुदी १५ सं० १७१४ मे रोहतक (पंजाब) के छुड़ानी नामक एक गाँव में एक जाट के वंश में हुआ था। ये कबीर को अपना गुरु मानते थे। इन्होंने गृहस्थाश्रम में रहते हुए ही केवल २२ वर्ष की अवस्था मे ही एक बड़े ग्रंथ की रचना आरंभ की थी जिसमे सत्रह हजार चौपाई और साखी इनकी और सात हजार कबीर की हैं। इनका शरीर पात ६१ वर्ष की अवस्था में भादो सुदी २ सं० १८३५ मे हुआ। उपर्युक्त चौपाइयों और साखियो से चुनकर वेलवेडियर प्रेस से ७०५ पृष्ठों का इनका संग्रह प्रकाशित हुआ है जिसमे इनके प्राय: ९५० पद्य है। कबीर को ये अपना गुरु तो मानते ही थे अत: स्वभाव ही से इनकी रचना शैली कबीर की रचना शैली से बहुत कुछ मिलती जुलती है। भाव और विचार भी अधिकतर वैसे ही मिलते हैं। परमात्मा और संतो मे वही अनन्य भक्ति और आस्था ढोंग और पाखंडर आदि की वही चुटीली आलोचना तथा साधना और परोपकार आदि मे वही अखड विश्वास मिलता है। एक बात मे विभिन्नता अवश्य पाई जाती है। इनके पदो में बहुत से पद पुराणों से लिए हुए जान पड़ते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन धर्म ग्रंथो को ये श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखते थे। कबीर की भाँति इनके पदों में वेद पुराण की निंदा नही मिलती।

निम्नलिखित पद वेलवेडियर प्रेस के संग्रह से चुने गए हैं।

गरीब दास

भक्ति का अंग

पारस हमरा नाम है लोहा हमरी जात ।
जड़ सेती जड़ पलटिया तुम कूँ केतिक बात ॥
बिना भगति क्या होत है धू कूँ पूछे जाहि ।
सवा सेर अन्न पावते अटल राज दिया ताहि ॥
बिना भगति क्या होत है कासी करवत लेह ।
मिटै नहीं मन बासना बहु बिधि भरम सँदेह ॥
भगति बिना क्या होत है भरम रहा ससार ।
रत्ती कचन पाय नहिं रावन चलती बार ॥
संग सुदामा सत थे दारिद का दरियाव ।
कंचन महल बकस दिये तंदुल भेंट चढ़ाव ॥

बिनती का अंग

साहब मेरी बीनती सुनरे गरीब निवाज ।
जल की बूँद महल रचा भला बनाया साज ॥
साहब मेरी बीनती सुनिये अरस अवाज ।
मादर पिदर करीम तू पुत्र पिता को लाज ॥
साहब मेरी बीनती कर जोरैं करतार ।
तन मन धन कुरबान है दीजै मोहि दीदार ॥
पाँच तत्त के महल मे नौ तत का इक और ।
नौ तत से इक अगम है पारब्रम्ह की पौर ॥
सुरत निरत मन पवन कूँ करो एकत्तर यार ।
द्वादस उलट समोय ले दिल अदर दीदार ॥
चार पदारथ महल मे सुरत निरत मन पौन ।
सिव द्वारा खुलि है जबै दरसै चौदह भौन ॥
सील सतोष बिबेक बुध दया धर्म इक तार ।
अकल यकीन इमान रख गही बस्तु निज सार ॥
साहब तेरी साहबी कैसे जानी जाय ।
त्रिसरेनू से भीन है नैनो रहा समाय ॥

लै का अंग

लै लागी जब जानिये जग सूँ रहै उदास ।
नाम रटै निर्भय कला हर दर हीरा स्वास ॥
लै लागी तब जानिये जग सूँ रहै उदास ।
नाम रटै निरदुद होय अनहद पुर मे वास ॥
लै लागी तब जानिये हरदम नाम उचार ।
एकै मन एकै दिसा सॉई के दरबार ॥
लै लागी तब जानिये हर दम नाम उचार ।
धीरे धीरे होयगा वह अल्लह दीदार ॥

रेखता

अजब महरम मिला ज्ञान अग है खुला ॥
परख परतीत सुँ दुद भागा ॥
सबद की सध मे फद मनुवा गया ॥
बिरह घनघोर मे हंस जागा ॥
अष्ट दल कमल मध जाप जपा चलै ॥
मूल कूँ बॅध बैराट छाया ॥
त्रिकुटी तीर बहु नीर नदिया बहैं ॥
सिध सरवर भरे हस न्हाया ॥
खेचरी भूचरी चाचरी उनमुनी ॥
अकल अगोचरी नाद हेरा ॥
सुन्न सतलोक कूँ गमन ससा किया ॥
अगम पुर धाम कछू महबूब मेरा ॥
अच्छर की डोर घनघोर मे मिल गई ॥
भेद भेदा मे करतार महली ॥
दास गरीब यह विषम बैराग है ॥
समझ देखी नहीं बात सहली ॥

बिरह की पीर जस गात गदा नहीं ।
बोझ पिंजर गया अस्थि सूखा ॥
उनमुनी रेख धुन ध्यान नि चल भया ।
पाच जहूद तन ठीक फूँका ॥
लगेगी दाह जब धाहै देता फिरै ।
बिरह के अग में रावता है ॥

पलक आभू भरै ध्यान बिरहन धरै ।
प्रेम रस रीत तन धोवता है ॥
हाड तन चाम गूदा असत गलत है ।
उगौ गात तन रुई रगा ॥
पिंड तन पीन उदीत बैराग है ।
देत है मद्ध जूँ कूक बगा ॥
हंस परमहंस से जा मिला ।
बिरह बियोग यह जोग जोगी ॥
दास गरीब जहं पास प्यासे फिरैं ।
पीवते सही रस भोग भोगी ॥

बेत

बंदे जान साहब सरवे ।
पिदर मादर आप कादर नहीं कुल परिवार वे ॥
जल बूंद से जिन साज साजा लहम दरिया नूर वे ॥
है सकल सरबग साहब देख निकट न दूर वे ॥
जिन्द अजूनी वेन मूनो जागता गुरु पीर है ॥
उलट पटन मेरु चढ़ना लहम दरिया तीर वे ॥
अजब साहब है सुभान खोज दम का कीन वे ॥
तिकुटी के घाट चढ़कर ध्यान घर दुरबीन वे ॥
अजब दरिया है हिरंबर परम हंस पिछान वे ॥
आब खाक न बाद आतिस ना जमीं असमान वे ॥
अलख आप सलाह साहब कुर्स कुज जहूर वे ॥
अर्स ऊपर महल मालिक दर झिलमिला दूर वे ॥
मौला करीम अदाय खूबी धुन सोहंसी जाप वे ॥
बाग रोउ निमाउ कलमा है सबद गरगाप वे ॥
निर्भय निहंगम नाद बाजै निरख करटुक देख वे ॥
अरसी अजूनी जिंद जोगी अलख आदि अलेख वे ॥
मढीं महल न तासु ये आसन अमी ऐन वे ॥
पाजी गुलाम गरीब तेरा देखता सुख चैन वे ॥

बंदे देख ले निज मूल वे ।
कला कोटि असंख धारा अधर निर्गुन फूल वे ॥
है अबध असंग अवगत अधर आदि अनाद वें ॥

कमल मोती जगमगै जहं सुरत निरत समाध वे ॥
भवन भारी वन सोभा भजो राम रहीम वे ॥
साहब धनीं कूँ याद कर जप अलह अलख करीम वे ॥
मादर पिदर है संग तेरे बिछुरता नहिं पलक वे ॥
कायम कला कुरबान जों खालिक बसे है खलक वे ॥
खालिक धनी है खलक में तूँ झलक पलक समीप वे ॥
अरस आसन है बिहंगम अधर चसमें जोय वे ॥
वैराग में इक घाट है उस घाट में इक द्वार है ॥
उस द्वार में इक देहरा जहँ खूब है इक यार वे ॥
सुभ है दिलदार साहब दखना नहिं भूल वे ॥
गरीब दास निवास नग पर भई सेजा सूल वे ॥

बंदे अधर बेड़ा चलत वे।
साच मान सुगंध साहब नहीं करिया लगत वे ॥
अधर पुहमी अधर छिः गिरवर अधर सरवर ताल वे।
अधर नदियाँ बहत वे जहँ अधर हीरे लाल वे ॥
अधर नौका अधर खेवट अधर पानी पवन वे।
अधर चंदा अधर सूरज अधर चौदह भुवन वे ॥
अधर बाग अधर वेल अधर कूप तलाव वे।
अधर माली कुहकता है अधर फूल खिलाव वे ॥
अधर बंगला अधर डेवढ़ी अधर साहब आप वे।
अधर पुर गढ़ हूट नगरी नाभि नासा माथ वे ॥
ढूंढ हाथ हजूर हासिल अधर पर इक अधर वे।
गर बदासं अधर ध्यानी ओढ़ि एके चहर वे ॥

राग कल्यान

कबहुँ न होवै मैला नाम धन कबहुँ न होवै मैला ॥
चेतन हो कर जड़ कूँ पूजै मूरख मूढ़र बैला।
जिस दगड़े पंडित उठ चालै पीछे पड़ गया गैला ॥
औघट घाटी पंथ विकट है जहा हमारी सैला।
-विनय बंदगी महेसा कीजै बोक बनै के खैला ॥
कूकर सूकर खर कीजैगा छाड़ सकल बद फैला।
घरही कोस पचास परत हैं ज्यूँ तेली के बैला ॥
पीसत भांग तमांखू पीवै मूरख मुख सूँ मैला।
सहस इकी सौ छः से दम है निस बासर तूं लैला ॥

गरीब दास सुन पार उतर गये अनहद नाद धुरैला ।
घट ही में चद चकोरा साधो घट ही चद चकोरा ॥
दामिनि दमकै घनहर गरजै बोलै दादुर मोरा ।
सतगुरु गस्ती गस्त फिरावै फिरता ज्ञान ढँढोरा ॥
अदली राज अदल बादसाही पाँच पचीसो चोरा ।
चीन्हो सबद सिह घर कीजै होना गारत गोरा ॥
त्रिकुटी महल मे आसन मोरो जहँ न चलै जम जोरा ।
दास गरीब भक्त को कीजै हुआ जात है भोरा ॥
नाम निरजन नीका साधो नाम निरजन नीका ।
तीरथ बरत थोथर लागे जप तप संजय फीका ॥
भजन बदगी पार उतारै समरथ जीवन जीका ।
करम काड ब्योहार करत है नाम अभय पद टीका ॥
कहा भयौ छत्र की छाह चलैया राजपाट दिहली का ।
नाम सहित वे बतन भक्ता है दर दर मागै भीखा ॥
आदि अनादि भक्ति है नौधा सुनो हमारी सीखा ॥
गरीबदास सतगुरु की सरनै गगन मॅडल में दीखा ॥

राग परज

लेखा देना रे धनी का लेखा देना रे ॥ टेक ॥
रागी राग उचारहीं गावत मुख बैना रे ।
हस्ती घोड़े पालकी छाड़ी सब सैना रे ॥
रोकड़ ढकी धरी रही सब जेवर गहना रे ।
फूँक दिया मैदान मे कुछ लेन न देना रे ॥
मुगदर मारै सीस मे जम किकर दहना रे ।
उतर चला तागीर हो ज्यू मरदक सहना रे ॥
फूला सो कुम्हलात है चुनिया सो ढहना रे ।
चित्रगुप्त लेखा लिया जब कागढ पहना रे ॥
चलिये अब दीवान मे सतगुरु से कहना रे ।
मुसकिल से आसान हो ज्यू बहुर मरै ना रे ॥
बोया अपना सब लुनै पकरैं हम अहना रे ।
चरन कलम से ध्यान से छूटै सब फैना रे ॥
परानन्दना सग है जाके कमधैना रे ।
गरीबदास फिर आवही जो अजर जरै ना रे ॥

भजन कर राम दुहाई रे ॥ टेक ॥
जनम अमोला तुझ दिया नर देही पाई रे।
देही कूँ या ललचहीं सुर नर मुनि भाई रे ॥
सनकादिक नारद रटैं चहूं वेदा गाई रे।
भक्ति करै भवजल तरै सतगुरु सिरनाई रे ॥
मिरगा कठिन कठोर है कहो कहा डहकाई रे।
कस्तूरी है नाभ में बाहर भरमाई रे ॥
राजा बूड़े मान में पडित चतुराई मे।
ज्ञान गली में बक है तन धूर मिलाई रे ॥
उस साहब कूं याद कर जिन सौंज बनाई रे।
देखत ही हो जाता है परबत से राई रे ॥
कचन काया छार होय तन ढरक जराई रे।
मूरख भोंदू बावरे क्या मुकत कराई से ॥
चमरा जुरहा तर गये और छीपा नाई रे।
गनिका चढ़ी बिमान में सुर्गापुर जाई रे ॥
स्योरी भिलनी तर गई और सदन कसाई रे।
नीच तरे तो सूँ कहूँ नर मूढ़ अन्याई रे ॥
सबद हमारा साँच है और ऊँट की वाई रे।
धुएं कैसे धौंलहार तिहुँ लोक चलाई रे ॥
कलबिष कसमल सब कटै तन कचन काई रे।
गरीबदास निज नाम है नित परबी न्हाई रे ॥

राग बँगला

बगला खूब बना है जोर जामे सूरजचंद कडोर ॥ टेक ॥
या बगला के द्वादस दर है मध्य पवन परवाना।
नाम भजे तो जुग जुग तेरा नातर होत बिराना ॥
पाच तत्त और तीन गुनन का बगला अधिक बनाया।
या बंगले मे साहब बैठा सतगुरु भेद लखाया ॥
रोम रोम तरागन दमकै कली कली दर चंदा।
सूरज मुखी सबत्तर साजै बाधा परमानदा ॥
बगले में बैकुठ बनाया सप्त पुरी सैलाना।
भुवन चतुरदस लोक बिराजैं कारीगर कुरवाना ॥
या बगले मे जाप होत है रर कार धुन सेसा।
सुर नर मुनि जन माला फेरैं ब्रम्हा बिस्नु महेसा ॥

गन गंधर्प गलतान ध्यान में तेतिस कोट बिराजैं ।
सुर निरन्ती बीना सुनिये अनहद नादु बाजैं ॥
इला पिंगला पेंग परी है सुखमन झूल झुलंती ।
सुरत सनेही सब्द सुनत है राग होत सनरतती ॥
पाच पचीसो मगन भये हैं देखो परमानंदा ।
मन चचल निहचल भया हंसा मिलै परम सुख सिंधा ॥
नभ की डोर गगन सूं बाधै तौ इहा रहने पावै ।
दसो दिसा सूं पवन झकोरै काहे दोस लगावै ॥
आठो बदत अल्हैया बाजे होता सब्द टकोरा ।
गरीबदास यू ध्यान लगावै जैसे चद चकोरा ॥

राग आसावरी

मन तू चल रे सुख के सागर ।
जहाँ सब्द सिंध रतनागर ॥ टेक ॥
कोट जनम जुग भरमत हो गये ।
कछू न हाथ लगा रे ॥
कूकर सूकर खर भया बौरे ।
कौवा हस बिगारै ॥
कोट जनम जुग राजा कीन्हा ।
मिटी न मन की आसा ।
भिक्षुक हो कर दर दर हाडा ॥
मिला न निरगुन आसा ॥
इंद्र कुबेर ईस की पदवी ।
ब्रम्हा बरनु धर्मराया ॥
बिश्वनाथ के पुर कू पहुँचा ।
बहुर अपूठा आया ॥
सह जनम जुग मरते हो गये ।
जीवत कू न मरै रे ॥
द्वादस मद्ध महल मठ बौरे ।
बहुर न देह धरै रे ॥
दोजख भिस्त सबै तैं देखै ।
राज पाट के रसिया ॥
तिरलोकी के तिरपत नाहीं ।
यह मन भोगी खसिया ॥

सतगुरु मिलै तो इच्छा मेटै।
पद मिल पदहिं समाना ॥
चल हसा उसदेश पठाऊँ।
जह आद अमर स्थाना ॥
चारि मुक्ति जहँ चपी करिहैं।
माया हो रहि दासी ॥
दास गरीब अभय पद परसे।
मिले राम अविनासी ॥

संतो मन की माला फेरो, यह मन काहर जात हेरो ॥ टेक ॥
तीन लोक औ भुवन चतुरदस एक पलक फिर आवै ॥
बिनहीं पनखों उड़े पखेरू याका खोज न पावै ॥
तत की तसबी सुरत सुमिरनी दृढ के धागे पोई।
हर दम नाम निरजन साहब यह सुमिरन कर लोई ॥
किलय ओअ्र हिंरिय सिरिय सोहं सुरत लगावै।
पंच नाम गायत्री गैबी आतम तत्त बगावै ॥
ररंकार उचार अनाहद रोम रोम रस तालं।
कर की माला कौन काम जब आतम राम अबदाल ॥
सुरग पताल सृष्टि मे डोलै सर्ब लोक सैलानी।
यह मन भैरो भूत बिताल यह मन अलख बिनानी ॥
यह मन ब्रह्मा बिस्नु महेस इदर बरुन कुबेरं।
मन ही धर्मराय है भाई सकल दूत जम जेरं ॥

अवधू तेल न मन का लाहा चीन्हो ज्ञान अगाहा ॥टेक॥
कासी गहन बहन भये प्रानी प्रान नहात है माहा।
बिना राम जोनी नहिं छूटै भरमै भूल भुलाना ॥
सहस मुखी गंगा नहिं न्हाते खोदे ऊजड़ बाहा।
नारद बयास पूछ सुकदे कू चारो बेद उगाहा ॥
पंथ पुरातम खोज लिया है चाले अवगत राहा।
सुकदे ज्ञान सुना कर संकर का मिटी न मन की दाहा ॥
दो तपिया गुन तप कू लागै वदे हू हू हाहा।
लगा सराप परे भौसागर कीन्हे गज अरु गाहा ॥
सिव सकर के तिलक किया है नारद सीधा साहा।
ब्रह्मादिक ने चोरी रचिया किया गौर का ब्याहा ॥
इक सौ आठ गये तन परलै बहुर किया निरबाहा।

सिव के संग गौरजा उधरी मिट गया काल उसाहा ॥
ज्यूं सरपा की पूछ पकर करि अदर उलटा जाहा ।
नीर कबीर सिध सुखसागर पद मिल गया जुलाहा ॥
हमरा ज्ञान ध्यान नहि बूझा समझ न परी अगाहा ।
दास गरीब पार कस उतरैं भेटा नहीं मलाहा ॥

राग बिलावल

रब राजिक तू महरमी करतार बिनानी ।
अवगत अलख अलाह तू कादिर परवानी ॥
खालिक मालिक मेहरवा सरबगी स्वामी ।
निःचल अचल अगाध तू कुदरत से न्यारा ॥
गध पुहुप ज्यू रम रहा फूला गुलजारा ।
राम रहीम करीम तू कुदरत से न्यारा ॥
पूरन ब्रम्ह परम गुरु अकाल अबिनासी ।
सब्द अतीत बिहगमा किस काल उदासी ॥
अनुरागी निहतत कू तन मन सब अरपू ।
सीस करूँ तिस वारने चित चंदन चरचू ॥
उस साहब महबूब कू कर हर दम मुजरा ।
चित से नेक न बीसरू दिल अदर हुजरा ॥

मतवालों के महल की सूफी क्या पावै ।
अरस खुरदनी खीर है सतगुरु बतलावै ॥
सुन्न दरीबेक हाट है जह अमृत चुवता ।
ज्ञानी घाट न पावहीं खाली सब कविता ॥
टा बिकै नहिं मोल कू जो तुलै न तौला ।
कूची सब्द लगाय कर सतगुरल पट खोला ॥
फूल झरै भाठी सरै जह फिरैं पियाले ।
नूर महल बेगमपुरा घूमे मतवाले ॥
त्रिकुटी सिध पिछान ले तिरबेनी धारा ।
बेड़े बाट बिहगमी उतरै भौपारा ॥
अठसठ तीरथ ताल हैं उस तरवर माही ।
अमर कद फल नूर के कोइ साधू खाहीं ॥

चिता मन कू चेत रे मुक्ताहल पाया ।
सतगुर मिलिया जौहरी जिन्ह भेद बताया ॥टेक॥

हीरामनि पारस परस लख लाल नरेसा ।
मोती जवाहर जौगिया वह दुर्लभ देसा ॥
काम भे कल बनुच्छ हैं दरबार हमारे ।
अठ सिधि नौ निधि अगने नित कारज सारे ॥
राग छतीसौ कधि सबै जहं रास रछीती ।
ताल तबूरे तूर हैं अवगत निरबानी ॥
सुन में बाजै डुगडुगी बरवें पद गावैं ।
चल हसा उस देस कूं जो बहुर न आवै ॥
नूरमहल गुलजार है दिज सब्द समाये ।
हंसा बहुरि न आवहीं सत लोक सिधाये ॥

मै अमली निज नाम का मद खूब चुवाया ।
पिया पियाला प्रेम का सिर साटे पाया ॥ टेक ।
गन गधर्व जोधा बड़े कैसे ठहराया ।
सील खेत जन रग में सतपुर सर लाया ॥
पाच सखी नित सग हैं कैसे हैं त्यागी ।
अमर लोक अनहद नुरते सोई अरागी ॥
परपंची पाकर लिया बिरहे का कंपा ।
जहं सख पद्म उजियार है झलकत है चंपा ॥
कुभ कलाली भर दिया महँगा मद नीका ।
और अमल नापाक है सब लागत फीका ॥
एक रती पावे नहीं बिन सीस चढ़ाये ।
वह साहब राजी नहीं नर मुड मुड़ाये ॥
सजन सुराही हाथ है अमृत का प्याला ।
हम बिरहिनी बिरहैं रंगी कोई पूछै हाला ॥
चोखा फूल चुवाइयो बिरहिन के ताईं ।
मतवाला महबूब है मेरो अलख गुसाईं ॥
प्रेम पियाला पीय कर मै भई दिवानी ।
कहा कहूँ उस देस की कुछ अकथ कहानी ॥
बरवे राग सुनाय कर गल डारी फासी ।
गाठ घुली खुलै नहीं साजन अविनासी ॥
गुझ की बात किस कूं कहूँ कोई महरम जानै ।
अगली पिछली मत गुई बेधी इक तानै ॥

सुन्न सरोवर हस मन मोती चुग आया ।
अगर दीप सतलोक मे ले अनर झराया ॥टेक ॥

हस हिरबर हेत हैं हैरान निसानी ।
सुख सागर मुक्ता भये मिल बारह बानी ।।
पिंड अड ब्रह्मड से वह न्यारा नादू ।
सुन्न समझिया वेग रे गये बाद विबादू ।।
सतगुर सार जु गाइया धर कूची ताला ।
रंग महल मे रोसनी घट भया उजाला ।।
दीपक जोड़ा नूर का ले अस्थिर बाती ।
बहुर भौ भोजल आवहीं निरगुन के नाती ।।

ज्ञान तुरगम पाड़िया ताजी दरियाई ।
पासर घाली प्रेमी की चित चाबुक लाई ।।टेक।।
प्रेम धाम से उतरे हुक्मी सैलानी ।
सबद सिध मेला करैं हसो के दानी ।।
असख जुग परलै गये जब के गुन गाऊ ।
ज्ञान गुरज है दस्त में ले हस चिताऊँ ।।
सील हमारा सेल है औ छिमा कटारी ।
तत्त तीर तक मार हूँ कह जात अनारी ।।
बुधि हमारी बदूक है दिल अदर दारू ।
प्रेम सपयाला सारका चित चकमक झारू ।।

दरदमद दरवेस है वेदरद कसाई ।
सत समागम कीजिये तज लोक वड़ाई ।। टेक ।।
डिंभी डिंभ न छोड़हीं मरघट के पूता ।
घर घर द्वारे फिरत हैं कलजुग के कूता ।।
डिंभ करैं डुंगर चढ़ें तप होम अँगीठी ।
पच अगिन पाखड है यह मुक्ति बसीठी ।।
पाती तोरे क्या हुआ बहु पान झरोरे ।
तुलसी बकरा खा गया ठाकुर क्या बौरे ।।
पीतल ही का थाल है पीतल का लोटा ।
जड़ मूरत कूं पूजते आवैगा टोटा ।।

नजर निहाल दयाल हैं मेरे अंतरजामी ।
सोलह कला सपूरना लख बारह बानी ।।
उलट मेरुडड चढ गये देखो सो देखा ।
संख कोटि रबि झिलमिले गिनती नहिं लेखा ।।
बरन बरन के तेज हैं पँचरंग परेवा ।

मूरत कोट असख है जा मध इक देवा ॥
जाके ब्रह्मा झाड़ू देत हैं संकर करैं पखा ।
सेस तरन चपी लगै अगमी गढ़ बका ॥
धरत ऐनक दुरबीन कू धुन ध्यान लगावै ।
उलट कमल अरसा चढ़ै तब नजरों आवै ॥

सत्त कहन कू राम हैं दूजा नहिं देवा ॥
ब्रम्हा बिस्न महेस से जा की करते सेवा ॥
जप तप तीरथ थोथरे जा की क्या आसा ।
कोट जग्ग पन दान से जम कटै फासा ॥
इहा देन उहा लेन हैं यह मिटै न झगरा ।
बिना पथ की बाट है पावै को दगरा ॥
बिन ही इच्छा देन है सो दान कहावै ।
फल बंछै नहिं तासु का अमरोपुर जावै ॥
सकल दीप नौ खंड के छत्री जिन जीते ।
सो तो पद मे ना मिले विद्या गुन चीते ॥

राम कहे मेरे साध कूं दुख मत दीजो कोय ।
साध दुखावै मैं दुखी मेरा आपा भी दुख होय ॥ टेक ॥
हिरनाकुस उदर बिदारिया मैं ही मारा कंस ।
जो मेरे साध कूं आय दुखावै जाका खोऊं बस॥
पहुँचूंगा छिन एक मे जन अपने के हेत ।
तैंतीस कोट की बन्य छुटाई रावन मारा खेत ॥
बला वधाऊ सत की परगट करिहै मोय ।
गरीबदास जुलहा कहै मेरा साध न दहियो कोय ॥

करो निवेरा रे नरो । जम मागे बाकी ।
कर जोड़े धर राय खड़े सतगुरु है साखी ॥ टेक ॥
माटी का कलबूत है सतगुरु का साजा ।
उस नगरी डेरा करौ जह सब्द अवाजा ॥
नूर मिलैगा नूर मे माटी में माटी ।
कोइक साधू चढ़ गये यस औघट घाटी ॥
रोम रोम में राम है अजपा जप लीजै ।
सुरत सुहगम डोर गहि प्याला मधु पीजै ॥
जम की फरदी ना चढ़ै सोई जन सूरा ।
परसा दास गरीब है जोगेसर पूरा ॥

राग काफी

मन मगन भया जब क्या गावै ॥ टेक ॥
ये गुन इद्री दमन करैगा बस्तु अमोली सो पावै।
तिरलोकी की इच्छा छाड़े जग मे विचरै निरदावे ॥
उलटी सुलटी निरति निरंतर बाहर से भीतर लावै।
अधर सिंहासन अविचल आसन जहं उहा स्सती ठहरावै ॥
त्रिकुटी महल मे सेज बिछी है द्वादस अदर छिप जावै।
अमर अजर निज मूरत सूरत ओअं सोहं दम ध्यावै ॥
समल मनोहर पूरन साहिब बहुर नहीं भौजल आवै।
गरीबदास सतपुरुष विदेही साचा सतगुरु दरसावै ॥

तारेंगे तहकीक सतगुरु तारेंगे ॥ टेक ॥
घट ही मे गगा घट ही में जमुना।
घट ही मे जगदीस ॥
तुम्हरे ग्याना तुम्हरे ध्याना।
तुम्हरे तारन की परतीत ॥
मन कर धीरा बाध ले बौरे।
छाड खेय पिछलो की रीति ॥
दास गरीब सतगुरु का चेलच।
टारै जम की रसीत ॥
जल थल साथी एक है रे।
डूंगर डहर दयाल ॥
दसों दिसा के दरसन।
ना काहें जोरा काल ॥

देवतीर्थ

काष्ठजिह्वा स्वामी

देवतीर्थ जी काशी के निवासी और संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। पहले यह शैव थे पर बाद मे अयोध्या के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त राम सखे जी के प्रभाव में आकर वैष्णव हो गए थे। उन का शिष्यत्व इन्हो ने स्वीकार कर लिया था पर पहले दोनों मे बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ था जिस मे रामसखे जी को नीचा देखना पड़ा था। इस से विरक्त हो कर देवतीर्थ जी ने अपनी जीभ छिदवा कर उस मे लकड़ी की एक सलाई डाल ली थी। तभी से इन का नाम काष्ठजिह्वा स्वामी पड़ गया था। काशी विश्वनाथ के प्रसिद्ध मंदिर की एक सीढ़ी मे इनका नाम खुदा हुआ है।

इनकी रचनाओ से सीता-राम की बड़ी अनन्य भक्ति प्रगट होती है और इसी से ये "सीतारमैया" काष्ठजिह्वा स्वामी कहे जाते है।

इनके मुख्य ग्रंथ ये हैं-- 'विनयामृत' 'रामलगन' 'रामायण' 'परिचर्या', 'वैराग्य प्रदीप' और 'पदावली'। इस अंतिम ग्रंथ की रचना सं० १८९७ मे हुई थी। यह काशी के भूतपूर्व महाराज ईश्वरी नारायण सिंह जी (वर्तमान महाराज के पितामह) के गुरु थे और इन के पद अब भी काशी दर्बार मे गाये जाते हैं।

काष्ठ जिह्वास्वामी

प्रेम

चीखि चीखि चसकन से राम सुधा पीजिये।
राम चरित सागर मे रोम रोम भींजिये॥
राग द्वेस जग बढ़ाइ काहे को छीजिये।
परदुक्खन देखत हीं आप सों पसीजिये।
तोरि तारि खैंचि खाचि स्तुति को नहिं गींजिये।
जा में रस बनो रहै वही अर्थ कीजिये॥
बहुत काल सतन के दोऊ चरन भींजिये॥
देव दृष्टि पाइ बिमल जुग जुग लौं लीजिये॥

बसो यह सिय रघुबर को ध्यान।
स्यामल गौर किसोर बयस दोउ, जे जानहुँ की जान॥
लटकत लट लहरत स्रुति कुंडल गहनन की झमकान।
आपुस में हँसि हँसि कै दोऊ, खात खियावत पान॥
जहँ बसत नित महमह महकत, लहरत लता बितान।
बिहरत दोउ तेहि सुमन बाग में, अलि कोकिल कर गान॥
ओहि रहस्य सुख रस को कैसे, जानि सकै अज्ञान।
देवहु की जहँ मति पहुँचत नहिं, थकि गये वेद पुरान॥

विनय

मैं तो मन ही मन पछिताय रह्यो॥
साज समाज सरस पायहु के, कर से रतन गँवाय रह्यौ॥
यह नर तन यह काया उत्तम, बिन सतरग नसाय रह्यौ।
पढ़्यौ गुन्यौ सिखयौ औरन को, आप विषय लपटाय रह्यौ॥
चित्र विचित्र करम को धागा, जनम जनम अरुझाय रह्यौ।
काहे को कबहूँ यह सुरझहि दिन दिन अधिक फँसाय रह्यौ॥
सदा मुक्ति को ज्ञान अगम लखि, गले हार पहिराय रह्यौ।
जिव को सूत सिवहिं से अरुझै, विनती देव सुनाय रह्यौ॥

उपदेश

समुझ बूझ जिय में बंदे, क्या करना है क्या करता है।
गुन का मालिक आपै बनता, अरु दोष राम पर धरता है॥

अपना धरम छोड़ि औरों के, ओछे धरम पकरता है।
अजब नसे की गफलत आई, साहिब को नहिं डरता है॥
जिनके खातिर जान माल से, बहि बहि के तू मरता है।
वे क्या तेरे काम पड़ेंगे, उनका लहना भरता है॥
देव धरम चाहे सो करि ले, आवागमन न टरता है।
प्यारे केवल राम नाम से, तेरा मतलब सरता है॥

कोई सफा न देखा दिल का, साँचा बना झिलमिल का।
कोइ बिल्ली कोइ बगुला देखा, पहिरे फकीरी खिलका॥
बाहर मुख से ज्ञान छाँटते, भीतर कोरा छिलका॥
भजन करन में गजब आलसी, जैसे थका मँजिल का।
औरन के पीसन मे सुरमा, जैसे बट्टा सिल का॥
पढ़े लिखे कुछ ऐसेहिं वैसे, बड़ा घमंड अकिल का।
जहरी बचन यों मुख से निकलें, साँप निकलता बिल का॥
भजन बिना सब जप तप झूठा, झूठा तवक्का फजल का।
क्या कहिये गुरु देव न पाया महरम आँख के तिल का॥

नामदेव जी

नाम देव का जन्म दमासेर दर्जी के घर गोना बाई के गर्भ से पंढरपुर में हुआ था। महाराष्ट्र देश में इनका जन्म काल प्रायः ११९२ शाका अर्थात् सं० १३२७ माना जाता है। परंतु कुछ विद्वान इनका जन्मकाल इस के १०० वर्ष बाद अर्थात् सं० १४२७ में मानते हैं। इस का कारण वह यह बतलाते हैं कि चौदहवीं शताब्दी तक महाराष्ट्र प्रदेश मे मुसलमानो का प्रवेश नहीं हो सका था और नामदेव की कविता मुसलमानों से विशेष रूप से प्रभावित है। इस लिए इनका जन्म काल अंततः १०० वर्ष पीछे ही मानना ठीक जान पड़ा। जो हो यह विषय अभी विवादग्रस्त है।

इनके गुरु एक कोई ज्ञानेश्वर महाराज कहे जाते हैं जो कि नाथपंथी (गुरु गोरखनाथ के अनुयायी) धारा के एक प्रसिद्ध जोगी गहनी नाथ (सं० १२८०—१३३०) के शिष्य निवृत्तिनाथ के छोटे भाई और शिष्य थे।

नामदेव जी शैशव से बड़े भक्त थे और गृहस्थ होते हुए भी संसार से एक प्रकार से तटस्थ हो कर सदा संतसमागम मे लीन रहा करते थे। इसी से इनका पुश्तैनी व्यवसाय (कपड़े सीने का) भी नष्ट हो गया और इन्हे घोर दरिद्रता का सामना करना पड़ा। पर ये कभी भी अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुए। इनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी पर बाद में इन्हे हिंदी से प्रेम हुआ और बहुत से पद इन्होने हिंदी मे भी रचे। पढरपुर के आदि देव बिठोबा को ही ये अपना इष्टदेव मानते थे। इनके बहुत से पद आदिग्रथ में सगृहीत हैं। खोज मे इनके चार ग्रंथ— 'नामदेव जी का पद,' 'राग सोरठ का पद,' 'नामदेव जी की वाणी,' और 'नामदेव जी की साखी' मिले हैं। इनकी भक्ति बड़ी गंभीर थी और ये बड़े भारी गवैये भी कहे जाते हैं। बहुत से चमत्कार भी इनके सबंध में प्रसिद्ध हैं। कबीर और रैदास ने इन्हें आदर से स्मरण किया है। इस से स्पष्ट है कि संतों में इन का स्थान बहुत ऊँचा था।

नामदेव जी

भेद

एक अनेक व्यापक पूरक, जित देखौ तित सोई ।
माया चित्र बिचित्र बिमोहत, बिरला बूझै कोई ॥
सब गोबिंद है सब गोबिंद है, गोबिंद बिन नहिं कोई ।
सूत एक मनि सत्तसहस जस, ओत पोत प्रभु सोई ॥
जल तरंग अरु फेन बुद बुदा, जल तें भिन्न न होई ।
यह प्रपंच परब्रह्म की लीला, बिचरत आन न होई ॥
मिथ्या भ्रम अरु स्वप्न मनोरथ, सत्य पदारथ जाना ।
सुकिरत मनसा गुरु उपदेशी, जागत ही मन माना ॥
कहत नामदेव हरि की रचना, देखो हृदय बिचारी ।
घट घट अंतर सर्व निरंतर, केवल एक मुरारी ॥

प्रेम

भाई रे इन नैनन हरि पेखो ।
हरि की भक्ति साधु की संगति, सोई यह दिल लेखो ।
चरन सोई जो नचत प्रेम से, कर सोई जो पूजा ॥
सीस सोई जो नवै साधु के, रसना और न दूजा ।
यह संसार हाट को लेखा, सब को बनिजहिं आया ॥
जिन जस लादा तिन तस पाया, मूरख मूल गँवाया ।
आतम राम देह धरि आयो, ता में हरि को देखो ॥
कहत नामदेव बलि बलि जैहौं, हरि भजि और न लेखो ॥

नाम महिमा

तत्त गहन को नाम है, भजि लीजै सोई ।
लीला सिंध अगाध है, गति लखै न कोई ॥
कंचन मेरु सुमेरु, हय गज दीजै दाना ।
कोटि गऊ जो दान दे, नहिं नाम समाना ॥
जोग जग्य तें कहा सरै, तीरथ व्रत दाना ।
ओसै प्यास न भागि है, भजिये भगवाना ॥
पूजा करि साधू जानहिं, हरि को प्रन धारी ।
उनतें गोबिंद पाइये, वे पर उपकारी ॥
एकै मन एकै दासा, एकै व्रत धरिये ।
नामदेव नाम जहाज है, भव सागर तरिये ॥

सदना जी

ये जाति के कसाई थे और इनका समय पंद्रहवीं शताब्दी का पिछला हिस्सा कहा जाता है। ये जीवहत्या नहीं करते थे। उदाहरण के रूप में इनका केवल एक पद दिया जा सका।

सदना जी

विनय

नृप कन्या के कारने, एक भयो भेष धारी।
कामारथी सुवारथी, वा की पैज सँवारी ॥
तब गुन कहा जगत-गुरा, जो कर्म न नासै।
सिंह सरन कत जाइये, जो जंबुक ग्रासै ॥
एक बूंद जल कारने, चातक दुख पावै।
प्रान गये सागर मिलै, पुनि काम न आवै ॥
प्रान जो थके थिर नहीं, कैसे बिरमावो।
बूड़ि मुए नौका मिलै, कहु काहि चढ़ावो ॥
मैं नाहीं कछु हौं नहीं, कछु आहि न मोरा।
औसर लज्जा राख लेहु, सदना जन तोरा ॥

धर्मदास

इनका भी समय पंद्रहवीं शताब्दी का पिछला हिस्सा था कबीर के बाद उनकी गद्दी इन्हीं को मिली। यह कबीर के प्रधान शिष्यों में से थे और इनका जन्म स्थान बांधोगढ़ रीवाँ, और सत्संग स्थान काशी था।

धर्मदास

शब्द

गुरु मिले अगम के बासी ॥ टेक ॥
उनके चरन कमल चित दीजे, सतगुरु मिले अविनासी।
उनकी सीत प्रसादी लीजै, छूटि जाय चौरासी॥
अमृत बुंद झरै घट भीतर, साध संत जन लासी।
धरमदास विनवै कर जोरी, सार सब्द मन बासी॥

गुरु मोहिं खूब निहाल कियो ॥ टेक ॥
बूड़त जात रहे भव सागर पकरि के बाहि लियो।
चौदह लोक बसें जम चौदह, उनहुँ से छोरि लियो॥
तिनुका तोरि दियो परवाना, माथे हाथ दियो।
नाम सुना दियो कंठी माला, माथे तिलक दियो॥
धरमदास विनवै कर जोरी पूरा लोक दियो॥

नैन दरस बिन मरत पियासा ॥ टेक ॥
तुमहीं छाड़ि भजूँ नहिं औरे, नाहिं दूसरी आसा॥
आठो पहर रहूं कर जोरी, करि लेहु आपन दासा॥
निसु बासर रहूं लव लीना, बिनु देखे नहिं बिस्वासा॥
धरमदास विनवै कर जोरी, देहु निज लोक निवासा॥

साहेब चितवो हमरी ओर ॥ टेक ॥
हम चितवैं तुम चितवो नाहीं, तुम्हरो हृदय कठोर॥
औरन को तो और भरोसा, हमें भरोसा तोर॥
सुखमनि सेज बिछाओं गगन में, नित उठि फेरौं निहोर॥
धरमदास विनवै कर जोरी, साहेब कबीर बंदी छोर॥

मैं हेरि रहूं नैना सो नेह लगाई ॥ टेक ॥
राह चलत माहिं मिलि गये सतगुरु, सो सुख बरनि न जाई॥
देह के दरस मोहिं बौराये, लै गये चित्त चुराई॥
छवि सन दरस कहाँ लगि बरनी, चाँद सुरज छिपी तब जाई॥
धरमदास विनवै कर जोरी, पुनि पुनि दरस दिखाई॥

मेरा पिया बसै कौने देस हो ॥ टेक ॥
अपने पिया को ढुंढ़न हम निकसी, कोइ न कहत सनेस हो ॥
पिया कारन हम भई हैं बावरी, धरो जोगिनिया के भेस हो ॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस न जानै, का जानै सारद सेस हो ॥
धनि जो अगम अगोचर पइलन, हम सब सहत कलेस हो ॥
उहाँ के हाल कबीर गुरु जाने, आवत जात हमेस हो ॥

सजन से प्रीति मोहि लागी, दरस के भयो अनुरागी ॥
नहीं बैराग मोहिं आवै, साहेब के गुन नितै गावै ॥
अभरन भूषन तनै साजूं, पिया के देखि हँस हुलसूं ॥
भया है गैब का डंका, चलो जहं देस है बंका ॥
बिना ऋतु फूल एक फूला, भवर रँग देखि के भूला ॥
तकत छबि टरै ना टारी, होय तिस बरन बलिहारी ॥
कहै धरमदास कर जोरी, साहेब से अरज है मोरी ॥

पिया बिन मोहिं नींद न आवे ॥ टेक ॥
खन गरजै खन बिजुली चमकै । ऊपर से मोहिं झाकि दिखावै ॥
सासु ननद घर दारुनि आहैं । नित मोहि बिरह सतावै ।
जोगिन ह्वै कै मै बन बन ढूँढूँ । कोऊ न सुधि बतलावै ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी । कोइ नेरे कोइ दूर बतावै ।

पिया बिन मोहिं नीक न लागै गाँव ॥ टेक ॥
चलत चलत मोरे चरन दुखित भे । आखिन परिगै धूर ॥
आगे चलूं पंथ नहिं सूझै । पाछे परै न पाव ।
सासुरे जाउ पिया नहिं चीन्हैं । नैहर जात लजाउं ॥
इहा मोर गाव उहा मोर पाही । बीचे अमरपुर धाम ।
धरमदास बिनवै कर जोरी । तहा गाव न ठाव ॥

साहेब दीनबंधु हितकारी ॥ टेक ॥
कोटिन ऐगुन बालक करई । मात पिता चित एक न धारी ॥
तुम गुरु मात पिता जीवन के । मैं अति दीन दुखारी ।
प्रनतपाल करुना निधान प्रभु । हमरी ओर निहारी ॥
जुगन जुगन से तुम चलि आये । जीवन के हितकारी ।
सदा भरोसे रहूँ तुम्हारे । तुम प्रतिपाल हमारी ॥
मोरे तुमही सत सुकृति ही । अतर और न धारो ।
जानत ही जन के तन मन की । अब कस मोहिं बिसारी ॥

को कहि सकै तुम्हारी महिमा । केहि न दियो पद भारी ।
धरमदास पर दाया कीन्ही । सेवक अहौं तुम्हारी ॥

साहब मेटो चूक हमारी ॥ टेक ॥
बार बार मोहिं डड भयो है, चूक भई अति भारी ॥
अब हम आये निकट तुम्हारे, अब मो तनहि निहारो ।
करुनामय तुम नाम धराये, तुम समरथ अब मेरो ॥
ऐसी विपति भई मोहिं ऊपर, कोइ न हीत हमारो ।
तरसत जीव रहै निस बासर, जानि जनहि तुम दौ रौ ॥
अब की चूक छिमा कर साहेब, अब सनमुख है हेरो ।
तुम सतगुरु सकल सुख दाता, सब्द पान तै तारो ॥
धरमदास बिनवै कर जोगी, करौ बदगी तेरो ।

साहेब बूडत नाव अब मेरी ॥ टेक ॥
काम क्रोध की लहर उठतु है, मोह पवन झकझोरी ॥
लोभ मेरे हिरदे घुमरतु है, सागर वार न पारी ।
कपट की भँवर परतु है बहुतै, वा मे बेडा अटको ॥
काल फास लियो है दूवारे, आया सरन तुम्हारी ।
धरमदास पर दाया कीन्ही, काठि फद जिव तारी ।
कहैं कबीर सुनो हो धर्मन, सतगुरु सरवन उबारी ॥

साहेब मेरी ओर निहारो ॥ टेक ॥
परजा पुत्र अहौं मैं साहेब, बहुत बात मैं टारी ॥
हौं मैं कोटि जनम को पापी, मन बच करम असारो ।
एकौ कर्म छुटे ना कबहूँ, बहु बिधि बात बिगारो ॥
हौं अपराधी बहुत जुगन को, नइया मेर उबारो ।
बदी छोर सकल सुखदाता, करुनामय करत पुकारो ॥
सीस चढाइ पाप की मोटरी, आयो तुम्हारे दुवारो ।
को अस हमरे भार उतारे, तुमहीं हेतु हमारो ॥
धरमदास यह बिनती बिनवै, सतगुरु मोको तारो ।
साहेब कबीर हंस के राजा, अमर लोक पहुँचावो ॥

साहेब कौन कमी घर तेरा ॥ टेक ॥
भूखे अन्न पियासे पानी, कपडा से तन घेरो ।
जो कुछ न्यामत सबै महल में, खरच खजाना ढेरो ।

खाक से पाक कियो पल माहीं, है समरथ बल तेरो ॥
भव से काढ़ि कियो तरनी पर, खेइ लगावो सबेरो ।
रहे न घाम छाँह दुनिया में, रहे न जम की चेरो ॥
राव रंक रंक से राजा, छिन में बाजत तूरो ।
मानो सत्त झूठ जनि जानो, सत्त वचन है पूरो ।
धरमदास चरनन पर बिनवै, तुम गति सब भरे पूरो ॥

अब मोहिं दरसन देहु कबीर ॥ टेक ॥
तुम्हरे दरस से पाप कटत हैं, निरमल होत सरीर ।
अमृत भोजन हंसा पावै, सब्द धुनन की खीर ॥
जह देखौं जह पाट पटंबर, ओढ़न अंबर चीर ।
धरमदास की अरज गोसाईं, हंस लगावो तीर ॥

साहेब कौन देस मोहिं डारा ॥ टेक ॥
वह तो देस अमर हंसन को, येहि जग काल पसारा ।
देवहु सब्द अजर हंसन को, बहुरि न हुंहै अवतारा ॥
निरगुन सरगुन दुद पसारा, परि गये काल की धारा ।
जहा देस है सत्त पुरुष का, अजर अमी का अहारा ॥
धरमदास बिनवै को जोरी, अबकी अरज हमारा ।

साहेब लेइ चलो देस अपाना ॥ टेक ॥
जम की त्रास सही ना जाई, केहि बिधि धरोमैं ध्याना ।
माया मोह भरम की मोटरी, यह सब काल कलपना ॥
माया मोह भरम सब काटी, दीजै पद निरबाना ।
अमर लोक वह देस सुहैला, हंसा कीन्ह पयाना ॥
धरमदास बिनवै को जोरी, आवागवन नसाना ।

तुम सतगुरु हम सेवक तुम्हरे ॥ टेक ॥
कोई मारै औ गरियावै, दाद फिरियाद करब तुम हीं से ।
सोवत जागत के रखपाला, तुमहीं छाड़ि भजौं नहि औरे ॥
तुम धरनीधर सब्द अनाहद, अमृत भाव करौं प्रभु सगरे ।
तुम्हरी बिनय कहा लगि बरनौं, धरमदास पद गहे हैं तुम्हरे ॥

चढ़ि नौरंगिया की डार, कोइलिया बोलै हो ।
अगम महल चढ़ि चलो, जहा पिय से मिलो ॥
मिलि चलो आपन देस, जहा छबि छाजई तन ।
सेत सब्द जह खिले, हंस होइ आवही ॥

अग्र बस्तु मिलि जाय, सब्द टकसार हो।
चहुं दिसि लागों झलरिया, तो लोक असख हो॥
अंबु दीप एक देस, पुरुष जहं रहहिं हो।
कहैं कबीर धर्मदास, बिछुरन नहिं होइ हो॥

धनुष बान लिये ठाढ़, जोगिनि एक माया हो।
छिनहिं में करत बिगार, तनिक नहिं दाया हो॥
झिर झिर बहै बयार, प्रेम रस डोलै हो।
चढ़ि नौरँगिया की डार, कोइलिया बोलै हो॥
पिया पिया करत पुकार, पिया नहिं आया हो।
पिया बिनु सून मॅदिलवा, बोलन लागे कागा हो॥
कागा हो तुम कारे, कियो बटवारा हो।
पिया मिलने की आस, बहुरि ना छूटहि हो॥
कहैं कबीर धर्मदास, गुरू सँग चेला हो।
हिल मिलि करो सतसंग, उतरि चलो पारा हो॥

चलो सखि देखन चलिये, दुलह कबीर हैं।
उन सों जुरल सनेह, जठर सों राखि हैं॥
पाच तत्त के आसा, त्यागो वेगि कै।
छाडो झिलि मिलि तेह, पुरुष गम राखि कै॥
लाघो औघट घाट, पंथ निजि ताकि कै।
गहो सुकृति जिन डोर, अगम गम राखि के॥
चार कोस आकास, तहाँ चढ़ि देखिये।
आगे मारग झीनि, तो सूरत बिवेकिये॥
मुकुट एक अनूप, छत्रसिर साजिहै।
ढुरत अग्र को चौंर, सब्द धुनि गाजिहै॥
सेत धुजा फहराय, भॅवर तहं गुंजहीं।
नितहिं उठै झनकार, गगन घनघोरहीं॥
कहैं कबीर धर्मदास सों, मूल उचारिये।
आगम गम्म बताइ कै, हंस उबारिये॥

बधावा संत सजाऊ हों।
जा विधि सतगुरु मेहर करैं, सोई विधि बतलाऊ हो।
रतन पटोरा डारि पावड़े, सन्मुख जाऊ हो॥
सब सखियां मिलि बाँटत बधाई, मगल गाऊं हो।

घसि घसि चदन अँगना लिपाऊँ, चौक पुराऊं हो ॥
मेवा नरियर पान मिठाई, सजम सबै मगाऊ हो ।
खीर आम घृत अमृत भोजन, संत जिमाउल हो ॥
चरन धोइ चरनामृत लेऊं, सीस नवाऊं हो ।
जब मोरे साहेब तखत बिराजै, आरत लाऊं हो ।
पान पर्वान दया से पाऊ, सब मिलि गाऊं हो ॥
जब मोरें सतगुरु पलँग पधारें' चरन दबाऊ हो ।
धरमदास याही बिधि करि, सतलोक सिधाऊं हो ॥

साहेब सत गुरु घर आया हो ।
अँगना मोर जगमग भया, सुख सपति लाया हो ॥
आधि गई मेरी हे सखी, आज सज्जन पाया हो ॥
धन बिधाता लेख लिखा, निज भाग जगाया हो ॥
कोमल बचन अँग दया घनेरी, कल्प वृच्छ की छाया हो ॥
धन जननी अस संत जिन जाया, अनंद बधाया हो ॥
जप तप नेम धर्म बहु कीन्हा, रसना नामहिं गाया हो ॥
धरमदास सतगुरु सतसँग से । छिन में पर यह पाया हो ॥

होली

हमारी उमरिया होली खेलन की ।
पिय मोसों मिल के बिछुर गयो हो ॥
पिय हमरे हम पिय की पयारी ।
पिय बिच अतर परि गयो हो ॥
पिया मिलैं तब जियों मोरी सजनी ।
पिया बिना जियरा निकल गयो हो ॥
इत गोकुल उत मथुरा नगरी ।
बीच सगर पिय मिलि गयो हो ॥
धरमदास बिरहिनि पिय पावै ।
चरन कवल चित गहि रहों हो ॥

जग ये दोऊ खेलत होरी ।
माया ब्रह्मबिलास करत हैं, एक से एक बरजोरी ॥
सच्चिदानन्द सरूप अखडित, व्यापक है बस ठौरी ॥
हिये नैन से परख परी जेहि, जोति समाय रहो री ॥
जोबन जोर नैन सर मारते, ठहर सकै को कोरी ॥
मदन प्रचड उठै चमकारी, कामा करी चित चोरी ॥

निरगुन रूप अमान अखंडित, जा मे गुन बिसरो री ॥
माया मुक्त अनंद किये है, सबहि मै अगर भरोरी ॥
कारन सूक्ष्म स्थूल देह धरि, भक्ति हेत तृन तोरी॥
धर्मनि विना दरस गुरु मूरत, कस भव पार भयो री ॥

गुरु बिन कौन हरै मोरी पीरा ॥ टेक ॥
रहत अली मलीन जुग, राई बिनत पाये एक हीरा ।
पाये हीरा रहे नहिं धीरा, लेइ के चले वोहि पारख तीरा ॥
सो हीरा साधू सब परखे, तब से भयो मन धीरा ।
धरमदास बिनवै कर जोरी, अजर अमर गुरू पाये कबीरा ॥

आये दीन दयाल दया कीन्हा ॥ टेक ॥
दीन जानि गुरू समरथ आये, विमल रूप दरसन दीन्हा ।
चरन धोइ चरनामृत लीन्हा, सिंहासन बैठक दीन्हा ॥
करु आरता प्रेम निछावर, तन मन धन अरपन कीन्हा ।
धरमदास पर दाया कीन्हा, सार सब्द सुमिरन दीन्हा ॥

बरनौ मै साहेब तुम्हरे चरना ॥ टेक ॥
सतन सुख लायक दायक, प्रभु दुख हरना ।
सतजुग नाम अचित कहाये, खोडस हंस को दई सरना ॥
त्रेता नाम मुनिंद कहाये, मधुकर विनि को दई सरना ।
द्वापर करुनामय कहलाये, इद्र मती के दुख हरना ॥
कलजुग नाम कबीर कहाये, धर्मदास अस्तुति बरना ।

सत नामै जपु जग लड़ने दे ॥ टेक ॥
यह संसार काट की बारी, अरुझि सरुझि के मरने दे ।
हाथी चाल चलै मोर साहेब, कुतिया भुके तो भुँकने दे ॥
यह संसार भादों की नदिया, डूबि मरै तेहि मरने दे ।
धरमदास के साहेब कबीरा, पथर पूजै तो पुजने दे ॥

नैनन आगे ख्याल घनेरा ॥ टेक ॥
जैहि कारन जग डोलत भरमे ।
सो साहेब घट लीन्ह बसेरा ॥
का सझा का प्रात सवेरा ।
जहं देखू जहं साहेब मेरा ॥
अर्ध उर्ध बिच लगन लगो है ।
साहेब घट मे कीन्हा डेरा ॥
साहेब कबीर एक माला दीन्हा ।
धरमदास घट ही बिच फेरा ॥

सतगुरु कहत नाम गुन न्यारा ।। टेक ।।
कोइ निर्गुन कोइ सर्गुन गावै, कोइ किरतिम कोइ करता ।
लख चौरासी जीव जंतु में, सब घट एकै रमिता ।।
सुनो साधु निरगुन की महिमा, बूझै बिरला कोई ।
सरगुन फदै सबै चलत है, सुर नर मुनि सब कोई ।।
निर्गुन नाम निअच्छर कहिये, रहै सबन से न्यारा ।
निर्गुन सर्गुन जम कै फदा, वोहि के सकल पसारा ।।
साहेब कबीर के चरन मनावो, साधुन के सिर ताजा ।
धरमदास पर दाया कीन्हा, बाह गहे की लाजा ।।

मेरे मन बसि गये साहेब कबीर ।। टेक ।।
हिंदू के तुम गुरू कहावो, मुसलमान के पीर ।।
दोऊ दीन ने झगड़ा माडेव, पायो नहीं सरीर ।
सील संतोष दया के सागर, प्रेम प्रतीत मति धीर ।।
बेद कितेब मते के आगर, दोउ दीनन के पीर ।
बड़े बड़े संतन हितकारी, अजरा अमर सरीर ।।
धरमदास की बिनय गुसाईं, नाव लगावो तीर ।

———